1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI. No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-5, अंक-1, अगस्त-सितम्बर 2021, ₹50/-

25 सांस्कृतिक यात्रा का वें वर्ष में प्रवेश

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

प्रसिद्ध चित्रकार प्रो. राजाराम

स्मरण विशेषांक

कला समय

आगामी अंक

अक्टूबर-नवम्बर 2021 - दिसम्बर-जनवरी 2022

(संयुक्तांक)

स्वाधीनता का अमृत महोत्सव

विशेषांक

डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा
अतिथि संपादक

स्वाधीनता के महासमर में मध्य प्रदेश की गौरवगाथा को स्मरणीय बनाने के लिए आगामी अंक समर्पित रहेगा, जिसमें प्रदेश के विविध क्षेत्रों के अवदान पर लेख आमंत्रित किये जाते हैं।

स्वाधीनता के दीर्घकालीन संघर्ष में राज्य के स्वतंत्रता सेनानियों, लेखकों, कलाकारों, गुमनाम नायकों, वीरांगनाओं की भूमिका और उनके महत्व पर सामग्री प्रकाशित किये जाने की योजना हैं। आग्रह है कि यदि आपके पास स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़ी कोई अनसुनी कहानी, कविता इत्यादि हो तो प्रेषित करें...।

आपके योगदान से यह अंक संग्रहणीय बनेगा।

-संपादक

1998 से निरंतर प्रकाशित
RNI NO. MPHIN/2017/73838

कला समय पत्रिका अब वेबसाइट पर उपलब्ध
www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X
(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)
(वर्ष : 20+05=25) पूर्णांक-112
वर्ष-5, अंक-1, अगस्त-सितम्बर-2021, मूल्य : ₹50/-

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरू सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

संरक्षक
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
डॉ. महेन्द्र भानावत
पं. विजय शंकर मिश्र
श्यामसुंदर दुबे
पं. सुरेश तातेड़
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
डॉ. नारायण व्यास
ललित शर्मा
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल

सांस्कृतिक प्रतिनिधि
चेतना श्रीवास

वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

कानूनी सलाहकार
जयंत कुमार मेढ़े (एडवोकेट)

रेखांकन : रोहित पथिक

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

सलाहकार संपादक
डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा

सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग

उप संपादक
राहुल श्रीवास

संपादक मंडल
डॉ. बिनय षड़ंगी राजाराम
साहित्य
हरीश श्रीवास
कला
डॉ. मुक्ति पाराशर
संस्कृति
नरिन्दर कौर
प्रबंध

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)

(15 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :
संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण
पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास

इस संग्रहणीय अंक के प्रमुख हस्ताक्षर...

धनंजय वर्मा

राजेन्द्र शर्मा

श्रीधर पराडकर

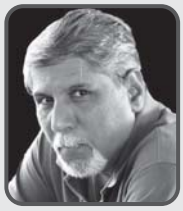
अभिलाष खांडेकर

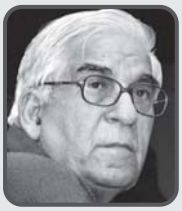
डॉ. देवेन्द्र दीपक

जगदीश तोमर

डॉ. बिनय षडंगी राजाराम

लक्ष्मीनारायण पयोधि

घनश्याम मैथिल 'अमृत'

नरेन्द्र दीपक

अखिलेश निगम

संतोष रंजन

धनंजय सिंह

विनय सप्रे

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888 | **आवरण चित्र** - डॉ. बिनय षड़गी राजाराम के सौजन्य से | **छायाचित्र** -मनीष सराठे, सुनील सेन | **रेखांकन** - रोहित पथिक | **सहयोग** - धन सिंह, लता श्रीवास | **आवरण सज्जा** - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

इस बार

- संपादकीय 5
- **जीवन-वृत्त**
  प्रो. राजाराम 7
- **पुण्य-स्मरण - प्रो. राजाराम**

डॉ. बिनय षडंगी राजाराम	9	अनुभूति ब्यौहार	16
उपासना सारंग त्यागी	16	नीकी पापानिकोलाओ	16
धनंजय वर्मा	17	प्रभुदयाल मिश्र	20
डॉ. कौस्तुभ शर्मा	21	सौमित्र शर्मा	21
शोभा घारे	22	राजेन्द्र शर्मा	23
श्रीधर पराडकर	24	डॉ. रजनी पाण्डेय	25
अभिलाष खांडेकर	26	डॉ. देवेन्द्र दीपक	29
विभा गोयल	30	जगदीश तोमर	31
डॉ. स्मृति उपाध्याय	32	घनश्याम मैथिल 'अमृत'	33
अवधेश अमन	35	ज़ीनत सिद्दीकी	36
डॉ. जी.सी. बैजल	36	विनय त्रिपाठी	37
लक्ष्मीनारायण पयोधि	39	नरेन्द्र दीपक	41
डॉ. शकुंतला जैन	42	डॉ. अंजलि पांडेय	43
डॉ. सुषमा श्रीवास्तव	46	राजेन्द्र उपाध्याय	47
अखिलेश निगम	48	गायत्री गोस्वामी	50
अनीता सक्सेना	51	प्रो. रेखा भदौरिया	53
डॉ. अर्चना मुखर्जी 'अश्क'	54	डॉ. लक्ष्मी श्रीवास्तव	55
डॉ. बिनय राजाराम	56	संतोष रंजन	57
स्वर्णलता मिश्रा	58	संजीव पाण्डेय	59
राकेश कुमार रॉय	60	संध्या श्रीवास्तव	62
विनय सप्रे	64	अर्चना यादव	65
ज्योत्स्ना गलगले	67	नीता विश्वकर्मा	68
डॉ. प्रीति जैन	70	डॉ सुचिता राउत	71
विनोद श्रीवास्तव	73	प्रीति निगोस्कर	87
धनंजय सिंह	89		

- **रंग वीथि**
  प्रो. राजाराम के जीवन वृत्त के कुछ छायाचित्र 75
- **प्रो. राजाराम के आलेख**
  यूरोपी बिज़ान्तिनी कला की पोषक बौद्ध कला 91
  'आधुनिक कला' और भारतीय समकालीन संदर्भ 94
  मणीपुरी नर्तक के पदचाप से अंकित रूपाकार 98
  राष्ट्रवादी प्रेरणा के स्त्रोत श्रद्धेय श्री कैलाश नारायण सारंग 99
  कला आलोचना और 'कला प्रसंग' 101
  सर्जन और अभिव्यंजना 105
- **विश्व कविता**

मणि मोहन	107	लक्ष्मीनारायण पयोधि के गीत	108
प्रो.राजाराम की कविताएँ	109	बद्र वास्ती की ग़ज़लें	110
कविता	111		

- **आलेख**
  भारतीय स्वरूप और शिल्प में श्याम / नर्मदा प्रसाद उपाध्याय 113
- **अद्वैत-विमर्श**
  डॉ. कपिल तिवारी जी से डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा एवं भँवरलाल श्रीवास की बातचीत 117
- **आलेख**
  कलाएँ मनुष्य की संस्कार और सौन्दर्य-भूमि / रमेश दवे 123
  धुएं की लकीरों में जीवन के बिंब उकेरता चित्रकार... / गोविंद गुंजन 128
  विश्व में अनूठी लोकनृत्यों की अनुपम, अजूबी.../ डॉ. महेन्द्र भानावत 131
  मेवाड़ में देवी अवधारणा और विरासत / डॉ. श्री कृष्ण 'जुगनू' 135
- **संस्मरण**
  बिंदास जीवन जीने वाले पंडित किशन महाराज / जगदीश कौशल 137
- **समय की धरोहर**
  पंडित किशन महाराज / जगदीश कौशल 139
- **समवेत** 140
  डॉ. देवेन्द्र दीपक के जन्मदिन के अवसर पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन / नाबार्ड, मुंबई के चेयरमैन डॉ. जी. आर. चिंताला का संग्रहालय भ्रमण / सप्ताह का प्रादर्श है-'डोड-माला' चांदी के मनकों से बना एक हार / वरिष्ठ साहित्यकार डॉ.देवेंद्र दीपक सहित अन्य पांच विविध क्षेत्रों में अनुकरणीय कार्य करने वाली विभूतियां श्रेष्ठ कला आचार्य सम्मान से विभूषित / साहित्यकार दुष्यन्त कुमार की धर्मपत्नी राजेश्वरी त्यागी का निधन /

संपादकीय

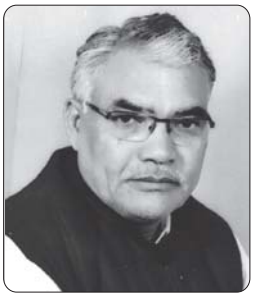

तुम मेरे शब्दों को रंग दो, मैं तुम्हारे रंगों को शब्द दूँगा

''तुम मुझे रंगों की दुनिया में ले चलो
मैं तुम्हें शब्दों के मेले में ले चलता हूँ
शब्द केवल शब्द नहीं होते
उनके पीछे बहुत से लोग होते हैं
रंग-बिरंगे कपड़ों वाले लोग
लेकिन उनके कपड़ों का सबसे मुखर रंग
मिट्टी का रंग होता है,
मिट्टी जिससे सारे रंग जन्म लेते हैं।

- कुमार विकल

अपनी धुन के धनी चित्रकार, संपादक, साहित्यकार, आलोचक, शब्द साधक प्रो. राजाराम। इक्कीसवीं सदी में उनका स्मरण किया जाना कई मायनों में उल्लेखनीय है। उनकी अपनी जीवन-शैली, कला के प्रति उनकी उद्दाम जिद, उनका संघर्ष चर्चित और स्थापित होने के बाद भी उनका अहंकार रहित मिलनसार व्यक्तित्व अपने छात्रों के प्रति अटूट प्रेम करने वाला उनका शिक्षक व्यक्तित्व इत्यादि ऐसी कई बातें हैं जो समकालीन कला में अमूमन नदारत ही दिखती हैं।

उनके चित्रों की थाती समूचे भारतीय कला जगत की एक अमूल्य निधि है, जिसे सहेजकर रखना हम सभी की जिम्मेदारी होनी चाहिए। प्रकृति का वैभव किसी कलाकार के लिए अनजाने में ही रचनात्मक आधार बन जाता है, यह प्रो. राजाराम के जीवन और उनके कलाकर्म में देखा जा सकता है। प्रो. राजाराम का चित्र संसार हमें सहज ही मोह लेता है। उसमें विविधता है शैलीगत सौंदर्य है। उसकी रेंज बड़ी है उसमें आकृति अंकन है। अमूर्तन है।

कदाचित इसी कारण समकालीन चित्रकार बिरादरी के बीच हमारे समय के वे एकमात्र और नितांत अकेले ऐसे उदाहरण थे, जिसने अखबारों के पृष्ठों पर फड़फड़ाती प्रशंसाओं और सरकारी कला-प्रासादों के सभागारों में बजती तालियों की तरफ ध्यान दिये बगैर कोई आधी-शताब्दी से निरन्तर खुद को अपनी कला के काम में जोते रखा और साथ ही यह भी कि कभी किसी से कोई शिकायत भी नहीं की। आज उनकी पीड़ाग्रस्त आँखें को याद करते हुए मैं अपनी आँख को गीली होने से बचाते हुए पूछना चाहता हूँ ये सवाल- ''क्या संसार से कोई कलाकार अपनी उपस्थिति दर्ज कराए बगैर इतिहास की धूल के नीचे दब जाता है ? अगर ऐसा होता है तो यह उनकी शिष्य बिरादरी के लिए समाज के लिए निश्चित ही चिंता का विषय है।

इन्दौर म.प्र. में जन्मे प्रो. राजाराम, चित्रकर्मी एवं कला इतिहास विद्, संपादक कला-आलोचना त्रैमासिकी (आर्ट फोकस), पूर्व रूपंकर निदेशक भारत भवन भोपाल, पूर्व में म.प्र. राज्य ललित कला शिक्षा पुनर्गठन से संबद्ध राजस्थान (वनस्थली विद्यापीठ) व म.प्र. में 38 वर्ष महाविद्यालयीन कलाध्यापन से जुड़े रहे।

मैं यहाँ पर हिन्दी भवन में आयोजित 'खंगाल' कार्यक्रम को स्मरण करना चाहता हूँ। सप्तपर्णी साहित्य सृजन शोधपीठ तथा अखिल भारतीय साहित्य परिषद म.प्र. इकाई का आयोजन 'खंगाल' में प्रो. राजाराम ने

खँगाला था। हिन्दी भवन भोपाल में समकालीन मध्यप्रदेश के कला इतिहास पर आधारित कार्यक्रम 'खँगाल' का प्रतिष्ठापूर्ण आयोजन किया गया। प्रो. राजाराम ने ललित कला अकादमी दिल्ली के स्वर्ण जयंती ग्रंथ 'हिस्टॉरिकल डेवलपमेंट ऑफ कंटेम्पररी इंडियन आर्ट' में प्रकाशित अपने दो अध्यायों के मुख्य अंश को पढ़ा। उसकी समीक्षा की। कार्यक्रम में समकालीन भारतीय कला के ऐतिहासिक विकास पर विस्तृत चर्चा भी हुई। स्वर्ण जयंती ग्रंथ के प्रकाशित प्रथम खंड में प्रो. राजाराम ने दो अध्याय पेटिंग शिल्प और चित्र ग्राफिक्स आर्ट पर केन्द्रित किए हैं। जिसमें 1880 से 1970 तक के कालखंड को सम्मिजिलत किया गया है।

निसर्गवाद और नवजागरणवाद दो पक्षों को लेकर प्रकाशित इस पहले भाग के दो अध्यायों में समकालीन मध्यप्रदेश की कला को पहली बार गंभीरता, व्यापक शोध और कला इतिहास लेखन के नए मानकों की गहराई के साथ प्रो. राजाराम ने प्रस्तुत किया है।

इसमें उन्होंने शिक्षा के समकालीन पुरखे माने जाने वाले दादा त्रयंबक राव यावलकर, मुकुंद सखाराम भांड, स्वतंत्रता सेनानी माधव शांताराम रेगे, दत्रातेय दामोदर देवलालीकर को शामिल किया तो वहीं कला के साथ सप्तर्षियों को जिनमें शिल्पकारी और चित्रकारी की कला का सृजन करने वाले रघुनाथ कृष्ण फड़के, एस.एन. सुब्बकृष्ण, डी.जे. जोशी, रीवा के दरबारी चित्रकार अवध शरण सिंह बावनी, मालवा के मास्टर मदन लाल शर्मा, रूद्ध हंजी और नागेश यावलकर जैसी बड़ी हस्तियों को सम्मिलित किया गया। अपने वक्तव्य में प्रो. राजाराम ने कहा कि उन्हें अफसोस होता है कि आज कई ऐसी हस्तियों की कृतियों और कलाकारों को हम भूल चुके हैं जिनका समकालीन इतिहास में बड़ा योगदान रहा है।

देवास का जिक्र करते हुए प्रो. राजाराम ने कहा– वहाँ लगी छत्रपति शिवाजी महाराज की प्रतिमा जिसे पद्म श्री से सम्मानित डॉ. रघुनाथ कृष्ण फड़के ने तैयार की थी, वहाँ के लोगों ने उसका गेट तोड़कर वहाँ अपना रेत–गिट्टी बेचना शुरु कर दिया है। यही नहीं शिवाजी की प्रतिमा में उनके पैरों पर रस्सी बाँधकर तंबूरा खड़ा कर दिया है। प्रमुख साहित्यकार और प्रखर आलोचक डॉ. धनंजय वर्मा का कहना था कि यह समकालीन मध्यप्रदेश की कला का इतिहास है या फिर मध्यप्रदेश की कला का समकालीन इतिहास। उनका कहना था कि 1880 को समकालीन नहीं कहा जा सकता, साथ ही इसमें विदर्भ का जिक्र भी नहीं किया गया है। प्रकारान्तर से वे राजाराम जी से संभवत: और अधिक विस्तार की अपेक्षा कर रहे थे। कार्यक्रम में अपने समय के दैनिक भास्कर के स्टेट एडिटोरियल हेड श्री अभिलाष खांडेकर, वरिष्ठ पत्रकार ने शिवाजी चौराहे पर नगर निगम ने जिस तरीके की कुछ छोटी–मोटी मूर्तियाँ बनवाई हैं उस पर नाराजगी जताई। उन्होंने कहा कि आर्ट ऑबजेक्ट की अनदेखी पर तथा पब्लिक प्लेस पर बनाई जाने वाली कलाकृतियों पर कोफ्त व्यक्त किया और उन्हें कौन बना रहा है, उसका ज्ञान क्या है, उसे अनुभव क्या है यह जानना जरूरी है। इसी तारतम्य में उन्होंने म.प्र. के प्रमुख शहरों में अर्बन आर्टस् कमीशन जैसी एजेंसी गठित करने की माँग की। उन्होंने कहा था कि बढ़ते शहरों के नियोजन में कलाकरों की भागीदारी आवश्यक है।

हमें बताते हुए खुशी है कि हमारे एक आग्रह पर प्रो. राजाराम के देशभर में फैले मित्र लेखक तथा शिष्य–शिष्याएं जिन्होंने अपने रचनात्मक सहयोग से इस अंक को प्रतिष्ठा प्रदान की तथा **कला समय** के इस संग्रहणीय दस्तावेज अंक को गरिमा प्रदान की, हम उन सभी के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। कला समय परिवार की ओर से प्रो. राजारामजी को विनम्र आदरांजलि के साथ–

''कहैंगे सबही नैन नीर भरि भरि पाछैं
प्यारे प्रो. राजाराम की कहानी रह जायेगी।''

आपकी दृष्टि सम्पन्न प्रतिक्रिया की प्रतिक्षा की आकांक्षा हैं।

– भँवरलाल श्रीवास

जीवन-वृत्त

प्रो. राजाराम

- जन्म : इंदौर, 22 फरवरी, 1943
- जी.डी. आर्ट (पेंटिंग) मुंबई।
- एम.ए.(फाइन) कला-आलोचना , बड़ौदा : चित्र, छापा चित्र, भित्ति चित्र, शिल्प, स्थापत्य, औद्योगिक कला आदि समस्त रूपांकन कलाओं का ज्ञान, प्रायोगिक अभ्यास, तकनीकी कौशल, प्रायोगिक प्रशिक्षण एवं अनुभव। मनोविज्ञान अनुप्रयुक्त कला, सौंदर्यशास्त्र / कला आलोचना का इतिहास, विश्वकला का इतिहास आदि सैद्धांतिक विषयों का विशद अध्ययन।
- पारंपरिक जयपुर फेस्को(राजस्थान) एवं ऑर्थोडॉक्स किश्चियन आइकॉन (बैजेंटाइन ग्रीस) पेंटिंग का अनुभव पोट्रेट' चित्रांकन में विशेष रुझान।
- ग्रीक, फ्रेंच एवं जर्मन भाषाध्ययन।
- अंतरराष्ट्रीय आधुनिक कला आंदोलनों की श्रृंखला में छः आवॉ-गार्द प्रयोग संपन्न।
- बौद्ध एवं ऑर्थोडॉक्स क्रिश्चियन तुलनात्मक कलाओं पर ग्रीस में 4 वर्ष गहन शोध, राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों में भागीदारी एवं शोध पत्र प्रकाशन।
- कलाकर्मी-आलोचक ,कला एवं कला-शिक्षाविद, आजीवन सदस्य , इंडियन आर्ट हिस्ट्री कॉंग्रेस, गुआहाटी। ललित कला अकादमी नई दिल्ली की कला-शिक्षा संबंधी राष्ट्रीय 'करीकुलम' समिति में सदस्य।
- संस्थापक सदस्य एवं संपादक, 'सप्तवर्णी कला-साहित्य सृजन-शोध पीठ' भोपाल।
- कलाध्यापन एवं नवाचारी पाठ्यकम संरचना का 38 वर्षीय अनुभव।
- पूर्व रूपंकर निदेशक, भारत भवन भोपाल।
- संप्रति 'रूपध्वनि-आधुनिक कला व्याख्या, आवाँ-गार्द प्रयोग एवं कला-आलोचना' ग्रंथ तैयारी में।
- संपर्क- एच 8 'सप्तवर्णी,सूर्या आवासीय परिसर, राजा भोज कोलार मार्ग, भोपाल-462042
- दूरभाष : 0755-2493678 / 4907977,
  मो. 09826051959, 9826215072

ललित कला अकादेमी
राष्ट्रीय कला संस्थान

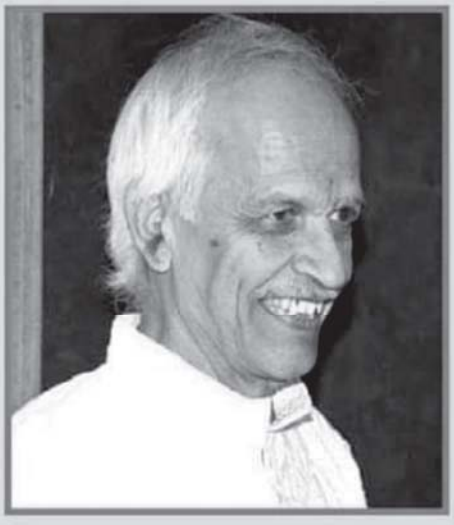

अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कला समीक्षक, प्रख्यात चित्रकार
आर्ट फोकस के संपादक, सप्तवर्णी शोध संस्थान के संस्थापक

राजाराम

के दुखद निधन पर उनको भावभीनी श्रद्धांजलि

प्रोफेसर राजाराम दो बार भारत भवन के रूपांकर प्रमुख रहे। हमीदिया कालेज और एम एल बी कालेज में कला विभाग के आचार्य और अध्यक्ष रहे। कुछ समय वल्लभ भवन में संस्कृति विभाग में ओ एस डी भी रहे। एक फेलो के रूप में ग्रीस की शोध यात्रा भी की ।
कला जगत में उनका योगदान भुलाया नहीं जा सकता। मैं ललित कला अकादेमी परिवार एवं कला जगत की ओर से उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

डॉ उत्तम पाचारणे
अध्यक्ष, ललित कला अकादेमी

पुण्य-स्मरण

बहुरंग को एक रंग में बदलने वाले एक प्रयोगधर्मी जुझारु कलाकार थे : प्रो. राजाराम

डॉ. बिनय षडंगी राजाराम

अनेक रंगों को विशेष तकनीक संयोजन से एक निर्लिप्त रंग में बदलने का सार्थक प्रयोग करते हुए 'एन-टोन-पेंटिंग' (Nutral TONE - PAINTING) की एक पूरी श्रृंखला बनाकर अपने उम्र के मात्र 28वें वर्ष में ही रंगों के प्रयोग की नई थ्योरी स्थापित करने वाले प्रो. राजाराम का संपूर्ण जीवन कला और कला के लिए ही था।

बहुत छोटी उम्र में ही चित्रांकन के प्रति आकर्षित बालक के रूप में 'राजा' अपने आस-पड़ौस और नाते-रिश्तेदारों में अत्यंत लाड़ले और लोकप्रिय हो गए थे। उनके फूफा श्री मनोहर गोधने और मामा श्री मदनलाल शर्मा अपने समय के जाने-माने कलाकार रहे। श्री मनोहर गोधने तो स्वतंत्रता दिवस की झांकियों में मध्य प्रदेश की झांकी के 'कला निर्देशक' के रूप में कई वर्षों तक प्रतिनिधित्व करते रहे तथा यहाँ की झाँकियों को पुरस्कार भी दिलवाए। श्री मदनलाल शर्मा एक हरफनमौला बहुआयामी कलाओं में अपना सशक्त हुनर दिखाने वाले व्यक्तित्व के स्वामी थे। पोट्रेट में तो उनको महारत हासिल थी। बालक 'राजा' में कला के गुण उनके इन्हीं पूर्वजों से ही आए थे।

इंदौर के जमींदार श्री निरंजन राव जी बालक 'राजा' के कला-हुनर से बहुत प्रभावित थे। और उसे प्रोत्साहित भी करते थे। जमींदार जी के बड़ा-रावला में एक बार 'सर्वपल्ली राधाकृष्णन' का आगमन हुआ था, बमुश्किल 10-11 वर्ष के बाल कलाकार 'राजाराम' ने उनका बेहतरीन सुन्दर पोट्रेंट स्कैच वहीं कार्यक्रम स्थल पर ही बना दिया था। जमींद्वार श्री निरंजन राव ने बहुत गर्व के साथ वह पोट्रेट स्केच महामहिम राष्ट्रपति जी को दिखाया। तब उन्होंने उस बाल कलाकार के गाल पर थपकी देते हुए शाबाशी का पुरस्कार और अपने हस्ताक्षर दिए थे। उस समय इन्दौर शहर के लिए यह समाचार आज की भाषा में 'वायरल' हो गया था।

कुछ ही क्षणों में कुछ लाइनों मात्र से पोट्रेट बना देने में माहिर 'राजा' की यह विशेषता समय को साथ-साथ परवान चढ़ती गई और उन्होंने शताधिक पोट्रेट बनाए बाँटे, भेंट भी किए। आज भी कितने ही लोगों के संग्रह में उनके ड्राईंग स्केच मिल जाएंगे। बच्चों से लेकर बड़ों तक न जाने कितने लाइफ स्कैच उन्होंने बनाए है उन्होंने, जिसकी कोई गिनती नहीं है। पेंसिल, कलम, जलरंग, पेस्टल, तैलरंग हर माध्यम में उनके पोट्रेट अत्यंत सशक्त और हूबहू बनते थे।

उस समय के अन्य माता-पिता की तरह बाल-कलाकार राजाराम के पिता भी चाहते थे उनका होनहार पुत्र डॉक्टर बने और

डॉक्टर बनने लिए 'विज्ञान विषय' के साथ स्कूल शिक्षा पूरी करें, सो उन्होंने विज्ञान विषय लेकर हायर सेकेण्डरी की पढ़ाई की। उनके जीव विज्ञान के चित्र बहुत सुन्दर बनते थे। किन्तु अन्य सब कुछ उन्हें बेजान बेमतलब लगता था। इसीलिए अंतिम वर्ष में वे वह परीक्षा पास नहीं कर पाए। उस समय की घटना के बारे में वे बड़े गर्व से बताते हैं कि उनके किसी सहपाठी ने उन्हें नकल करने को कहा था, जिसे उन्होंने ठुकरा दिया और परिणामत: फेल हो गए थे। लेकिन, जिद करके उसी विज्ञान विषय के साथ हायर सेकण्डरी पास की किन्तु कॉलेज में कला-संकाय में जाकर बी.ए. किया, साथ में चित्रकला का अध्ययन चलता रहा, जो विद्यालय की आठवीं कक्षा से ही प्रारम्भ हो चुका था।

कलागुरू श्री देव लालीकर द्वारा स्थापित इन्दौर का 'चित्रकला मन्दिर', कला शिक्षा की दृष्टि से अत्यंत प्रसिद्ध था, जहाँ जी.डी. आर्ट बंबई जैसी ख्यातिलब्ध संस्था की परीक्षा देने की पात्रता के साथ कला-डिप्लोमा की प्रतिष्ठित उपाधि के लिए तैयारी करवाई जाती थी। दूसरे शब्दों में इन्दौर का 'चित्रकला मंदिर' बंबई के जी.डी. आर्ट कोर्स का ही अध्ययन केन्द्र-विस्तार था। विश्व प्रसिद्ध चित्रकार हुसैन और बेन्द्रे भी उसी केन्द्र से पढ़कर आगे बढ़े थे। ऐसे महत्वपूर्ण कला केन्द्र में बहुत कम उम्र में ही श्री राजाराम ने अपनी कला शिक्षा प्रारम्भ कर दी थी। प्रथम वर्ष का महत्वपूर्ण पाठ्यक्रम 'एलिमेंटरी ड्राईंग ग्रेड' की तैयारी करवाने वाले श्री माधव शान्ताराम रेगे ही थे, जो संयोग से हुसैन और बेन्द्रे के भी गुरू रहे।

प्रथम वर्ष की परीक्षा के समय गुरू जी ने उनको छुट्टी दे दी थी, क्योंकि वे बहुत छोटे थे। यद्यपि अगले वर्ष वे अपने उन्हीं सहपाठियों के साथ परीक्षा देने बम्बई गए थे जो उनके अभिभावक भी थे। उस प्रथम परीक्षा-यात्रा में उन्होंने भी अन्य सब साथियों की तरह परीक्षा के बाद बंबई बाजार से कुछ खरीदा था, जिसे वे दिखाना नहीं चाहते थे किन्तु, अपने बाल-साथी की खरीदी को देखने के लिए सबने जिद की तो पता चला एक बाजा बजाता भालू खरीदा था उनके बाल-कलाकार मित्र ने। उस खिलौने को देखकर सबने खूब मजे लिए थे।

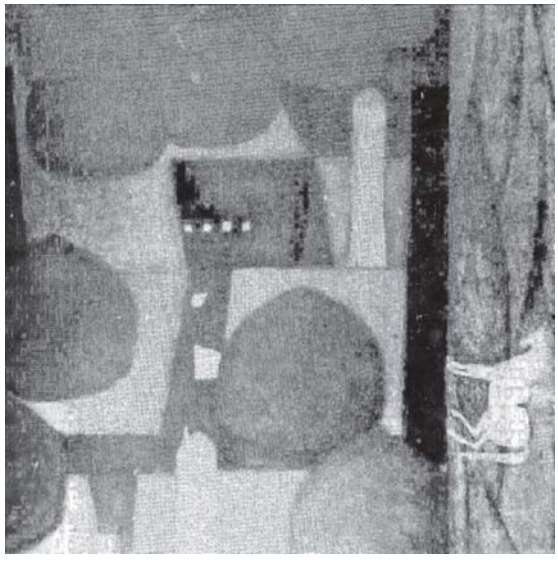

बी.ए. परीक्षा के पूर्व ही श्री राजाराम ने 'जी.डी.आई मुंबई' का पूरा कोर्स सफलता पूर्वक समाप्त कर लिया था। फूफा जी श्री मनोहर गोधने के आग्रह पर और सलाह पर बी.ए. के पश्चात् उच्च शिक्षा के लिए परिवार के इन होनहार कलाकार को बड़ौदा भेजा गया, जो उस समय कला शिक्षा की एक श्रेष्ठ संस्था थी, और आज भी है।

बड़ौदा में रह कर अध्ययन के दिनों में ही घर-परिवार में कुछ वित्तीय विषमताओं के चलते उनके बड़े भाई श्री रमेशचन्द्र शर्मा ने अपनी उच्चशिक्षा अधूरी छोड़कर सरकारी स्कूल में शिक्षक की नौकरी प्रारंभ कर दी और परिवार की तथा अपने छोटे भाई की पढ़ाई का दायित्व अपने ऊपर ले लिया। छोटे भाई को पारिवारिक उन विषमताओं का पता तब चला, जब वे अवकाश के दौरान घर लौटे थे। भाई के इस त्याग के कारण वे अपने बड़े भाई को बहुत मान देते थे। इसी मान को स्थायित्व देने के लिए आगे चलकर उन्होंने अपने प्रथम पुत्र को शैशवावस्था में ही नि:सन्तान अपने बड़े भाई-भाभी को सौंपकर उनके प्रति अपने संबन्ध की अभिन्नता को स्थायित्व प्रदान करने का प्रयास किया था। अपनी प्रथम संतान को अपने से दूर रखने के गहरे दर्द को उन्होंने भाई की खुशी में समाहित कर दिया था।

बड़ौदा में कला-आलोचना, कला-इतिहास में विशेषज्ञता के साथ प्रथम श्रेणी - प्रथम स्थान प्राप्त कर 'एम.ए. फाईन आर्ट' डिग्री के साथ जब वे इन्दौर लौटे तब मध्यप्रदेश के महाविद्यालयों में श्री राजाराम ने कला के व्याख्याता के लिए आवेदन किया, साक्षात्कार दिया और बिना किसी वरदहस्त के चुन लिए गए। किन्तु चुनाव की योग्यता क्रम में कारणवश उनका दूसरा या तीसरा स्थान रहा, इसलिए म.प्र. में कला व्याख्याता की वह शासकीय नौकरी उन्होंने स्वीकार नहीं की और राजस्थान की शिक्षण संस्था वनस्थली विद्यापीठ में महाविद्यालयीन कला विभाग में व्याख्याता के रूप में पहली नौकरी प्रारंभ की। अगली बार, संभवत: चार वर्ष बाद पुन: मध्यप्रदेश में लोकसेवा आयोग द्वारा कला-व्याख्याता के पद विज्ञापित हुए, पुन: उन्होंने आवेदन किया, साक्षात्कार में अपनी काबिलियत सिद्ध करते हुए योग्यता क्रम में उच्च स्थान प्राप्त करके ग्वालियर के कमला राजा कन्या महाविद्यालय के कला-विभाग में अध्यक्ष के रूप में पदभार संभाला।

बहुत बार परिस्थितियाँ ईश्वरीय इच्छाओं का प्रकारान्तर से कारण बनती हैं और संपूर्ण जीवन का मार्ग सुनिश्चित कर देती हैं। हमारे साथ यही हुआ। वनस्थली में राजाराम जी की नौकरी संभवत: पूर्व निर्धारित ईश्वर की इच्छा ही थी, क्योंकि वही स्थान हमारे जीवन का निर्धारक बिन्दु बना।

मैं बहुत छोटी उम्र में, छठी कक्षा से ही वनस्थली में ओड़िशा सरकार की छात्रवृत्ति के साथ पढ़ती हुई कॉलेज तक पहुँची थी। कॉलेज में भी मैंने स्कूल समय के अपने प्रिय विषय हिन्दी, संस्कृत और चित्रकला लेकर अपनी पढ़ाई जारी रखी। महिला-शिक्षा को समर्पित अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त वनस्थली

विद्यापीठ के महाविद्यालय का कला-विभाग बहुत बड़ा और समृद्ध था। हम बी.ए. के विद्यार्थियों को पारम्परिक वाश-शैली के जाने-माने कलाकार श्री देवकीनन्दन शर्मा पढ़ाते थे। श्री राजाराम शर्मा बड़ौदा से पढ़ कर आए थे, अत: एम.ए. की 'थ्योरी' एवं 'लाईफ स्क्रैच' की कक्षाएँ लेते थे। हमारी कक्षा उन्होंने कभी नहीं ली लेकिन, पता नहीं कब वे मेरी कलात्मक अभिरूचि से परिचित हुए!

वनस्थली ने हमारे जीवन में एक और संयोग जोड़ा था। उसके बारे में सोचती हूँ तो लगता है नियति के आगे हम सब कितने अनजान होते हैं?

निश्चित ही वह एक संयोग ही था कि स्कूल में मेरे कला शिक्षक रहे श्री रमेश जैन और श्री राजाराम बड़ौदा से ही एक-दूसरे के अभिन्न मित्र थे। श्री रमेश जैन ने स्कूल के विद्यार्थियों में कलात्मक रुचि जागृत करने के लिए एक 'बोर्ड मैगजीन' प्रारंभ की थी। मुझे सगर्व याद है कि मेरी एक कहानी को उन्होंने उसमें प्रकाशित किया था। उस समय मैं दसवीं कक्षा की विद्यार्थी थी और 'चन्द्र-यात्रा' पर लिखी मेरी वह पहली कहानी प्रकाशित हुई थी जो मेरे लेखकीय जीवन में प्रकाशन के प्रारंभ की याद के रूप में मुझे आज भी प्रेरित करती है।

श्री रमेश जैन वनस्थली से ही टर्की चले गए थे और श्री राजाराम ग्वालियर। बाद में अपने भाई के साथ भुवनेश्वर घूमने के बहाने मेरे घर पहुँच कर उन्होंने मेरी माँ से मेरा हाथ माँगा और साथ भी। 1974 की वसंत पंचमी को हम लोगों का 'वासंती पर्व' प्रारंभ हुआ था। उस समय ग्वालियर के शासकीय कमला राजा कन्या महाविद्यालय में पढ़ाते हुए, अपने अनेक नवाचारों के कारण भी श्री राजाराम अत्यन्त लोकप्रिय थे। लोकप्रियता और चाहने का आलम यह था कि उनकी छात्राएँ प्राय: प्रतिदिन ही उनकी नवेली पत्नी के लिए, मोगरे के फूलों का ताजा गजरा भेजा करती थीं। इतना स्नेह-सिक्त वातावरण, इतना प्यार, किसी कला -शिक्षक की पत्नी बनकर मिलेगा, यह तो मेरी कल्पना में ही नहीं था। आज सोचती हूँ तो परीलोक की कहानी जैसा लगता है।

विद्यार्थियों में उनकी लोकप्रियता अध्यापन के प्रारंभ से ही जुड़ी रही। वनस्थली विद्यापीठ की एम.ए. की छात्राओं से प्रारंभ कर ग्वालियर के कमलाराजा कन्या महाविद्यालय तथा मुरार कॉलेज और भोपाल के लक्ष्मीबाई कन्या महाविद्यालय तक की अनेक छात्राएँ, निजी तौर पर परीक्षा देने वाले पुरुष छात्र और कितने ही नवोदित स्थापित कलाकारों की पूरी एक लंबी कतार है उनके चाहने वालों की। इनके अतिरिक्त कला से प्रेम करने वाले लेखकों, समालोचकों और पत्रकारों की तो कोई गिनती ही नहीं है। बड़ोदा में अध्ययन काल से ही उन्होंने कला-समीक्षा पर खूब लेखनी चलाई। नई दुनिया, म.प्र. संदेश, दिनमान सहित अनेक पत्रिकाओं तथा कला-पत्रिकाओं में निरंतर खूब छपते रहे, तो इनकी बेबाक कला, समीक्षा के भी अनेक प्रशंसक थे, और हैं।

प्रो. राजाराम की विद्यार्थियों ने सदा सर्वदा मेरे साथ बेहद प्यारा रिश्ता रखा जो ग्वालियर के के.आर.जी. से प्रारंभ हो कर भोपाल के लक्ष्मीबाई कन्या महाविद्यालय की छात्राओं के साथ आज तक भी बना हुआ है। एक मजेदार किस्सा याद आ रहा है। के.आर.जी. कॉलेज से अचानक राजाराम जी का स्थानान्तरण ग्वालियर के उपनगर मुरार के कॉलेज में हो गया था। तब के.आर.जी. की छात्राओं ने उसे रूकवाने के लिए हड़ताल कर दी थी, और उच्च अधिकारियों तक ज्ञापन भी पहुँचाया था। उन छात्राओं में से एक आज भोपाल की लेखिका संघ की अध्यक्ष है श्रीमती अनिता सक्सेना और आज भी उनसे और मुझसे निकटता में जुड़ी हैं।

विद्यार्थियों में उनकी लोकप्रियता का कारण कला-शिक्षा के प्रति उनकी गहन निष्ठा और प्रत्येक विद्यार्थी को विशिष्ट मानने की उनकी सोच रही है जो उनके विद्यार्थियों में स्वाभिमान के साथ कला के प्रति प्रेम को जागृत करती है। कला विद्यार्थियों के भीतर स्वाभिमान, श्रेष्ठता से भरपूर सर्जक और समाज को कुछ देने का भाव जागृत करने के लिए प्रो. राजाराम ने अनेक जतन किए थे। जो छात्र जिस कला शैली के प्रति रुझान रखता था, उसे उसी की महिमा बताते हुए उसी शैली को कैसे अधिक गुणवत्ता के साथ बढ़ावा देना है, यह गुण उनके भीतर कूट-कूट कर भरा था। विद्यार्थी जीवन में ही अपने सर्जक-व्यक्तित्व की पहचान हो इसके लिए उन्होंने अपनी छात्राओं की कला प्रदर्शनियाँ आयोजित की। विभागीय प्रदर्शनियों से ऊपर उठकर सार्वजनिक प्रदर्शनियों के लिए उनको न केवल प्रेरित किया अपितु तैयार भी किया। कला विभाग में अध्यक्ष रहते हुए उन्होंने भोपाल की शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई महाविद्यालय की वर्ष 1990 की बारह होनहार छात्राओं की एक महत्वपूर्ण सामूहिक प्रदर्शनी भोपाल की कला-वीथिका सभागार में लगवाई थी जो मध्यप्रदेश के कला क्षेत्र में युवा चित्रकारों की एक सफलतम प्रदर्शनी के रूप में आज तक याद की जाती है।

'बारा की टोली' नाम से एम.ए. चित्रकला की बारह छात्राओं में उपासना सारंग, संध्या श्रीवास्तव, अजीत कपूर, बबीता माखीजानी, मंजुला जैन, नीता वर्मा, पूनम श्रीवास्तव, रेखा

अग्रवाल, संगीता तोमर, संगीता गर्ग, संगीता परमपली तथा उषा जैन की शानदार तैयारी के साथ प्रदर्शित उस प्रदर्शनी ने किसी स्थापित कला समूह की प्रदर्शनी जैसी वाह-वाही लूटी थी। उस प्रदर्शनी की सफलता ने कला और कला के विद्यार्थियों में, उनके माता-पिता एवं संबन्धियों में ही नहीं, तत्कालीन राजनीतिक स्तर पर भी खूब सुर्खियाँ बटोरी। सहभागी छात्राओं में और देखने वालों में कला और कलाकार के प्रति जो विशेष उत्साह का भाव विकसित हुआ, जिसने आने वाली पीढ़ियों को भी प्रेरित किया।

कला शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए प्रो. राजाराम ने अथक प्रयत्न किए थे। स्कूल शिक्षा से प्रारंभ करके उच्चशिक्षा में कला-विषय की गुणवत्ता को प्रखर एवं समयोपगी बनाने के लिए समय-समय पर उन्होंने कला-पाठ्यक्रम में सकारात्मक परिवर्तन की पहल की। अपने निजी प्रयासों से पुराने पाठ्यक्रम को भी धारदार बनाया और विद्यार्थियों में विषय के प्रति गर्व का भाव जागृत करते रहे। प्रायोगिक कार्य के साथ-साथ कला के आधारभूत सिद्धान्तों (थ्योरी) के अध्ययन के वे प्रबल पक्षधर थे।

'कला' विषय के अकादेमिक महत्व को प्रतिपादित करने के लिए प्रो. राजाराम ने महारानी लक्ष्मीबाई कन्या महाविद्यालय, भोपाल में कला विभाग के अध्यक्ष पद पर रहते हुए 1993 में यूजीसी द्वारा प्रायोजित 'परंपरा और हम' विषय केन्द्रित दो दिवसीय एक शोध-संगोष्ठी का आयोजन किया। उस महत्वपूर्ण सेमिनार में छात्र-छात्राओं के अतिरिक्त डॉ. रतन परिम्, डॉ. के के चक्रवर्ती, डॉ. रमा पुरी, डॉ. रमेश जैन, डॉ. मनोहर गोधने, डॉ. लक्ष्मण भाण्ड, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, डॉ. विकाश भट्ट,, श्री नर्मदा प्रसाद, श्री निरंजन महावर जैसे विषय विशेषज्ञों ने सहभागिता की थी। शोध-पत्र, शोध चर्चा, स्लाइड शो, प्रदर्शन-प्रस्तुति तथा प्रदर्शनी आदि से सज्जित वह चित्रकला-सेमिनार कला के बहुआयामी महत्व को सिद्ध करने वाला एक अति महत्वपूर्ण उदाहरण योग्य आयोजन बन गया था। मध्यप्रदेश के तत्कालीन उच्चशिक्षा आयुक्त श्री मोती सिंह तथा महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. यू.एस. पाठक ने इस बहुआयामी कला सेमिनार को 'मील का पत्थर' बताया था।

कला-अध्ययन में कला-कर्म के साथ-साथ कला-इतिहास-लेखन, कला-आलोचना और कला की परख को भी वे गंभीरता से लेते थे। कला-इतिहास लेखन और कला-आलोचना के क्षेत्र में मध्य प्रदेश के लिए उनका अप्रतिम योगदान है। मध्यप्रदेश के सभी महत्वपूर्ण कलाकारों पर उनकी सार्थक समीक्षात्मक लेखनी चली है। कला-गुरू चिंचालकर जी, श्री चंद्रेश सक्सेना, श्री सचिदा नागदेव, श्री सुरेश चौधरी, श्री राम मनोहर व्यौहार, श्री रुद्रकुमार झा, श्री रमेश जैंन, नूतन, श्री विजय मोहिते, श्री वसंत आगाशे, श्री वसंत चिंचवड़कर तथा अन्य अनेक महत्वपूर्ण मध्यप्रदेश के कलाकारों पर और भारत के अन्य क्षेत्रों में भी सक्रिय कला-सर्जकों पर उनकी सशक्त लेखनी खूब चली है।

मध्यप्रदेश की माटी के सच्चे सपूत प्रभाववादी हरफनमौला कलाकार श्री डी. जे. जोशी से उनको विशेष लगाव था। वे उन्हें मध्यप्रदेश के माइकल एंजेलो कहते थे। उन पर बहुत गंभीर लेखन है प्रो. राजाराम का। डी.जे. जोशी की तरह दक्षिण भारत से आकर ग्वालियर में बसने वाले मूर्तिकार श्री रुद्रहँजी के काम से भी वे बहुत प्रभावित थे। श्री रूद्रहंजी पर तो प्रोफेसर साहब की छात्रा डॉ. सुचिता राउत ने उन्हीं के मार्गदर्शन में शोध कार्य सम्पन्न कर पीएच.डी. की डिग्री प्राप्त की है। लगभग दो दर्जन शोध-कर्ताओं ने इनके निर्देशन में अपने लघु-शोध और पीएच.डी. कार्य सम्पन्न किये हैं। जिनमें डॉ. सुचिता राउत की तरह डॉ. सुषमा श्रीवास्तव ने भी स्कूल शिक्षा में कला विषय पर गंभीर कार्य किए हैं।

ललित कला अकादमी , दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'हिस्टोरिकल डेव्हलपमेंट ऑफ कंटेपरी इंडियन आर्ट' (Historical Development of Contemporary Indian Art) नामक 500 पृष्ठीय विशाल ग्रन्थ में प्रो. राजाराम के दो विस्तृत आलेख है।

(i) The Mosaic of Indian and European Art Trends. in Central India (1180 and after) Page 124-149

(ii) Revivalism and the Third Art Wave in Madhya Pradesh - Page 344-359

ऐसे ही 1998 में "ACTA XIII" नाम से संग्रहित CITADEL VATICANO - SPLIT से तीन खंडों में प्रकाशित अंर्तराष्ट्रीय शोध ग्रंथ में प्रकाशित आपका लेख Byzantium and Inadia : Parallel Developments in the field of visual Arts' अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक महत्व का है जिसमें भारतीय बौद्ध-कला पर बेजेण्ट्यम तक के प्रभाव-विस्तार की महत्वपूर्ण

तथ्याधारित चर्चा हुई है।

भारत सरकार की कला फैलोशिप पर ग्रीस में चार वर्ष रह कर उन्होने बैंजेण्टाईन कला पर भारतीय बौद्ध कला वे प्रभाव को लेकर व्यापक शोध कार्य किया। ग्रीस की प्रतिबंधित मोनेस्टरी 'मेतेओरा' जाकर आर्थोडॉक्स ईसाई धर्म, परंपरा और वहाँ की जीवन-चर्चा आदि को बारीकी से देखा-परखा और उन पर गंभीर चिंतन लेखन किया। कला आलोचना के क्षेत्र में उनकी दृष्टि बहुत व्यापक थी, क्योंकि उन्होंने भारत से लेकर योरोप की गलियों में पनपते चित्रों, चित्र-शैलियों और चित्र -व्यापार को निकटता से देखा था।

कला-इतिहास और कला आलोचना पर गहन अध्ययन, मनन-चिंतन और लेखन की निरंतरता वे कारण के अपने तथ्यों और कथ्यों में बहुत स्पष्ट होते थे। कारणवश अनेक बार उन्हें अपने आस-पास के कला-जगत में वक्र दृष्टियों का सामना करना पड़ता था, जिसकी कभी उन्होंने परवाह नहीं की। वे अपने संरक्षक आप ही थे, इसलिए भी हर परिस्थिति से जूझने को तैयार रहते थे। गांधीजी को एक युग पुरुष मानने वाले वैचारिक दृष्टि से राष्ट्रवादी विचारधारा के प्रबल पक्षधर रहे, किन्तु अपने विषय के प्रति उनकी प्रतिबद्धता सर्वोपरि रही।

'पोर्ट्रेट' के अतिरिक्त भावनात्मक विषय-परक चित्र बनाने में वे सिद्ध हस्त थे। गांधी की विचारधारा के दुरुपयोग पर उनका एक चित्र बहुत सशक्त अभिव्यक्ति का उदाहरण है, जिसमें उन्होंने गांधी को कोकाकोला की बोतल में उल्टा लटका दिया था। ऐसे ही ढोंगी मार्क्सवादियों के सर्वग्रासी स्वभाव पर उन्होंने एक चित्र बनाया था जिसमें एक पेटू पंडित को 'हे मार्क्स' की रामनामी ओढ़ाई थी। दोहरे व्यंग्य से परिपूर्ण यह चित्र उनके व्यंग्य-चित्र श्रृंखला का एक बेहतर चित्र है। 'सर्वग्रासी मनुष्य', 'फुलाया हुआ व्यक्तित्व', 'अयोध्या का रक्त कुण्ड' जैसे उनके कुछ महत्वपूर्ण व्यंग्य-चित्र उल्लेखनीय है।

कला में नवाचार के पक्षधर डॉ. राजाराम प्रारंभ में ही नए-नए प्रयोग करते रहे। बड़ौदा में अध्ययन के समय से उनका 'एन-टोन-प्रेंटिंग' प्रयोग भारतीय आधुनिक कला-विकास में एक महत्वपूर्ण स्थापना थी। चित्रों में रंगों के सामंजस्य और सौन्दर्य को स्पष्ट करते तटस्थ स्वभाव के रंग-प्रयोग पर आधारित चित्र-श्रृंखला बनाकर उन्होंने अपने उस 'सिद्धांत' को सिद्ध किया। इस प्रयोग से संबंधित 12 बड़े चित्रों की एक प्रदर्शनी उन्होंने दिल्ली की श्रीधरानी आर्ट गैलरी में लगाई थी। 5 नवम्बर 1971 में, जिसका उद्घाटन तत्कालीन ललित कला अकादमी की एडीटर जयाअप्पा स्वामी ने किया था। प्रदर्शनी के साथ विषय और सिद्धांत को स्पष्ट करता एक 'मेनिफेस्टो' भी उन्होंने प्रकाशित किया था। उस कालखंड में 28 वर्ष से भी कम आयु के एक युवा कलाकार का वह प्रयोग-प्रदर्शन तत्कालीन कला-जगत की राष्ट्रीय सुर्खी बन गई थी।

'एन-टोन' अर्थात् न्यूट्रल-टोन अर्थात् रंगों भी तटस्थता। ऐसे रंग जो अलग-अलग दिखने के बाद भी आंतरिक स्वभाव की तटस्थता के कारण एक रंग का आभास देते हैं। इस थ्योरी को प्रतिपादित करते उनके चित्र बहुत प्रभावशाली हैं। उनमें बहुरंगी होने के बाद भी एक रंग का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

प्रो. राजाराम का दूसरा प्रयोग बहुत मजेदार और दो कलाओं के सम्मिलित स्वभाव को अभिव्यक्ति देने वाला था। चित्रकार के रंग और नर्तक के पदचापों का सुन्दर समन्वय था वह प्रयोग। एक बड़े भू-भाग को 'कैनवास' और रंगों की थालियों को 'पेलेट' बना कर मित्र मणिपुरी नर्तक श्री नवचन्द्र सिंह को इच्छित रंगों में पैर रखकर नृत्य करने दिया। रंगों के चुनाव चित्रकार के और पदचापों का लय-विस्तार नर्तक का। दोनों के इस सहभागिता से जो रुपाकृति तैयार हुई थी वह अद्‌भुत थी।

इस प्रयोग के उपरांत शास्त्रीय संगीत के गहरे प्रेमी कलाकार श्री राजाराम ने रागों पर चित्र बनाए थे। इस चित्र श्रृंखला की साक्षी मैं भी थी। रात को आकाशवाणी द्वारा प्रसारित प्रसिद्ध गायकों की गायकी को बारीकी से सुनना और उनमें विकसित अनुभवात्मक आकृतियों का स्कैच करके स्वयं के भावों को सहेजना, फिर अगले दिन उस पर चित्र तैयार करना ..... यह एक जटिल मानसिक ही नहीं, शारीरिक प्रक्रिया भी थी, जिसे वे बड़ी कुशलता से साकार करते थे। लगभग सात रागों पर सात चित्र उनके पूरे हो चुके थे जो पारंपरिक रागमाला आधारित चित्रों से नितांत भिन्न रागों की गायकी के प्रभाव पर आधारित आधुनिक शैली के चित्र थे। यह प्रयोग और आगे चलता, किन्तु उसी दौरान उनको ग्रीस प्रवास का अवसर प्राप्त हुआ। भारत सरकार की फेलोशिप और मध्यप्रदेश, ग्वालियर के मुरार कॉलेज से अध्ययन अवकाश लेकर नवम्बर 1977 में वे एंथेस (ग्रीस) के लिए दिल्ली से रवाना हुए। एंथेस में ग्रीक भाषा का अध्ययन पूरा करके वहीं रहते हुए उन्होंने थैसालोनिकी विश्वविद्यालय के पुरातत्व एवं कला विभाग के प्रोफेसर श्री पी. एल. वोकोतोपुलो के निर्देशन में बैजेण्टाइन कला पर शोध कार्य प्रारंभ किया था।

लगभग एक वर्ष पश्चात् 1978 सितम्बर को मैं अपने सात

माह के शिशु पुत्र कौस्तुभ के साथ एंथेस पहुँची, जहाँ उन्होंने मेरे लिए ग्रीक सरकार द्वारा एशिया स्तर पर दी जाने वाली 'इकी' छात्रवृत्ति के लिए आवेदन करने की पूरी तैयारी कर ली थी। मेरी अकादेमिक उपलब्धियों का ग्राफ बहुत अच्छा था, इसलिए मेरिट के आधार पर उस छात्रवृत्ति के लिए मेरा चुनाव हो गया। उनके लिए वह गर्व करने का एक कारण भी बन गया क्योंकि संपूर्ण भारत से उस फैलोशिप के लिए एकमात्र मेरा चुनाव हुआ था। मैंने उसी विश्वविद्यालय के 'तुलनात्मक भाषा विभाग' के प्रोफेसर आल्किस आंग्रेलु के निर्देशन में अपना शोध कार्य सम्पन्न किया।

ग्रीस में हम दोनों ने लगभग पाँच वर्ष बिताए और उन्होंने बिजान्तिनी कला और मैंने बिजान्तिनी साहित्य केन्द्रित अपने-अपने शोध कार्य संपन्न किए। वहाँ रहते हुए हम दोनों ने संपूर्ण योरोप का शैक्षिक भ्रमण किया। हमारी व्यापक योरोप यात्रा का साक्षी हमारा शिशु पुत्र कौस्तुभ था, जो हमारी यात्रा-थकान को दूर करने के लिए हमारा अनमोल सहारा हुआ करता था। इस योरोप यात्रा का एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि ग्रीस के एक कला पारखी ने प्रो. राजाराम से एक बड़ा चित्र बनवाया था। उस चित्र की 'बनवाई' उन्हें इतनी मिली कि उसी से हम ढाई लोगों का तीन सप्ताह का 'यू-रेल पास' हमें मिल गया और हम लोगों ने यूगोस्लाविया, जर्मनी, फ्रांस, नीदरलैण्ड, इंग्लैंड और इटली आदि देशों की कला-दर्शन यात्राएँ पूरी की।

फ्रांस का 'लूव्र' म्यूजियम, जर्मनी का म्यूनिख शहर, लंदन की गलियाँ, इटली में रोम, वेनिस और पोंपई जैसे महत्वपूर्ण स्थानों की कलात्मकता, ऐतिहासिकता के साथ-साथ वहाँ का जन-जीवन, वहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य, वहाँ का वातावरण सब कुछ इतनी गहराई से हमने देखा और घूमा कि बरसों बाद भी वह सब आज भी आँखों में चल-चित्र से तैरते हैं। वेनिस की तैरती सड़कें, वेटिकन सिटी का विस्तार और उसके चर्च की गुंबद में माइकल एंजेलो के द्वारा बनाए गए चित्रों को देखने का रोमांच आज भी याद है। इटली के रवेना शहर में हम लोगों ने कलाकार मातिस के मूल चित्रों को देखा तो विह्वल हो गए थे। दक्षिण इटली का पोंपई शहर देखना 'समय-यात्रा' के समान था। किसी समय विसूवियस नामक पर्वत की ज्वालामुखी की राख में दब गए पोंपेई शहर के पुनरुद्धार के बाद ज्वालामुखी के समय की उसी संत्रास अवस्था को आँखों के सामने मूर्तिवंत देखना अपने आप में उसी इतिहास की यात्रा करने के समान एक अलौकिक अनुभव था। ग्रीस का तो हम लोगों ने चप्पा-चप्पा छान मारा था। वहाँ के छोटे-छोटे टापू, वहाँ के समुद्र के किनारे, ऑर्थो-डॉक्स चर्च, वहाँ के त्यौहार सब कुछ हमारे अपने से लगने लगे थे।

तीन सप्ताह के उस योरोप यात्रा से हमें किन्हीं वैचारिक क्षणों में यह प्रेरणा भी मिली थी कि 'चित्रकर्म' के माध्यम से हम चाहते तो वहाँ अपने आगे का जीवन बहुत संभ्रात भाव से गुजार सकते थे। लेकिन, भारत के प्रति प्रेम और भारतीयता का जो माद्दा हम लोगों के भीतर था, उसने हमारे मन में कभी भारत से बाहर बसने का सपना तक नहीं पनपने दिया।

गांधी जी के प्रति अटूट श्रद्धा, भारतीयता के गहरे समर्थक और जाति भेद के प्रबल विरोधी श्री राजाराम ने कभी 'अछूत' और कभी 'हिन्दू' उपनाम भी रखे। हम दोनों को जानने वाले हमें लेखन से ही पहचान लें, इसलिए मेरे नाम के आगे शर्मा सरनेम नहीं, अपना नाम जोड़कर लिखने की पहल वर्षों पूर्व हमीं लोगों ने प्रारंभ की थी, जो बाद में अन्य अनेक क्षेत्रों में अनेक लोगों ने अपनाया। मेरा नाम बिनय होने से कई बार अनजान लोग उन्हें ही बिनय समझ लेते थे, तब वे मजे लेकर ऐसी घटनाओं का जिक्र करते थे। उनका कहना होता था कि जब बिनय ' श्रीमती राजाराम' हो सकती है तो मैं 'श्रीमान बिनय' क्यों नहीं ?

कला के क्षेत्र में भी 'वाद', 'परिवाद', 'घराने', 'ताल्लुकदारी' खूब चलते रहे हैं। परन्तु वे किसी 'वाद' से बँधने के बजाय कला-कर्म की कर्मठता, सत्यता और सातत्य को महत्व देते थे। कला के नाम पर धूर्तता और गलतबयानी से उनको सख्त नफरत थी। 'मॉडर्न आर्ट' के नाम पर बिना समझ के कुछ भी बना कर 'अमूर्तन कला' का रौब दिखाने वालों को वे सीधी चुनौती देते थे। कला और कला-कर्म के प्रति वे गर्व का भाव रखते थे। आधुनिक कला और योरोपीय कला-आंदोलनों पर उनका अध्ययन अत्यंत गंभीर था, इसलिए बिना अध्ययन किए आधुनिक कला पर लफ्फ़ाज़ी करने वालों से सीधी बात कहने से वे कभी नहीं चूकते थे। कला क्षेत्र में अपनी साफगोई का उनको बहुत बार खामियाजा भी भुगतना पड़ा है, जिसका उन्हें कभी कोई मलाल भी नहीं था, क्योंकि वे स्वयं अपनी काबिलियत से खूब परिचित थे।

वादों-परिवादों से परे उनके कुछ निकटस्थ मित्रों में डॉ. धनंजय वर्मा, डॉ. देवेन्द्र दीपक और डॉ. रमेश जैन को वे अंतिम दिनों में भी बारंबार स्मरण करते रहे थे। हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ. धनंजय वर्मा और प्रोफेसर राजाराम की आत्मीय मित्रता का एक प्रमुख कारण संभवत: दोनों का आलोचना कर्म के प्रति गंभीर एवं सचोट-भाव रहा है, यह मुझे बहुत बाद में समझ में आया था। कला-आलोचना को जैसे प्रोफेसर राजाराम 'नव-सृजन' की श्रेणी में रखते थे, वैसे ही डॉ. धनंजय वर्मा भी आलोचना-कर्म को

'सृजन' की एक सशक्त विधा स्वीकार करते हैं। यह वैचारिक समभाव दोनों की मित्रता का अदृश्यआधार रहा है।

साहित्य और कला के जुड़ाव के साथ-साथ पारिवारिक मित्रता के संयोग भोपाल में डॉ. देवेन्द्र दीपक से भी बने और उसकी निरंतरता भी बनी रही। प्रो. राजाराम ने डॉ. देवेन्द्र दीपक जी का एक रेखाचित्र अचानक कभी बना दिया था जो इतना अच्छा बना है, कि डॉ. दीपक ने उसका उपयोग अपनी अनेक पुस्तकों में किया है। साहित्य अकादमी में रहते हुए डॉ. दीपक ने प्रो. राजाराम से मैथिलीशरण गुप्त तथा श्री कृष्ण सरल के चित्र अकादमी के लिए बनवाए थे जो निश्चित ही बहुत अच्छे बन पड़े हैं। राजाराम जी जब किन्ही साहित्यिक, सामाजिक या राजनीतिक विचारों में उद्वेलित या विचलित होते थे, तब दीपक जी से लम्बी बात करके आश्वस्ति पाते थे। मूर्तिकार डॉ. रमेश जैन उनके विद्यार्थी जीवन के प्रिय मित्र रहे जिनके मूर्ति-शिल्प कौशल को वे सदैव श्रेष्ठता की श्रेणी में ही रखते थे। दोनों की मित्रता की प्रगाढ़ता ने दोनों के परिवारों को भी पारिवारिक मित्रता की परंपरा सौंपी है।

कला-आलोचना और कला- इतिहास लेखन प्रो. राजाराम के अध्ययन का मुख्य विशेषज्ञ क्षेत्र था इसलिए कला आलोचना के नाम पर साहित्य बघारने वालों को वे कला-आलोचक की श्रेणी में रखते ही नही थे। अमूर्तन कला में मूर्त रूप देखना या पारंपरिक कला में फूल-पत्तियों के रंगाकारों की चर्चा करने को वे कतई कला-आलोचना नहीं मानते थे। कला-आलोचना की गंभीरता को भारतीय रूप-मान तथा पाश्चात्य नाप-तौल दोनों ही मानकों में सामंजस्य के साथ देखते और रूपाकारों के साथ 'स्पेस' अर्थात 'आधार' की पृष्ठभूमि की व्यापकता को वे बहुत महत्व देते थे। 'स्पेस तथा ऑब्जेक्ट' अर्थात 'स्थान और साधन' के ताल-मेल को समझाने के लिए वे एक अच्छा उदाहरण देते थे- ''पूरे कागज की सफेदी को ठीक स्थान पर बनाया गया एक लाल या काला बिन्दु भी पूरी तरह से संतुलित (बेलेन्स) कर सकता है जैसे माथे पर लगी बिन्दी। एक बिन्दी के द्वारा सम्पूर्ण 'कैनवास' एक 'पेंटिंग' बन जाता है। वही स्थान, साधन और रंग का सही ताल-मेल होता है।'' बहुत बार आदिवासी कला की आधुनिक कला से तुलना कर ली जाती है। इस विचार को वे पूरी तरह से नकार देते थे। वे कहते थे - ''लोक कला या आदिवासी कलाएँ वर्षों के सामूहिक अभ्यासों के परिणामस्वरूप विकसित होती हैं, इसीलिए उनमें जो परिपक्वता होती है उसकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती।'' उनका मानना था कि लोककला को ही आधुनिक कला की कोई शैली मान लेना उचित नहीं है। बंगाल के यामिनी राय ने लोककला-शैली को अपनाया और अपने अनुरूप ढाला, किन्तु वे लोक कलाकार नहीं है। वैसे ही पिकासो ने अनेक पारंपरिक स्थानिक कलाओं को अपने अनुरूप करके अपनी 'पिकासो-शैली' विकसित की।

प्रो. राजाराम भारतीय पारंपरिक कला-मानकों को बहुत महत्व देते थे और कला-आलोचना में भी उन बिन्दुओं की विशेष व्याख्या करते थे। नायिका की धनुषाकार भौंहों में धनुष का खिंचाव और भौंहों का बाँकपन दोनों एक साथ दिखाई देता है। तभी वह भौंहों के सौन्दर्य का परिभाषित करता है। बुद्ध की अवलोकितेश्वर की मूर्ति या चित्र में उनके नेत्र कमलवत्त माने गए हैं। कमल की अर्ध उन्मीलित पंखुड़ियों के भीतर से झलकती जलीय आर्द्रता को उसमें एक साथ दर्शाया गया है जो उनके हृदय में समाए वैश्विक करूणा को अभिव्यक्ति देता है। साहित्य में जिन उपमानों के प्रयोग शब्दों में होते हैं, वे ही कला में कलाकार की अभिव्यक्ति कुशलता के माध्यम से कला रूप में झलकते हैं। भारतीय उपमानों के कला में प्रयोग पर उनका एक विस्तृत और गंभीर आलेख 'रूप-ध्वनि' नाम से है। इसी नाम से उनके वर्तमान समय के महत्वपूर्ण आलेखों का संकलन तैयार है, जो कोरोना के कारण छप कर नहीं आ पाया है। वे कला की अभिव्यक्ति को रूप-ध्वनि ही मानते थे। उनके अनुसार कला वह रूप होती है जो शब्दों में न होकर रूप में ध्वनित होती है।

उनके सम्मान में उनके प्रिय विद्यार्थियों के आग्रह पर हमारे आवास 'सप्तवर्णी' में हमने एक कला-दीर्घा विकसित किया है जिसका नाम है ''राजाराम रूप-ध्वनि कला-दीर्घा''। इस कला-दीर्घा में प्रो. राजाराम के चित्रों की स्थायी प्रदर्शनों के साथ-साथ उनके विद्यार्थियों की एकल या समूह प्रदर्शनियाँ निरंतर चलती रहेंगी।

कला और कला - शिक्षा को समर्पित एक कलाकार के प्रति उनके विद्यार्थियों की, मेरी, आपकी और हम सबकी यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी। मैं जानती हूँ अपने विचारों और अपनी कला के माध्यम से वे सदैव हमारे साथ बने रहेंगे। स्वस्ति!

आभार :

मैं श्री भँवरलाल श्रीवास एवं कला समय परिवार के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ कि उन्होंने प्रो. राजाराम पर केन्द्रित यह अंक प्रकाशित करने का निर्णय ले कर उनके विद्यार्थी, उनके प्रशंसक, मित्रों तथा उनके परिवार को उसीम आनन्द के अनुभव का अवसर प्रदान किया।

- लेखिका वरिष्ठ साहित्यकार तथा प्रो. राजाराम की सहधर्मिणी है।

संस्मरण

सही गलत में कला को मत बाँधों...

अनुभूति ब्यौहार

राजाराम सर मेरे जीवन में वह शख़्स हैं जिन्होंने कला से मेरा परिचय करवाया। कुछ 6-7 वर्ष की थी मैं जब पहली बार उनसे भारत भवन में मिली थी, आयोजन था कॉलेज विद्यार्थियों की चित्रकला प्रतियोगिता। राजाराम सर एक गुरु व प्रतियोगिता के जज के रूप में वहाँ उपस्थित थे। मेरा उत्साह देख, मुझे भी उन्होंने एक ड्रॉइंग शीट पकड़ा दी। प्रतियोगिता का विषय था प्रकृति। मैंने बहुत सारी पत्तियाँ बनाई और रंग भरा उनमें नीला, वहाँ मौजूद किसी बड़े ने मुझे हरा रंग भरने को कहा और बोला कि 'बेटा नीला रंग ग़लत है, पत्ती तो हरी होती है', राजाराम सर बीच में बड़ी ही विनम्रता से बोल उठे 'बच्चे को मत बताओ की कौनसा रंग सही या ग़लत है, यदि उसको पत्ती नीली दिखती है तो नीली ही बनाने दो... सही ग़लत में कला को मत बाँधो...' ये बात 90 के दशक की है जिसके मायने शायद आज भी लोग समझने में असमर्थ हैं।

अपने समय से आगे की सोच रखने वाले, उन्मुक्त कला को बढ़ावा देने वाले और हर एक व्यक्ति की अभिव्यक्ति को समझ के सराहने वाले राजाराम सर को मेरा कोटि कोटि प्रणाम है। जीवन के हर पड़ाव में सर ने हमेशा स्वयं फ़ोन कर के या मेसेज भेज के निरंतर प्रोत्साहन दिया है और प्रेरणा दी है, और आगे बढ़ने की। अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त, बहुमूल्य कला के धनी, राजाराम सर सरस्वती माँ के पर्याय हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि सर जहाँ भी हों अपने प्रेम रूपी रंग बिखेरते रहें... !!

प्रो. राजाराम सर मेरे लिए मात्र गुरु ही नहीं थे

उपासना सारंग त्यागी

प्रो. राजाराम सर मेरे लिए मात्र गुरु नहीं थे । कब वे अभिभावक हुए और पिता तुल्य हो गये , पता ही नहीं चला। उनका सम्पूर्ण जीवन वास्तव में उनके नाम में समाहित 'राम' को चरितार्थ करने की एक सफल यात्रा रही। जीवन में मर्यादा, संयम और विनय का पाठ आप सहज ही उनके सानिध्य मात्र से , आत्मसात कर सकते थे।..... कला से मेरे जुड़ाव और इस क्षेत्र में थोड़ा-कुछ सीख पाने की वजह सिर्फ़ 'सर' ही थे ।

उनके न होने से मेरे कला जीवन में निश्चित रूप से हमेशा एक रिक्तता रहेगी ।.... मैं तो यह महसूस करती हूँ कि वे ऊपर स्वर्गलोक पहुँचकर भी उस संसार में कुछ नये रंग भरकर उसे और सुन्दर और ख़ुशनुमा ज़रूर बना रहे होंगे ।.... सादर नमन!

उनका जीवन एक सतत वसंत

नीकी पापानिकोलाओ

1980 के दशक में डॉ राजाराम को चार साल तक ग्रीस ने अपनी सुसंस्कृत धरती पर रहने का अवसर दिया। यहाँ ग्रीस में मैं उनसे मिली और उनके चेहरे पर गरिमा और करूणा देखी। मैंने उनके काम की प्रशंसा की! एक अद्भुत व्यक्तित्व। उनको अपने कार्य पर विश्वास था।

उनके अचानक चले जाने से मुझे बहुत दुख हुआ। उन्होंने हम सभी को छोड़ दिया जो उन्हें जानते थे,उनको चाहते थे। उनके लिए यह एक बड़ी छुट्टी ही है, क्योंकि उनका जीवन एक सतत वसंत था !!!!

ग्रीक कवि ओदिसियस एलितिस के शब्दों में -

लोगों के लिए जो, उत्थान बिंदु है,
वास्तव में वह , एक प्रस्थान बिंदु है।
भगवान तो तुम्हारा, आभार ही मानेंगे।

- प्रो.राजाराम की एक पारिवारिक ग्रीक मित्र, एथेंस, ग्रीस

पुण्य-संस्मरण

राजाराम की जय हो

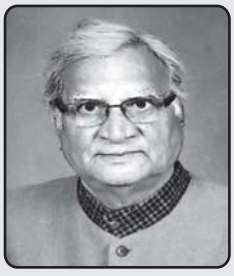

धनंजय वर्मा

संक्षिप्त संदेश सेवा से जब यह दुखद समाचार मिला कि 'राजाराम नहीं रहे?' तब मैं खुद को रोक नहीं पाया। बिटिया निवेदिता ने कहा जरूर– ''आप बिनय जी से बात कर लीजिए, उन्हें सान्त्वना मिलेगी।'' मैंने रूँधे कंठ से कहा– मैं जब खुद को ही नहीं सम्हाल पा रहा हूँ तो उन्हें क्या सान्त्वना दे सकूँगा। ऐसे मौकों पर मेरी वाणी को लकवा– सा मार जाता है। मैंने भी संक्षिप्त संदेश सेवा का सहारा लिया और एक शोक संवेदना .....

इस बीच कोरोना काल में जिन आत्मीय स्वजनों को खोया है, उनमें राजाराम की मेरे जीवन में एक अपनी अलग और खास अहमियत रही है। अपने छत्तीस बरस के प्राध्यापकीय जीवन में जिन सहकर्मियों के साथ काम किया, उनमें राजाराम मेरे लिए कई कारणों से अविस्मरणीय रहे हैं। हमीदिया कालेज की अपनी दूसरी पारी (1982–1995) में उनसे मुलाकात हुई थी। 'पहली नजर में प्यार' की तर्ज़ पर पहली मुलाकात में ही मैत्री हो गयी। मुझे लगभग हमेशा ही लगता रहा है कि जिस व्यक्ति की मुस्कान और हँसने के तौर तरीके आपको दिलकश लगे तो तय मानिए कि उससे नब्बे फीसदी आपकी दोस्ती पक्की हो जाती है। राजाराम के साथ भी यही हुआ। वैसे भी मैं बकौल एक शायर :

न चेहरा, न लिबास, न गुफ़्तार देखकर
करता हूँ मैं दोस्ती, किरदार देखकर ...

जब तक हमीदिया कॉलेज में रहा, ऐसा कोई दिन नहीं बीता जिसमें राजाराम से अंतरंग बातचीत और साथ–साथ चायनोशी न हुई हो। उसी दौरान एक दिन उन्होंने मुझे अपने आवास पर रात्रिभोज के लिए आमंत्रित कर लिया। उनका वह किराये का घर, सुरुचिपूर्ण ढंग से सजा, उनकी जीवन संगिनी कवयित्री और लेखिका बिनय जी से भेंट , उनका आत्मीय स्वागत सत्कार सब कुछ स्वप्न बिम्ब मालिका की मानिन्द आज भी याद है।

राजाराम चित्रकार ही नहीं, चित्रकला विशेषज्ञ और चित्रकला के प्रसिद्ध प्राध्यापक भी रहे हैं। साहित्य में शुद–बुद करने के साथ अन्य कलाओं में भी साथ होने की वजह से मैं भी एक जिज्ञासु विद्यार्थी की तरह उनसे चित्रकला के बारे में और विशेष रूप से उनके चित्रों के बारे में अक्सर उनसे कुछ–न–कुछ पूछा करता था। एक सुहृद सहचर की तरह चित्रकला की बारीकियों, रंगों–रेखाओं के अनुपात, विभिन्न माध्यमों में चित्रकला के रूपाकारों के बारे में बताते। उनसे मैंने बहुत कुछ जाना और सीखा।

मेरी बेटी के उज्जैन वाले विश्वविद्यालयीन आवास की बैठक में चित्रकार अक्षय आमेरिया की एक अमूर्त पेन्टिंग और तीन–चार रेखांकन सजे हैं। लोग अक्सर पूछते हैं 'यह क्या है ?' 'इसका क्या मतलब है?' इस प्रसंग में मुझे राजाराम की यह बात अक्सर याद आती है कि जिसे हम अमूर्त चित्र कहते हैं, उसे देखने के चूंकि हम आदी नहीं होते इसलिए हमारा दृष्टिकोण ज़्यादातर चौंकने अथवा किसी हद तक उपहास का होता है। आमतौर पर हम चित्रों के मतलब तलाशते हैं, या उसमें निहित किसी संदेश की अपेक्षा करते हैं या किसी कहानी या चरित्र की खोज करते है। इससे चित्र की अपनी वास्तविक सत्ता, उसकी रचनात्मक सार्थकता ही हमारे सामने उद्घाटित नहीं हो पाती। कदाचित इसीलिए एक–साथ इतने विविध कला माध्यमों में सृजनरत विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का विचार था कि चित्रों को 'समझने' की बजाय उन्हें 'महसूस' किया जाना चाहिए। वैसे भी किसी भी माध्यम की कोई भी कलाकृति मूलत: 'अभिव्यक्ति' होती है, 'व्याख्या' या ''विश्लेषण नहीं।

याद आता है– संगीत नाटक अकादेमी की मुख पत्रिका 'संगना' के एक अंक में मैंने उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ साहब का लम्बा साक्षात्कार पढ़ा था। साक्षात्कार लेने वाली महिला के एक सवाल के जवाब के खाँ साहब ने किसी शायर का एक शेर पढ़ा :

मोहब्बत है इक जो नाजुक सी हकीक़त
जिसे 'समझा' नहीं, 'महसूस' किया जाता है।

इस शेर में, गुस्ताख़ी मुआफ़, मैं एक लफ़्ज़ बदल कर कहना चाहता हूँ– कि शास्त्रीय संगीत में भी वाद्य संगीत का आशिक हूँ :

मौसिकी है इक वो नाजुक सी हकीक़त
जिसे 'समझा' नहीं, 'महसूस' किया जाता है।

मॉरिस ग्रॉसेर की एक प्रसिद्ध पुस्तक है- 'पेन्टर्स आइ' (मेन्टर बुक्स- 1956)। उसमे 'हाऊ टु लुक एट पेन्टिन्स का एक दिलचस्प जवाब है : ''द बेस्ट वे टु लुक एट पेन्टिन्स, इज-टु शट अप योर माउथ एण्ड ओपन और आईस' (अपना मुँह बन्द रखो और आँखे खोलो)... शास्त्रीय संगीत के प्रसंग में मैं इसी तर्ज़ पर कह सकता हूँ कि उसे सुनने का सबसे अच्छा तरीका है ''अपना मुँह और अपनी आँखें बन्द करो और दोनों कान खोल लो ।'' आखिर तानसेन को महसूस करने के लिए 'कानसेन' तो, कम-अज-कम, होना ही चाहिए।

हमीदिया कॉलेज की संगत के अलावा राजाराम के साथ मैंने संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन, में भी दो वर्ष बिताए हैं - दो वर्ष तक लगभग समानान्तर अनुभव साझा करते हुए और यक्साँ दर्द-ओ-कर्ब झेलते हुए! राजाराम ने भारत भवन में 'रूपंकर' के निदेशक की हैसियत से और मैंने ओ.एस.डी. (विशेष कर्तव्यस्थ अधिकारी) के साथ मध्यप्रदेश आदिवासी लोककला परिषद के पहले सचिव की हैसियत से। हम दोनों को मातहती करनी पड़ी, संस्कृति सचिव श्री अशोक वाजपेयी, आई. ए. एस. की। जो कवि-आलोचक (कम) अफ़सर (ज्यादा) थे। दरअसल शासन-प्रशासन में न कभी मेरी रुचि रही और न राजाराम की। मुझे तो अपनी पारिवारिक मजबूरी में वह चाकरी करती पड़ी पर पता नहीं, राजाराम की तो ऐसी कोई मजबूरी नहीं थी।

बहरहाल। जावेद अख़्तर का एक शेर याद आ रहा है;

गलत बातों को खामोशी से सुनना, हामी भर लेना,
बहुत हैं फायदें इसमें, मगर अच्छा नहीं लगता .....

अच्छा लगे या न लगे, नौकरी चाकरी करनी है, तो हामी चाहे न भरें, सुनना तो पड़ता ही है; इसलिए हम कभी सहज नहीं हो पाये उस दौरान। आखिर हमारे स्वभाव और प्रकृति को यह कभी गँवारा नहीं हुआ। बक़ौल गुलज़ार:

''मुख्तसर सा गुरुर भी जरूरी है जीने के लिए
ज्यादा झुक के मिलो तो दुनिया, पीठ को पायदान समझ लेती है।''

इसी मुख्तसर सी खुद्दारी के चलते जैसे ही मेरी प्रतिनियुक्ति की अवधि पूरी हुई, वैसे ही मैं तो 'पगहा तुड़ा कर भागे बछड़े' के मानिन्द अपनी 'सार' (शरण स्थली) मास्टरी में लौट आया। राजाराम ने देर-सबेरे वही किया।

शासकीय शासकीय सेनानिवृति से लगभग दो तीन महीनों पहले उच्चशिक्षा मंत्री श्री मुकेश नायक की पवित्र ज़िद और उनके अतिशय स्नेह-सम्मान के चलते मुझे अपने सागर विश्वविद्यालय (अब डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय) के कुलपति का पद स्वीकार करना पड़ा। वहाँ लगा कि 'यह दुनिया' अपनी नहीं है, सो वायदे के अनुसार छह महीनों बाद त्यागपत्र देकर वापस आ गया और अपने लिखने-पढ़ने में मशगूल हो गया। राजाराम भी अपने कैनवास, रंग, कूची और कला-समीक्षा लिखने में सरापा तल्लीन हो गए। दरअसल राजाराम उन कवि-कलाकारों की प्रजाति के हैं जो 'सृजन' के अलावा और साथ-साथ रचना के रहस्यों से भी वाकिफ़ ही नहीं उसके व्याकरण और शास्त्र में भी पारंगत होते हैं - जैसे निराला और प्रसाद या अज्ञेय और मुक्तिबोध। उनकी कला समीक्षा इसी की प्रमाण है। याद आता है राजाराम पर केन्द्रित एक आयोजन। उनका और बिनय जी का आग्रह था कि मैं उसमें उपस्थित ही न रहूँ बल्कि उसमें भागीदारी भी करूँ। मैं उनकी चित्रकला, उनकी पेन्टिंग्स पर कुछ कहने में तो असमर्थ हूँ लेकिन उनकी कला-समीक्षा जितनी मैंने पढ़ी है, उसके आधार पर मैं यह कहने की जुर्रत कर सकता हूँ कि वे केवल उत्प्रेरक बल्कि मार्मिक भी हैं। वे विदग्ध सौन्दर्य बोध के कला लेखक थे! उनका कला लेखन ज्ञान-समृद्ध है इसीलिए वह हमें कला प्रबुद्ध करता है। उसे पढ़ना भी प्रीतिकार और आनन्द दायी है। उनका कला लेखन उनके चित्रों की ही तरह जितना निजी और वैयक्तिक है, उतना ही वह संघनित और सुचारू रूप से एकीकृत भी है। वे न केवल कला के तात्त्विक सिद्धान्तों पर विचार-विमर्श करते हैं वरन् सामान्य विचारवान पाठकों के लिए कला के रहस्यलोक के द्वार भी खोलते हैं। उनमें गम्भीर चिन्तन-मनन के साथ ही सामान्य मनुष्य की कला रुचि को परिष्कृत करने की सामर्थ्य भी है। अपने समकालीन और आधुनिक चित्रकारों और चित्रकला की अद्यतन प्रवृत्तियों और ऐतिहासिक उपलब्धियों का असाधारण रूप से रोचक इतिवृत्त पेश करते हैं और साथ ही उनका मूल्यांकन करते चलते हैं।

राजाराम सचमुच आधे-अधूरे होते यदि उनकी अर्द्धांगिनी श्रीमती विजय षडंगी न होती। बिनय जी ने राजाराम के साथ स्वयं को इतना एकाकार और एकात्म कर लिया कि राजाराम के बिना उनका नाम भी पूरा नहीं होता। वे दोनों ऐसे दुर्लभ कलाकार दम्पति के रूप में अविस्मरणीय रहेंगे जिन्होंने लगता है, एक दूसरे की सत्ता और सार्थकता के लिए ही मानों अस्तित्व धारण किया हो। जाहिर है उनका प्रेम विवाह हुआ लेकिन प्रेमविवाह तो अन्य अनेक रचनाकारों कलाकारों ने भी किया है लेकिन रचनात्मकता के क्षेत्र में स्पर्द्धा या प्रतिस्पर्द्धा के चलते उनमें से कई जोड़ों के रिश्तों में न केवल ददार आई वरन् उनका अलगाव भी हो गया। मसलन मन्नू भण्डारी और राजेन्द्र यादव। इसकी एक वजह शायद यह रही हो कि दोनों एक ही माध्यम-साहित्य और उसमें भी कथा - उपन्यास और

कहानी में सक्रिय रहे हैं।

राजाराम और बिनय जी के प्रसंग में इस तरह की स्पर्द्धा प्रतिस्पर्द्धा या प्रतिद्वन्द्व की स्थिति कभी नहीं रही। राजाराम अपनी चित्रकला और कलालेखन में सक्रिय रहे और बिनयजी साहित्य को समर्पित हैं। दोनों ने एक दूसरे के रचनाकर्म का इतना आदर-सम्मान किया है कि एक दूसरे के प्रति समर्पण की नायाब मिसाल बन गए।

बिनय जी स्वयंसिद्ध कवयित्री और लेखिका तो हैं ही, वे सत्यसाईं महिला महाविद्यालय, भोपाल में हिन्दी विभाग की अध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त हुई हैं। राजाराम से मैत्री की वजह से भी मुझे सदैव उनकी सदाशयता और सद्भावना मिली है। अनेक अवसरों पर उन्होंने अपने विभाग और महाविद्यालय के कार्यक्रमों-आयोजनों में मुझे वक्ता, अध्यक्ष या मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया और मेरा सत्कार किया। एक महाविद्यालयीन वार्षिक उत्सव में उच्च शिक्षा मंत्री के साथ मुझे केन्द्रीय व्याख्यान के लिए आमंत्रित किया और मंत्री जी द्वारा मुझे सम्मानित करवाया। उनके निर्देशन में 'समकालीन हिन्दी आलोचना में डॉ. धनंजय वर्मा का योगदान' विषय पर श्रीमती नीता व्यास को वर्ष 2007- 2008 में बरकतुल्लाह विश्वविद्यालय भोपाल के कला संकाय के अन्तर्गत हिन्दी में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त हुई। आकाशवाणी की आर्काइवल रिकार्डिंग के अन्तर्गत आकाशवाणी, भोपाल में उनके साथ लगभग तीन घंटे का मेरा साक्षात्कार रिकार्ड हुआ। मेरे साक्षात्कारों की दूसरी पुस्तक : 'आलोचक के बयान' 2020 में उनके साथ मेरा सबसे लम्बा साक्षात्कार (पृष्ठ 199 से लेकर पृष्ठ 253 तक) प्रकाशित हुआ है।

2012 में राजाराम और बिनयजी ने सम्मिलित रूप से 'सप्तवर्णी कला-साहित्य सृजन शोध पीठ' की स्थापना की। यह संस्था साहित्य एवं रूपांकन कलाओं के बहुआयामी शोध-सृजन के संग्रहण एवं प्रकाशन के लिए समर्पित है। बिनय जी इसकी संस्थापक निदेशक हैं और राजाराम प्रतिष्ठापक। इसी संस्था के तत्वाधान में श्री उमावल्लभ षड़ंगी (विनय जी के पिताश्री) भाषा-साहित्य संस्कृति साहित्यालोचना सम्मान 2019 से मुझे, हिन्दी ओडिया-भाषा संस्कृति केन्द्रित अन्तर प्रादेशिक सौहार्द्र- सेतु के लिए दिनांक 18 मई 2019 को सम्मान-पत्र, शाल-श्रीफल, स्मृति चिह्न (राजाराम के ग्रीस की राजधानी एथेन्स स्थित भारतीय राजदूतावास में प्रदर्शित 24"×30" के तैल चित्र 'महात्मा गांधी' की प्रतिकृति) एवं पचास हजार रुपयों की सम्मान निधि से सम्मानित किया गया। मैंने कृतज्ञता से अभिभूत होकर इसे स्वीकार किया। हिन्दी ओडिया भाषा-संस्कृति केन्द्रित सौहार्द्र सेतु के रूप में मेरा योगदान महज इतना है कि वर्ष 1997-80 के दौरान, सागर में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की टीचर फेलोशिप (जिसे मैं बफैलोशिप कहता हूँ) की अवधि में समाज विज्ञान के शोधार्थी श्री जयराम पंडा और उनकी पत्नी श्रीमती शारदा के सम्मिलित सहयोग से मैंने प्रख्यात ओडिया नाटककार प्रोफेसर रत्नाकर चयनी के ओडिया नाटक-पुनश्च पृथ्वी - का हिन्दी अनुवाद किया था और उसे मेरे प्रकाशक श्री अमरनाथ शुक्ला ने अपने प्रकाशन विद्या प्रकाशन मंदिर, दरियागंज, दिल्ली से प्रकाशित किया था। इसके अलावा मेरी बड़ी बेटी मनीषा का विवाह ओडिया भाषा-भाषी श्री खिरोद मानसिंह महापात्र से हुआ है जो (श्री प्रमोद वर्मा की पत्नी) मेरी आदरणीय भाभी श्रीमती कल्याणी महापात्र वर्मा के ममेरे भाई हैं। मैं आश्वस्त हूँ कि इतने नगण्य लगभग नाचीज़ से सन्दर्भ से अधिक यह सम्मान बिनय जी और बंधुवर राजाराम की मेरे प्रति स्नेह सम्मान, सद्भावना और सदाशयता का परिणाम है। यह मेरे जीवन का सबसे बड़ा सम्मान है। इसके लिए मैं अपने शेष जीवन की अंतिम साँस तक बिनय जी और राजाराम दोनों का, कृतज्ञ रहूँगा।

प्रसंगवश में यहाँ अपनी एक पशेमानी का भी जिक्र करना चाहता हूँ। बिनय जी ने समय-समय पर अपनी कविता और लेखन के संग्रह भी स्नेह पूर्वक भेंट किए हैं। मैंने उन्हें पूरे मनोयोग से पढ़ा भी है और मेरी दिली-ख़्वाहिश भी रही है कि मैं उन पर कुछ लिखूँ लेकिन एक नैतिक संकोच लगभग हर बार मेरी इच्छा पर भारी पड़ता रहा है। इस नैतिक संकोच की पृष्ठभूमि का भी जिक्र कर दूँ तो कदाचित अप्रासंगिक न होगा।

मैंने अपनी एक पुस्तक 'हस्तक्षेप' (1975) मुझसे बड़े भाई की तरह स्नेह करने वाले प्रोफेसर प्रमोद वर्मा को भेंट की और आग्रह किया कि संभव हो तो कहीं इसकी समीक्षा लिख दें। प्रमोद जी ने लिखा : ''आत्मीयता पूर्ण सम्बन्ध हों तो क्या 'ऑब्जेक्टिवली' लिखा जा सकता है? और अगर ऐसी कोशिश, ईमानदार कोशिश की जाये तो क्या दूसरे ऐसा मानेंगे? मैं जानता हूँ- हिन्दी में सभी दूर 'अहो रूपं, अहो ध्वनि' का मंत्रोच्चार चल रहा है, लेकिन -

हम आह भी करते हैं तो हो जाते हैं बदनाम
वो क़त्ल भी करते हैं, तो चर्चा नहीं होता ...

''उत्तर प्रदेश, बिहार और दिल्ली के लोग एक दूसरे को उछालें तो जायज़, लेकिन हमारी जबान पर अपने लोगों का नाम भी आ जाने तो प्रादेशिकता का इल्ज़ाम लग जाता है।''

फिर कुछ दिनों बाद, प्रमोद जी ने अपनी एक नई पुस्तक मुझे भेजी और लिखा:- मैंने तुम्हारी पुस्तक बड़े मनोयोग से पढ़ी। मैं

यह उम्मीद करता हूँ कि तुम भी मेरी पुस्तक उसी मनोयोग से पढ़ोगे, लेकिन एक बात अपने बीच अभी तय हो जाए कि न मैं तुम पर लिखूँगा और न तुम मुझ पर लिखोगे। कम से कम हम लोग तो 'परस्पर प्रशंसा परिषद के पार्षद न बनें।'

यही वजह थी कि अब अशोक वाजपेयी ने अपने 'पूर्वग्रह' में प्रमोद वर्मा की पुस्तक पर लिखने का मुझसे आग्रह किया तो मैंने उनसे यह करते हुए क्षमा मांग ली कि यदि मैं प्रमोद वर्मा की पुस्तक पर लिखूंगा तो वह 'एप्रीशिएटिव' होगा, लेकिन लोग यह तोहमत तराशेंगे कि धनंजय वर्मा ने प्रमोद वर्मा पर प्रशंसात्मक लिख दिया।

यही नैतिक संकोच लगातार मेरा पीछा करता रहा। मुझे लगा कि कहीं लोग मुझ पर यह आरोप न लगा दें कि बिनय जी ने धनंजय वर्मा को अपने महाविद्यालय में सम्मानित किया, आकाशवाणी पर तीन घंटे लम्बा साक्षात्कार लिया, उन पर पहली पीएच.डी. करवाई और पचास हजार की निधि से सम्मानित किया तो धनंजय वर्मा ने बिनय जी के कसीदे लिख दिए। बहरहाल,

राजाराम से बिनयजी के तादात्म्य का ही नतीजा है कि वे अपने आवास 'सप्तवर्णी' में राजाराम कला दीर्घा की स्थापना कर रही हैं ताकि न केवल उनके चित्रों और लेखन का संग्रहण संरक्षण और प्रदर्शन हो सके बल्कि उनके छात्र-छात्राओं की रचनाएँ भी उसमें प्रदर्शित की जा सकें।

आज राजाराम हमारे बीच नहीं है लेकिन उनकी कृतियाँ हमारे बीच उनकी रचनात्मक उपस्थिति की निरन्तरता कायम रखेंगी। बहादुर शाह ज़फ़र ने क्या खूब कहा है :

मुझको दुनिया से ज़फ़र कौन मिटा सकता है
मैं तो शायर हूँ, किताबों में बिखर जाऊँगा ....

इसी तर्ज पर मैं कह सकता हूँ कि राजाराम को कौन भुला सकता है वो तो अपनी कृतियों और लेखन में हमेशा हमारे साथ मौजूद रहेंगे।

और जब तक मैं हूँ उनकी याद हमेशा मेरे साथ रहेगी। बकौल गुलज़ार ...

तू कितनी भी खूबसूरत क्यों न हो ए जिन्दगी
खुशमिजाज़ दोस्तों के बगैर अच्छी नहीं लगती

और अन्त में

फिर बकौल गुलज़ार .....
थम के रह जाती है जिन्दगी
जम के बरसती है जब पुरानी यादें...

अपनी और पत्नी की बढ़ती हुई उम्र और हमारी अनेक बीमारियों की वजह से मेरी छोटी बेटी निवेदिता हमें भोपाल में अकेले नहीं रहने देना चाहती। चुँनाचे हम लोग अक्सर ही अब बेटी के घर उज्जैन में ही रहते हैं। लगभग हर साल मार्च या मई और दीपावली पर ही भोपाल आना होता है, सो जब भी जब भी राजाराम से मोबाइल पर बात होती, मेरा पहला अभिवादन होता – 'राजाराम की जय हो।' राजाराम ने एक बार पूछा – 'आप हमेशा ऐसी जय क्यों बोलते हैं।' मेरा जवाब था कि हम लोग 'एक पंथ दो काज' में भरोसा करते हैं। सो इस बहाने 'उस राम' को भी याद कर लेते हैं। यह सोचकर कि मुमकिन है इस नामोच्चार से ही मुझे भी मुक्ति मिल जाय! राजाराम न केवल मुक्त भाव से हँसे बल्कि कहने लगे तो फिर मुझे भी जवाब में 'धनंजय की जय' कहना चाहिए! मैंने कहा – ''उसकी जरूरत इसलिए भी नहीं है कि मेरे नाना ने मेरा नाम ही ऐसा रखा है कि उसमें जय अन्तर्निहित है। आप क्यों पुनरुक्ति दोष के भागी बनते हैं।''

अफसोस, सद् अफसोस अब कभी न उनकी आवाज सुन पाऊँगा और न 'राजाराम की जय' कहने का मौका ही आ पाएगा। चुनांचे हार्दिक श्रद्धांजली-स्वरूप फिर एक बार – 'राजा राम की जय हो।'

– लेखक प्रख्यात आलोचक एवं लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार हैं।
डॉ. निवेदिता वर्मा, एफ 2/31, आवासीय परिसर विक्रम विश्वविद्यालय,
उज्जैन (म.प्र.) 456 010
मोबाइल 9425019863, 8234003886

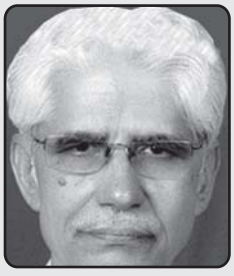

प्रभुदयाल मिश्र

कला, संस्कृति और राष्ट्रीयता के अप्रतिम प्रेक्षा-प्रहरी

श्रद्धेय राजाराम जी का हमारे संस्थानम् के लिये मिला यह अभिदाय अपने आप में चिरस्मरणीय है । मेरे और खंडेलवाल जी के अनुरोध करने पर उन्होंने पलक झपकते ही इसे तैयार कर दे दिया । आज हम तथाकथित जीवित जन जब महा मोह निशा की गहन निद्रा में निष्प्राण और बेसुध ही हैं तब राजाराम जी की परिव्याप्त दिव्य चेतना का प्रकाश हमारा मार्गदर्शन करे, भगवान से यही प्रार्थना है ।

– संपादकः तुलसी मानस भारती, मानस भवन, भोपाल
महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम् के संस्थापक, निदेशक

हमारे पिता ...

डॉ. कौस्तुभ शर्मा

सौमित्र शर्मा

अलग-अलग धार्मिक मान्यताएं जन्म जीवन और मृत्यु को अलग तरह से पेश करती हैं। कुछ लोग दूसरी दुनिया में जाने की बात करते हैं जबकि अन्य पुनर्जन्म का दावा करते हैं। अपनी भिन्नताओं के बाद भी सभी में एक समानता है, अंत:करण की निरंतरता की। विज्ञान में कहा जाता है की जीवित प्राणी अनंत काल तक अपने जीन्स के माध्यम से जीवित रहते हैं जो उन्होंने अगली पीढ़ी को दिए हैं। शिक्षक, इस मामले में दूसरों से कहीं अधिक अग्रणी होते हैं। वे न केवल अपने जीन के माध्यम से अनंत काल तक जीवित रहते हैं, परंतु अपने विद्यार्थियों के माध्यम से सालों साल जीवित रहते हैं। किसी शिक्षक के लिए शायद सबसे बड़ा सम्मान यही होगा की उनको उनके छात्र-छात्राओं द्वारा प्यार से वर्षों उपरांत याद किया जाता रहे। हमारे पिता ऐसे ही व्यक्ति थे जो हमसे अधिक अपने विद्यार्थियों के दिलों में, उनके काम में परिव्याप्त हैं।

प्रोफेसर राजाराम के बारे में कुछ ही लोग जानते होंगे कि उन्होंने अपने शिक्षण की शुरुआत में काफी आर्थिक और सामाजिक दिक्कतों का सामना किया। उन्होंने जीव विज्ञान परीक्षा में नकल करके डॉक्टर बनने की जगह असफल होना चुना। एयरफोर्स के इंटरव्यू में उन्होंने पायलट बनने की जगह आकाश के चित्र बनाना पसंद किया। 11 वर्ष की उम्र में उन्होंने तत्कालीन राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन को उनका चारकोल से बना स्केच उपहार में दिया और अपने गाल पर थपथपी पाई। मुंबई के जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स में प्रवेश के बाद, वह अपनी कक्षा में सबसे छोटे हो कर अपनी उम्र से लगभग दोगुनी उम्र के छात्रों के साथ में रहे। उन्होंने भारत के तत्कालीन सर्वोत्तम कला शिक्षकों के संरक्षण में वड़ोदरा में अपनी उच्च शिक्षा प्राप्त की। घर पर कारणवश आर्थिक दिक्कतों के चलते उन्होंने कपड़ों से लेकर अन्य तमाम चीजों में अपनी आवश्यकताओं को सीमित कर लिया था। अपने जीवन भर वे अपने भाई रमेश चंद्र शर्मा के ऋणी रहे, जिन्होंने अपने छोटे भाई की पढ़ाई के लिए अपनी महत्वाकांक्षाओं को त्याग दिया। उनका अपने बड़े भाई के साथ ऐसा रिश्ता था कि उनके खुद के दोनों पुत्रों ने हमेशा अपने आपको दो-दो माता पिता के साथ बड़ा होता हुआ पाया।

अपनी पढ़ाई पूरी होने के बाद प्रोफेसर राजाराम वनस्थली विद्यापीठ से कला अध्यापक के रूप में जुड़ गए। यहीं पर उनकी मुलाकात अपने जीवन साथी डॉ. बिनय राजाराम से हुई। 1978 में उन्होंने Orthodocs & Christianity और बौद्ध धर्म के बीच कला रूपों की तुलना करने के लिए ग्रीस में 4 साल की लंबी शोध परियोजना शुरू की। वे भोपाल के महारानी लक्ष्मीबाई कॉलेज में ललित कला विभाग के प्रमुख के पद से सेवानिवृत हुए, लेकिन अपने प्रिय छात्रों के साथ उनका जुड़ाव उनके आखिरी दिन तक समाप्त नहीं हुआ। उनके वे छात्र और छात्राएँ जिनको उन्होंने आज से 45 वर्ष पहले पढ़ाया था, और वे जिनको उन्होंने 4-5 महीने पहले कुछ सिखाया था, सभी उनको उतने ही लाड़ से मिलते थे जितना की शायद उनके खुद के परिवार के लोग। ऐसे समय में जब उनके आस पास के सभी लोग अपने बच्चों को इंजीनियर और डॉक्टर बनाने के लिए जोर दे रहे थे, उन्होंने भरोसा किया कि उनके खुद के पुत्र अपनी पसंद के व्यवसायों को चुन पाएंगे, चाहे वो कितने भी लीक से हट कर हों।

हर साल अपने जन्मदिन पर वे जन्मदिन की शुभकामनाओं का जवाब देते थे और पुष्टि करते थे कि उन्हें कम से कम 90 वर्षों तक रहना है, काम करना है, क्योंकि उनके अनेकों अनेक कार्य अभी अधूरे थे और उन्हें पूरा करने में अभी वर्षों का समय लगना लाजमी था। न सिर्फ कला क्षेत्र में, परंतु अपने घर के निर्माण, पर्यावरण सुरक्षा और जीव-जंतुओं और सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित लोगों के दुख दर्द जैसे विषयों से वे सर्वथा विचलित होते और कुछ करने की कोशिश करते रहते थे। आर्थोराइटिस और अन्य

शारीरिक व्यथाओं के बावजूद उन्होंने अपना काम करते रहने में कोई कोताही नहीं बरती। पिछले कुछ सालों में, धीरे-धीरे सोशल मीडिया और इंटरनेट पर सर्च इंजन search engines की मदद से उन्होंने जानकारी इकट्ठा करना सीखी और अपने विचार व्यक्त करने के अतिरिक्त माध्यम पाए।

कोविड-19 ने मानवता के लालच और स्वार्थ, अक्षमताओं, और आमजनों की लापरवाही के कारण आज विश्व भर में 40 लाख से भी अधिक लोगों की जान ले ली है। प्रोफेसर राजाराम जैसे लोग जो पिछले एक साल से पूरे समय घर पर थे, किसी के आने पर हमेशा मास्क लगाते थे, और पहले अवसर पर वैक्सीन लगाने को तैयार थे, इस भयंकर वायरस की चपेट में आए और जीत नहीं पाए। 29 अप्रेल 2021 को कोविड-19 से जुड़ी जटिलताओं के कारण प्रोफेसर राजाराम अपने लिखित कार्यों के ढेर, अनगिनत रेखाचित्र और पेंटिंग, और कला, गांधीवाद और प्रकृति के साथ के प्रयोगों को छोड़ गए। घंटों घंटों video call पर उनसे बात करने वाली, अपने दोस्तों को उसके दादू के 'आर्टिस्ट' होने की डींग हाँकने वाली उनकी 6 साल की पोती यह सोच कर खुद को खुश रखती है की उसके दादू को अब और कोई तकलीफ नहीं हो सकती है।

उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन के बाद से वह अपने बनाए चित्र और कहानियों को खिड़की पर खड़े हो कर अपने दादू को दिखाती है। परंतु उसे एक मलाल रह गया है जिसका कोई तोड़ नहीं है, कि विलक्षण प्रतिभाशाली कलाकार और शिक्षक प्रोफेसर राजाराम अब उसका चित्र नहीं बना पाएंगे!

प्रोफेसर राजाराम जैसे कलाकार और शिक्षक न सिर्फ अपने आनुवंशिक संततियों में जीवित रहेंगे, पर अपने उन अनगिनत छात्र छात्राओं के हृदयों में सालों साल जीवित रहेंगे जिनके जीवन और कार्यक्षेत्र को उन्होंने अपने 78 वर्षों के जीवन में प्रभावित किया।

– लेखक द्वय प्रो. राजाराम के पुत्र हैं।

एक वरिष्ठ चित्रकार प्रो. राजाराम

शोभा घारे

श्रद्धा सुमन अर्पित हैं प्रो. राजाराम जी को। हमारे प्रदेश के एक बहुत ही संवेदनशील चित्रकार और कलागुरु प्रो.राजराम जी अपने विद्यार्थियों में कला की वो समझ पैदा करने की कोशिश करते थे कि चित्र की रचनात्मकता आपके भीतर से कागज़ या कैनवास पर आती कैसे है? चित्र के चित्रित होने के लिये क्या क्या करना है। रंगों के विषय, संयोजन, आकार आदि के चयन, और उसके अनुरूप उससे जूझना। आदि आदि।

मै भी अपने काम उन्हें दिखाना पसंद करती थी क्योंकि वे बिना लागलपेट के अपने विचार व्यक्त थे। उन्हें कुछ नया दिखाई देता तो उसके बारे मे पूरी जानकारी लेते, आश्वस्त होते, प्रशंसा भी करते। वे बडी ही सूक्ष्मता से चित्र देखते थे, आत्मसात करते फिर टिप्पणी करते। चित्र को टालते नहीं थे। देखने का पूरा आनंद उठाते थे।

उनका हंसमुख चेहरा चित्रकार को प्रोत्साहित करता। उन्हें किसी तरह का शोर्टकट कभी पसंद नही था। जहाँ तक मैने उन्हें जाना वे अति संवेदनशील, प्रकृति प्रेमी, पेड़-पौधे, पशु पक्षियों सभी को देखकर अति प्रसन्न होते, उन्हें इनसब में कुछ अद्भुत दिखाई देता जिसे देख वे अति उत्साहित होते, प्रसन्न होते। उनकी इतिहास मे बहुत रुचि थी पढ़ना लिखना, चर्चाओं मे शामिल होना, अपनी बात औरों तक पहुंचाना उन्हें पसंद था।

प्रो. राजाराम जी को उनकी हजारों अच्छाइयों के साथ सादर नमन। सभी कलाकारों के बच्चों से बहुत ही आत्मीयता से मिलना उन्हें आनंद देता था। उनकी संगिनी श्रीमती बिनय जी भी उनके साथ पूरा सहयोग कर हम सबके साथ बहुत ही आत्मियता का परिचय देकर आपनापन जताती। बिनयजी का जुझारूपन भी अति आनंदित करता है। उनके जज़्बे को प्रणाम। ईश्वर हम सब को भी उनकी तरह मार्ग दिखाए। सादर नमस्कार। कलाकारों के रिश्तों की अहमियत बहुत ऊंची होती है। बिनयजी के साथ भी हम यही अपेक्षा रखेंगे। हम हमेशा उनके साथ हैं।

– लेखिका वरिष्ठ चित्रकार हैं।

पुण्य-संस्मरण

'कूची' और 'कलम' के जादूगर

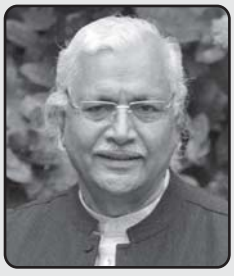

राजेन्द्र शर्मा

कला-गुरु प्रो. राजाराम हमारे प्रदेश में जन्में चित्रकला, चित्रकला-शिक्षा और सभी प्रकार की रूपंकर कलाओं के लिये समर्पित एक अद्वितीय एवं पावन व्यक्तित्व थे, कोरोना की महाव्याधि ने विगत काल में हमसे अनेक विभूतियों की छीना है, उनमें प्रो. राजाराम जी एक ऐसा नाम है, जो अपने पीछे ऐसी रिक्तता छोड़ गये हैं, जिसकी पूर्ति दीर्घकाल तक संभव नहीं होगी और हमें ऐसी विरासत सौंप गये हैं, जिसे पाकर सदैव धन्यता का अनुभव किया जा सकेगा।

प्रो. राजाराम अपने विविध गुणों एवं विशेष योग्यताओं के कारण, एक व्यक्ति के रूप में समाज के गौरव तो थे ही, उनकी कलाधर्मिता भी बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न रही है। उन्होंने अपनी तूलिका के माध्यम से केनवास पर इन्द्रधनुषी रंगों के द्वारा साक्षात् प्रकृति की रचना की है, जिसमें अपनी रंग वर्षा से वे प्रकृति से ही प्रतियोगिता करते प्रतीत होते हैं। उनका चित्रांकन रेखाचित्रों द्वारा किया गया हो या अमूर्त स्वरूप में, उनमें गूंथी गई अभिव्यक्ति में एक ऐसी लय के दर्शन होते हैं, जो सीधे हृदय में उतरती है।

प्रो. राजाराम की एक और विशेषता थी, उनकी कला में रचनात्मकता और विचार-तत्व दोनों पूरी समग्रता से सांगोपांग संपोषित होते हैं। कला-आलोचना की विधा को उन्होंने नया सौष्ठव और अभूतपूर्व ऊंचाई प्रदान कर, उसे पाला और पोसा था। जिसने उन्हें आधुनिक कला-आलोचना का मौलिक विचारक और उसका सर्जक आचार्य बना दिया था। उनकी कला-आलोचना चलताऊ या उथली टीका टिप्पणी या बिना कुछ समझे केवल शब्दाडंबर नहीं होती थी, अपितु उनकी लेखनी और विचारों की परिपक्वता, उनके लेखन को विश्व स्तरीय ऊँचाई प्रदान करती हैं। परन्तु अपने कलात्मक उच्चस्तर के बावजूद, वे पूरी तरह, अपने धरातल से जुडक़र रहे, अपनी माटी की सौंधी सुगंध को उनकी रचनाओं से अनवरत निस्रत होते देखा जा सकता है। इस दृष्टि से वे अपनी धीर-गंभीर लेखन शैली में एक ओर जहां अपनी वरिष्ठता के अनुरूप, एक सुलझे हुए प्राध्यापक प्रमाणित होते हैं, वहीं दूसरी ओर चिन्तन की नूतनता, उन्हें सदैव तरुण बनाये रखती है।

साहित्यिक आलोचना और कला-आलोचना में मूल अंतर यही है कि पहली विधा, जो लिखा है, उस पर विचार करती है, किन्तु कला-आलोचना में लिखा हुआ पढऩे के साथ ही जो लिखा या रेखांकित नहीं है, उसे भी देखना और ढूंढऩा होता है। यह अंर्तदृष्टि ही इस विधा का प्राणतत्व है। इसमें केवल 'निदंक नियरे राखिये' वाली शैली में या बखिया उधेड़ देने वाली-सीधी सपाट ढंग से आलोचना नहीं होती है, अपितु कला-आलोचना में रचना के अंतरतम को उद्घाटित करना होता है, जैसे उगते सूरज की किरणों की ऊष्मा और ताजगी कमल की हर पंखुड़ी को सहलाती हुई, उसके सौंदर्य, स्वरुप और गंध को खिलखिला और महका देती है। कला आलोचक की विवेचना में चीर हरण जैसी कठोरता नहीं, अपितु किसी सुमुखी के घूंघट को उठाते हुये प्रेमी की प्रेम पगी शालीनता और कोमलता का ऐसा आलिंगन होता है, जो उसके मुख की लालिमा में और अभिवृद्धि करता है। यही हमारी सांस्कृतिक, राष्ट्रीय या देशज कलादृष्टि है, जिसमें केवल सृजन ही सृजन अवतरित होता है। प्रो. राजाराम ने कला- आलोचना की उसी सृष्टि की रचना की है। इसके लिये उन्होंने अपनी भाषा स्वयं गढ़ी, उन्होंने केवल किताबी था निष्प्राण अंग्रेजी शब्दों का आलंबन कर, अपनी कला आलोचना की बोझिल या प्राणहीन नहीं होने दिया, अपितु पारिभाषिक अंग्रेजी शब्दों के सार्थक एवं वैकल्पिक हिन्दी शब्दों का संसार गढ़ा। जो संस्कृत मूलक शब्द सृष्टि है। यह कला-आलोचना को उनका बहुत बड़ा अवदान है, जिसके लिये वे सदैव स्मरण किये जायेंगे।

अपनी अकादमिक योग्यता, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय शोधग्रंथों में नियमित लेखन और प्रकाशन, भारत भवन के रंगमंडल में प्रशासनिक और कलात्मक योगदान, राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर चित्रकला और रुपंकर कला प्रदर्शनियों के आयोजनों में, उनकी पूरे जीवन की तपस्या के दर्शन होते हैं। अपनी वैशिष्ट्यपूर्ण चित्रकला के माध्यम से अपनी 'कूची' का कमाल तो वे दिखाते ही हैं, वहीं कला-आलोचना और शोध प्रबंधों में उनकी 'कलम' भी उत्कृष्ट भाषा-कौशल और वैचारिक-वैभव का मन-मोहक नर्तन करती है। इस मायने में वे कलम और कूची दोनों के जादूगर कहे जा सकते हैं। मालव माटी के इस बिरले सरस्वती-पुत्र को हार्दिक नमन एवं विनम्र श्रद्धांजलि।

- लेखक अध्यक्ष एवं प्रधान संपादक, स्वदेश-भोपाल पत्र समूह हैं।

स्मरण

आत्मविलोपी व्यक्तित्व : प्रो. राजाराम

श्रीधर पराडकर

नमस्कार। प्रो. राजाराम जी के देहावसान का समाचार मिला है तब से उनकी शान्त मूर्ति, सौम्य चेहरा, प्रसन्नचित्त मुखमुद्रा, विद्धत्तापूर्ण वार्तालाप, सहज आत्मीय व्यवहार निरन्तर स्मृति में उभर-उभर कर आ रहा है। विद्वान, योग्य तथा यशस्वी व्यक्तित्व में अहंमन्यता अपने आप आ जाती है, जिसके कारण वह अपने को समाज से श्रेष्ठ मानने लगता है। परिणाम स्वरूप समाज ही परिवार तक से अलग-सा हो जाता है। लोग भी उससे एक दूरी बना लेते हैं। परन्तु प्रो. राजाराम ने आत्मविलोपी होकर उस अहंमन्यता को अपने पास फटकने नहीं दिया था।

जब कभी आपसे बात करने के लिये दूरभाष करता था, तब अधिकतर वे ही दूरभाष उठाते थे। सामान्य पूछताछ होने के बाद हँसते हुए कहते अभी आपके कार्यकर्ता को बुलाता हूँ। उसी प्रकार जब-जब आपके घर आना हुआ उन्होंने प्रसन्न मुख से स्वागत किया। मुझे एक भी ऐसा अवसर स्मरण नहीं है जब वे असहज हों। कुछ आयु का परिणाम था और कुछ शरीर धर्म के कारण अस्वस्थता उन्हें लगातार परेशान कर रही थी, फिर भी कभी उस बारे में बात नहीं करते थे। सदा देश व सामाजिक विषय चर्चा के लिये उनके पास रहते थे। दिल से समस्याओं के प्रति चिन्तित रहते थे। समाधान न होने के कारण उद्देलित भी रहते, रोष भी प्रकट करते थे। पर हताशा कभी उन पर हावी नहीं हुई । जब अपन लोग परिषद् ? की बात शुरू करते वे बिना कहे अपनेआप अपने कक्ष में चले जाते। चाय-पान अथवा भोजन के समय उन्हें स्मरण किया जाता तब ही आते थे। उनका उद्देश्य रहता था कि उनकी उपस्थिति के कारण अपनी बातचीत में व्यवधान न हो या अपन लोग असहजता अनुभव न करें। ऐसा और इतना आत्मविलोपी व्यक्तित्व था उनका।

वे समाज के प्रति सोचते ही नहीं थे, उसके प्रति पूरी तरह समर्पित भी थे और उसके लिये कुछ भी करने के लिये सदा तत्पर रहते थे। समाज कार्य के बीच उन्हों ने पारिवारिक व्यवहार को भी नहीं आने दिया। मुझे स्मरण है कि दिल्ली में परिषद् ? की कार्यकारिणी की बैठक थी और उसमें आप अपेक्षित थी। दुर्भाग्य से उसी समय प्रो. साहब की माताजी का देहावसान हो गया था। अभी और्ध्वदैहिक क्रियायें पूर्ण भी नहीं हुई थीं, फिर भी आप बैठक में सहभागी होने के लिये दिल्ली आयी थीं। माँ की मृत्यु हो जाने और तेरहवीं क्रिया होने के पहले आपको शहर के बाहर बैठक में जाने की अनुमति देना कम साहस का काम नहीं था। ऐसे अवसर पर एक बार पुरुष घर के बाहर जाने का साहस कर लेता है पर महिला के लिये यह बहुत ही कठिन होता है। कई परिजन आये होते हैं, उनके रहते हुए समाज कार्य के लिये निकलने की वह सोच भी नहीं सकती, पर आप व प्रो. साहब दोनों ही धन्य हैं जो ऐसा अघटित कार्य कर सके।

दूसरी घटना भोपाल की है। परिषद् ? की टीम बैठक भोपाल में होनी थी। प्रो. साहब की शल्यक्रिया हुई थी और वे उस दिन भी चिकित्सालय में ही थे। फिर भी आप बैठक में सम्मिलित हुईं थीं। अस्वस्थता में बिना तीमारदार के रहना बहुत कठिन होता है। इसमें आपका पराक्रम तो था ही, पर अध्यावस्था में भी दिनभर के लिये पत्नी को चिकित्सालय से अनुपस्थित रहने की अनुमति देना वह भी समाज कार्य के लिये, किसी महामानव के लिये ही संभव है।

कार्यक्रम सांस्कृतिक हो अथवा साहित्यिक आपके साथ उनकी उपस्थिति अमूमन रहती ही थी। आपके साथ रह कर सबसे मिलते हुए भी एक प्रकार से वे अलग ही रहते थे। अपनी उपस्थिति को आपके अस्तित्व पर थोपते नहीं थे। ऐसे दुर्लभ दाम्पत्य के बारे में पुरानी पुस्तकों में पढ़ा भर था, पर आपके और प्रो. साहब के रूप में मूतिमंत रूप में साकार देख सका यह मेरा सौभाग्य ही रहा है।

संभवत: इन बातों के बारे में आपसे कभी प्रत्यक्ष चर्चा नहीं हुई, मेरे स्वभाव के कारण आवश्यकता भी अनुभव नहीं की थी, क्योंकि वह मेरी निजी अनुभूति का विषय था। पर उनकी तरफ देखने की मेरी दृष्टि व उनके प्रति श्रद्धा को आज प्रकट कर रहा हूँ। हमारे न चाहने पर भी हमारा अपना एक दिन छोड़ कर जाता ही है। यह जानते हुए भी व्यक्ति के जाने पर दुख होता ही है। जिसे सहना

करना ही होता है। अब वे हमारे साथ नहीं हैं पर उनके सुसभ्य व्यवहार की मधुर स्मृतियां सदैव स्मरण रहेंगी।

प्रभु चरणों में प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को सद्गति प्रदान करें और परिवार तथा कुटुम्ब पर आयी इस घोर विपत्ति को सहन करने की शक्ति प्रदान करे। दु:ख के इस काल में मैं तथा अखिल भारतीय साहित्य परिषद् ? परिवार आपके दु:ख में सहभागी हैं। व्यक्तिगत रूप से भोपाल आकर आपसे मिलने की प्रबल इच्छा थी, पर अस्वस्थता तथा कोरोना काल में प्रवास की अनुमति न होने के कारण आना संभव नहीं हो रहा है। श्रद्धांजलि सभा के समय पूर्व तथा बाद में भी पूर्वनियोजित कार्यक्रम होने के कारण पूर्ण समय उपस्थित रह कर श्रद्धा सुमन अर्पित नहीं कर सका। अत: क्षमस्व।

– लेखक अखिल भारतीय साहित्य परिषद् के राष्ट्रीय संगठन मंत्री हैं।
(बिनय जी को लिखा पत्र- अविकल)

कला की उड़ान : डॉ. राजाराम शर्मा

डॉ. रजनी पाण्डेय

डॉ. राजाराम शर्मा जी से मेरा परिचय उनकी पत्नी डॉ. बिनय राजाराम के माध्यम से हुआ। बिनय और मैं श्री सत्य साई महाविद्यालय में पढ़ाते थे। विनय हिन्दी विभाग में और मैं अंग्रेजी विभाग में। बिनय का बचपन से हिन्दी भाषा और साहित्य की ओर रुझान रहा है। उड़ीसा उनकी जन्मभूमि थी पर हिन्दी के प्रति उनका प्रेम उन्हें राजस्थान ले आया। प्रखर बुद्धि, लगन और मेहनत ने उन्हें सफलता की उच्च कोटि पर पहुँचाया। पढ़ाई के बाद वे शिक्षा जगत में दाखिल हुई जहाँ राजारामजी से उनकी मुलाकात हुई और फिर वे उनसे विवाह के गठबंधन में बंध गई।

राजारामजी भी चित्रकारी में अपना नाम कमा रहे थे। उनके चित्र और कला जगत की विभिन्न गतियों का वे समालोचन भी करते थे। उनकी प्रखर बुद्धि और कल्पना शक्ति उनके आलेखों में उभरकर आई । प्राय: मध्यप्रदेश तथा अन्य प्रदेशों में भी वे एक सशक्त कला आलोचक के रूप में प्रसिद्ध हो गए।

उनकी जन्मभूमि और कर्मभूमि इन्दौर रही। फिर वे भारत भवन के निर्माण के बाद मोपाल आ गए। भोपाल में भी वे कला जगत की विभिन्न क्षेत्रों में आलोचक की भूमि निभाते रहे। जितना उन्हें मैं जान सकी उनके सशक्त व्यक्तित्व के बारे में ङ्क वे अत्यन्त शान्त और मृदु स्वभाव के थे। कलां से संबंधित बातचीत में वे भरपूर योगदान देते थे। उन्होंने ग्रीस में भी भारत का नाम रोशन किया। वहाँ की संस्कृति का भरपूर अध्ययन किया। बिनय को भी साथ ले गए थे। दोनों कला प्रेमियों ने न केवल ग्रीस की कला से संबंधित आलेखों में योगदान दिया बल्कि भारत की कला व संस्कृति को भी विदेशों में प्रसिद्ध किया। भोपाल में बसकर वे लगातार रंगों की दुनियां में रमे रहे।

मैंने अपनी शिक्षा के दो वर्ष गुरू रवीन्द्रनाथ टैगोर की विश्व प्रसिद्ध विश्व भारती विश्वविद्यालय – शान्ति निकेतन में बिताए। वहां मेरा विश्व प्रसिद्ध मूर्तिकार स्वर्गीय राम किंकर जी से परिचय हुआ। वे महान कलाकार होते हुए भी बहुत मस्त और बिंदास किस्म के कलाकार थे। राजाराम जी से बातचीत में किंकर जी का नाम आया तो वे बहुत ही खुश हुए। हम लोग काफी लम्बी बातचीत करते थे किंकर जी के बारे में।

बिनय और राजारामजी की जोड़ी एक आदर्श जोड़ी रही। सभी आयोजनों में दोनों साथ रहते थे। सभी प्रबुद्धजन कहते हैं कि भले वे इस जगत में नहीं है पर उनकी कला सदा अमर रहेगी। सभी कला जगत के प्रेमी उनकी स्मृति जीवित रखेगें। उनके अनेक छात्र-छात्राएँ उनके प्रत्यनों को सफल करेंगे।

भोपाल का सौभाग्य है कि वह कला संगीत तथा संबंधित कला विधियों का केन्द्र बन सका। भोपाल वासियों ने भी खुशी से कलाकारों, लेखकों तथा अन्य विशेषज्ञों का स्वागत किया। राजारामजी जैसे उत्साही कलाकारों ने भोपाल को विश्व के नक्शे पर उतार दिया।

– म.नं. 504, ए-8, ब्लू स्काई,
आकृति ईको सिटी, बावड़ियां कलां, भोपाल मध्यप्रदेश

पुण्य-संस्मरण

राजाराम-एक बेहतर कला-मर्मज्ञ

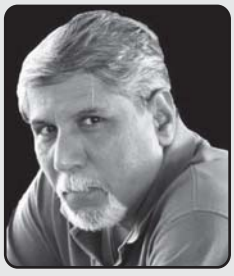

अभिलाष खांडेकर

जीवन-मरण एक सतत प्रक्रिया हैं। मानव का इस दुनिया में आना जितना आनन्ददायक होता हैं, उतना ही दुखद उनका जाना। ख़ास तौर पर एक ऐसी शख़्सियत का अचानक चले जाना, जिन्होंने हमारे ज़िंदगी में रंग बिखेरें हों और जिन्होंने समाज को संस्कृतिशील बनाने में अपना पूरा जीवन खपा दिया हों, निश्चित ही वेदनादाई होता हैं। एक मार्गदर्शक का यूँही चलें जाना निश्चित ही क्लेशदायक हैं।

राजारामजी से मेरा घनिष्ट सम्बंध कभी नहीं रहा, लेकिन कला के क्षेत्र में मेरी रुचि के चलते मैं उनसे कभी-कभार ज़रूर मिलता रहता था। परंतु पिछले क़रीब एक दशक से मेरे भोपाल के बाहर रहने से मेरा उनका जीवंत सम्पर्क नहीं रह सका था। उनके जैसा शांत, हमेशा ख़ुश-मिज़ाज रहने वालें कलाधर्मी का अचानक यूँ चले जाना फिर भी मेरे लिए एक बड़ा झटका था। मेरे मन में उनका एक ऊँचा और आदर का स्थान था। उनके जाने का नुक़सान सिर्फ़ मेरा या भोपाल के कला जगत का नहीं, वरन पूरे देश का नुक़सान हैं, ऐसा मैं मानता हूँ।

वें सिर्फ़ एक चित्रकार नहीं थे, एक अच्छे लेखक और आलोचक भी थे और मुख्यत: जाने माने कला-इतिहासकार थे। इस कला-मर्मज्ञ ने मध्य प्रदेश के कला इतिहास पर जो संशोधन कर अंग्रेज़ी में लेख लिखें थे वे आज भी प्राय: इस प्रदेश के हिंदी-भाषी पाठकों एवं कला प्रेमियों से शायद दूर ही रहें हैं, कारण जो भी रहा हो।

मैंने जब उन लेखों का पहली बार वाचन किया था तब भी मुझे अचरज हुआ था कि हमारे प्रदेश के नामचीन और बड़े कलाकारों की प्रतिभा को उकेर कर समाज के सामने लाने का महती कार्य राजारामजी ने कितने प्रभावी तरीक़े से किंतु चुपचाप ढंग से कर दिखाया था।

दिल्ली की साहित्य कला अकादमी ने तीन बड़े संग्रहणीय ग्रंथ अंग्रेज़ी में प्रकाशित किए थे क़रीब 20 वर्ष पूर्व। पूरे प्रदेश से सिर्फ़ राजारामजीं को अकादमी ने ज़िम्मा दिया था मध्यप्रदेश के कला-इतिहास लेखन का और आज मैं यह कहना चाहता हूँ कि बड़े न्यायपूर्ण तरीक़े से, राजारामजी ने क़रीब 100-150 वर्ष से भी अधिक पूराना व सुंदर इतिहास हमारे सामने लिखकर रख दिया था। वह काम आसान बिलकुल ही नहीं था किंतु मेहनत से और अपनी गहरीं कला पारखी की दृष्टि का उपयोग कर, उन्होंने हमेशा के लिये एक अमूल्य दस्तावेज़ तैयार कर दिखाया।

ऐसा क्या हैं उस दस्तावेज़ में ? मैं कहूँगा क्या नहीं हैं ?

कला की अलग धाराओं और प्रवाहों की विशेषताएँ, छोटें-बड़ें कलाकारों के कार्यों का वर्णन, ब्रितानी, या यूँ कहिए युरोपीयन कला का भारतीय कलाकारों पर प्रभाव और तत्कालीन राजा-महाराजाओं का विभिन्न कला विधाओं को प्रश्रय तथा मध्य भारत (सेंट्रल इंडिया) में आधुनिक भारतीय कला का उदय एवं उत्थान आदि सब कुछ शर्माजी ने अपने काफ़ी बड़े इन दो सारगर्भित लेखों में वर्णित किया हैं।

मैंने इंदौर के कलाकार (पद्मश्री) भालू मोंढ़ेजी से होलकर महाराज द्वारा रूमानिया के प्रख्यात मूर्तिकार कॉन्स्टंटायन ब्रांकुसी को इंदौर आमंत्रित कर उनसे 'बर्ड इन स्पेस' कलाकृतियाँ 1925 में बनवाई थीं यह क़िस्सा सुन रखा था। इंदौर में भी कईं कला-प्रेमियों को इस घटना और ब्रांकुसी के बारे में कम ही जानकारी हैं। एक दफ़े हुसैन साहब ने मुझसे इंदौर में ब्रांकुसी के बारे में कुछ बातें की थीं जो उनके स्वयं के छात्र जीवन के समय की थीं। किंतु राजारामजी ने उस घटना के बारे में लिखा हैं की उन्होंने ना सिर्फ़ मानिक़बाग़ महल में उन सुंदर कृतीयों को 1981 में स्वयं देखा था वरन् उनका मानना रहा की आधुनिक भारतीय कला के इतिहास की वह एक बड़ी घटना थीं, मध्य प्रदेश के संदर्भ में।

भोपाल के नवाब व बेगम, इंदौर के होलकर महाराज और ग्वालियर के सिंधिया महाराज कला-प्रेमी थे और साथ ही छोटे रियासतदार जैसे देवास और धार के पवार भी विभिन्न कलाओं को प्रोत्साहन देने के लियें जाने जातें थे। बघेलखंड क्षेत्र के महाराज (

मुख्यत: रीवा घराना) ने भी नृत्य कला, वास्तुकला एवं संगीत आदि को क़रीब 700 वर्षों से राजाश्रय दिया था। बघेल राजाओं के प्रासादों में अति-सुंदर कलाकृतियाँ देखने को मिलती थीं। वें खासे कला-प्रेमी जो थे।

शर्माजी ने लिखा हैं की इन राजा महाराजों के अलावा, उद्योगपतियों मसलन, इंदौर के सर सेठ हुकुमचंद ने मूर्ति कला को ग़ज़ब का सम्मान दिया जो उनके बड़े-से घर इंद्र विला में आज भी देखें जा सकते हैं। संगमरमर की ग्रीकों-रोमन मूर्तियाँ आज वहाँ शान से मौजूद हैं। ग्वालियर के सरदार शंकरराव मोहिते ने ग्वालियर कल्चरल सोसायटी, जिसके वें अध्यक्ष भी थे, के ज़रिए भी कई कलाकारों की कृतियों को संग्रहित किया था।

वह ज़माना था प्रकृतिवाद का, और प्रमुखता से युरोपीयन प्रभाव का। किंतु मध्य प्रदेश में मराठा राजाओं ने दक्षिण (तंजौर) और राजस्थान की कलाओं को भी अपने यहाँ अपनाया और मराठा कला को नई ऊँचाइयाँ प्रदान की थी जो आज भी दृष्टिगोचर होतीं हैं। यें एक अद्भुत मिश्रण था जो अगले कई वर्षों तक लोगों को आनंदित करता रहा हैं।

मराठा राजाओं में कला-प्रेम कूट-कूट कर भरा था, ख़ासकर सिंधिया घराने में जो वहां के आलीशान महलों के बड़े व आकर्षक पेंटिंग और पोर्ट्रेट्स में नज़र आता हैं। देशी और विदेशी कलाकारों को हर तरह से मराठा महाराजाओ ने तरजीह दी थीं। ग्वालियर का विशेष अभ्यास शर्माजी के लेखन में परिलक्षित होता हैं। उन्होंने लिखा हैं कि मोतीमहल जैसा ख़ूबसूरत भवन, जो बाद में एक सरकारी दफ़्तर में बदलकर कमिशनर कार्यालय बन गया, में कई उच्च-कोटि के मिनीयचर पेंटिंग दिखाई देते हैं। 'रंगमाला' शृंखला के मिनीयचर और तंजौर कला के काँच के फ्रेम में जड़े राधा-कृष्ण के दर्शन यहाँ होते रहें हैं। कंपू कोठी जों अब कमला राजा महिला महाविद्यालय बन चुका हैं, में बड़े हॉल की छत पर आकर्षक चित्रकारी अंकित हैं और दीवारों पर हिंदू, मुस्लिम, ब्रिटिश व अन्य युरपीयन शख़्सियतों के पोर्ट्रेट्स मिलेंगे। किंतु लेखक का दु:ख यहाँ छलक पड़ता हैं यह देखकर की लगभग सभी कलाकृतियाँ अत्यंत दयनीय हालत में हैं क्योंकि उनकी समझ रखने वाला वहाँ कोई नहीं हैं और ना कोई धनी-धोरी जों उनकी देखभाल कर सकें।

राजारामजी ने सिर्फ़ निजी कला संग्रह की दख़ल ली हो या कुछ चंद कलाकारों की स्तुति अपने शोध-परख लेखों में की हो ऐसा नहीं हैं वरन् उन्होंने 'पब्लिक आर्ट' के बारे में भी ख़ूब लिखा हैं। उन्होंने इंदौर के राजवाडे का 1984 के दंग़ो में जल जाने का दु:ख साझा करते हुए सैकड़ों म्युरल्ज के राख होने की बात की है और महान कला-गुरु डी डी देवलालीकर की महत्वपूर्ण कलाकृतियों के उस भीषण अग्निकांड में स्वाहा होने का भी ज़िक्र भी किया हैं। मुझे तो दर्द इस बात से हैं एक समय के कला-प्रेमी शहर इंदौर ने देवलालीकर जैसे कला-गुरु को भी अब भुला दिया हैं। ख़ैर, वह शहर अब कला संरक्षक के रूप में कम और भू-माफ़िया के कारण अधिक सुर्खियो में रहता हैं।

उधर ग्वालियर की जनकोजीं महाराज की छतरी की मूर्ति-कला तथा बाड़ा चौक स्थित महाराजा जीवाजीराव सिंधिया के ताम्बे के भव्य पुतले की तारीफ़ की है लेखक ने और वैसा ही एक पुतला उज्जैन में भी बनाया गया हैं इसकी जानकारी संक्षेप में दी हैं।

लेखक ने दक्षिण भारतीय कलाकार एन एस सुब्बाकृष्णा (ग्वालियर), मास्टर मदनलाल शर्मा (उज्जैन) व अवधशरणसिंह बवानी (रीवा), रूद्र हाँजी, सुशील पॉल, अब्दुल हलीम अंसारी (भोपाल राज्य), जी पी सिंह, नाना वैद्य, डी.जे. जोशी, प्रो एन.एस. बेंद्रे,(इंदौर), धार के बड़े मूर्तिकार आर.के. फड़के, फिर मालवा के नागेश यावलकर आदि इत्यादि कई कलाकारों का और उनके अच्छें कामों का विस्तृत वर्णन किया हैं। उनका मानना था की 20वी सदी में मध्य प्रदेश में प्रकृतिवाद काफ़ी मात्रा में मूर्तिकारों एवं चित्रकारों पर छाया हुआ था जिसके दर्शन आज भी होते हैं।

वह समय इतना अच्छा समय था जब मध्य प्रदेश में बसें इन कलाकारों को राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसादजी जैसी विभूति ने समय देकर अपना भव्य पोर्ट्रेट उनसे (सुब्बाकृष्णा) बनवाया था। एक अजूबा था वह।

मध्य प्रदेश का सौभाग्य रहा की स्वयं राजा रवि वर्मा बघेलखंड पधारें थे और 1917 में महाराज वेंकटरमनसिंह जूदेव का पोर्ट्रेट बनाया था। किंतु महाराज ने जब उन्हें अपने राज्य के सरकारी चित्रकार को अपने हुनर सिखाने की विनंती की तो रवि वर्मा ने उसे साफ़ ठुकरा दिया था। ऐसे कई और क़िस्से गुथते हुए, राजारामजी ने आज की पीढ़ी के सामने उस समय की कला, बड़े कलाकार, उनकी मेहनत, विविध प्रभाव व प्रवाह आदि के बारे में लिख कर एक महतिय कार्य किया हैं। उस ज़माने में, अर्थात क़रीब 100-150 वर्ष पूर्व, और बाद में 1980-90 के दशक तक कला का सम्मान ज़रूर होता था, कला के प्रति प्रेम भी ख़ूब था लेकिन कलाकार मेहनती होने के बावजूद आज जैसा पैसा कलाकारों को मिलता नहीं था। अख़बारों में कला समीक्षा भी लगभग नहीं के बराबर थीं। बड़े-बड़े

आर्ट शो नहीं होते थे जहाँ जाकर आम आदमी चित्र या मूर्तियाँ ख़रीद सकें। क्योंकि आर्ट गैलरीज़ का प्रचलन भी नहीं था।

हाँ, राजा-महाराजों ने कला विद्यालय और स्टूडियों बनायें थे जहाँ 'स्टेट आर्टिस्ट' नौकरी पर रखें जातें थे। उन्हीं के कारण कला का वास्तविक फैलाव हुआ और लोकप्रियता भी हल्के-हल्के बढ़ी, यह बात तो मानना पड़ेगी। आज राजारामजी को उनके शिष्य-गण तो गुरु के रूप में याद करते हैं, और आगे भी करेंगे, किंतु उनका यह लेखक वाला पहलू भी उतना ही महत्वपूर्ण हैं ऐसा मैं मानता हूँ और इसी कारण मैंने उनके उन दो लेखों के बारे में संक्षिप्त में यह टिप्पणी लिखी हैं । लिखने के लिये तो और भी खूब हैं। फिर कभी। पूरे मध्य प्रदेश (छत्तीसगढ़) की समग्र कला और वह भी क़रीब 150 साल की यात्रा का लेखन आसान नहीं था। बस्तर का उल्लेख और माटी-कला की भी दख़ल राजरामजीं ने अपने लेखों में लीं हैं। उनके इस कार्य को नमन और उस बड़े कलाकार को श्रद्धांजलि।

- लेखक एक वरिष्ठ पत्रकार हैं।

'कला समय' पत्रिका के सदस्यता शुल्क में वृद्धि की सूचना

प्रिय पाठकों,

द्वैमासिक 'कला समय' एक अव्यावसायिक कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक सांस्कृतिक पत्रिका है, जो विगत 25 वर्षों से अविकल रूप से कला/साहित्य जगत की सेवा कर रही है। आप इस तथ्य से परिचित हैं कि एक अव्यावसायिक कला-सांस्कृतिक पत्रिका निकालना बड़ा ही दुष्कर और श्रमसाध्य कार्य है। विगत कुछ वर्षों में मुद्रण, टंकण, कागज आदि की लागत में असामान्य बढ़ोत्तरी हुई है। ऐसे में पत्रिका के नियमित प्रकाशन को आप तक पहुँचाने के लिए ग्राहक सदस्यता शुल्क में (जून-जुलाई 2021) अंक से वृद्धि करना अपरिहार्य हो गया है। सदस्यों से अनुरोध है कि अब वे अपना सदस्यता शुल्क निम्नानुसार भेजकर सहयोग करें। जिन आजीवन (15 वर्षीय) सदस्यों की सदस्यता अवधि के 15 वर्ष पूरे हो चुके हैं, उनसे अनुरोध है कि वे पुन: अपनी आजीवन सदस्यता का नवीनीकरण कराने हेतु 'कला समय' के पक्ष में आजीवन सदस्यता शुल्क भेज कर अनुगृहीत करें।

संशोधित सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)
		350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)
		700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)
		1200 (संस्थागत)
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)
(15 वर्ष के लिए)	:	12,000 (संस्थागत)

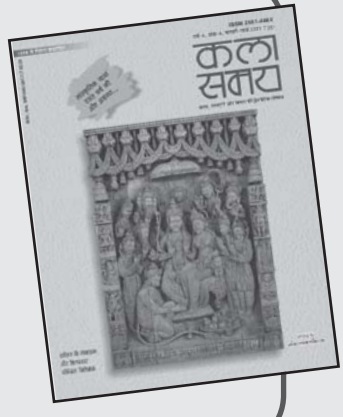

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

पुण्य-संस्मरण

संस्कृति और कला के मोर्चे पर अविराम: राजाराम

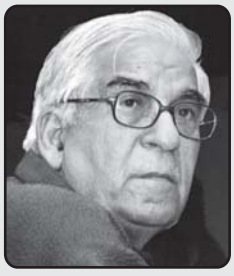

डॉ. देवेन्द्र दीपक

एक शिक्षार्थी राजाराम
एक कला आचार्य राजाराम
एक चित्रकार राजाराम
एक कला समीक्षक राजाराम
एक सांस्कृतिक याचक राजाराम
एक कला-गुरू राजाराम
एक कला पत्रिका के संपादक राजाराम

राजाराम कहीं भी हों, कुछ भी करें, कुछ भी करने के लिए लोगों को प्रेरित करें, हर समय भारतीयता के आच्छादन में उनकी क्रियाशीलता विस्तार पाती रही।

1882 में राजाराम भोपाल आए। तब से अब तक उनसे निरंतर सम्पर्क और सान्निध्य बना रहा। बहुत सोचा था सेवानिवृत्ति के बाद दोनों परिवार साथ-साथ रहेंगे। योग भी बना। हम दोनों ने सूर्या कालोनी में आवास लिए, लेकिन योग बनते-बनते भी नहीं बन पाया।

अपनी हर रेखा की पीछे, रंग की हर बूंद के पीछे राजाराम की कला-सत्ता अपनी सम्पूर्ण स्वायत्तता के साथ संप्रत्यक्ष है।

राजाराम को लेकर कुछ बिन्दु ऐसे हैं, जिनका उल्लेख मेरे लिए ही नहीं आम जन के लिए भी महत्वपूर्ण है।

राजाराम मुझसे दस साल छोटे थे, लेकिन न वह छोटे थे, न मैं बड़ा था। दोनो के बीच समशीलता का एक सेतु था जिस पर आवक जावक में कभी कोई बाधा नहीं आयी।

अयोध्या में राम मंदिर का आन्दोलन तेज हुआ। कार सेवक खाई-खंदकों को पार कर अयोध्या पहुँचे। मुलायम सिंह सरकार ने निहत्थे कार सेवकों पर गोलियाँ, चलाई। चारों ओर हताहत और खून ही खून। लाल लाल खून! राजाराम रात भर सो नहीं सका। खिन्नता ने नींद छीन ली। बेचैन राजाराम का कलाकार अयोध्या के रक्तरंजित परिदृश्य को लेकर अपने को मथता रहा। फिर एक चित्र बनाया। चित्र में चौकोर रक्तकुंड और उसमें तैरता कागज का बना उल्लू का पट्ठा। कागज के बने उल्लू को कैसे भी उछालकर फेंको वह अपने पेंदे पर ही खड़ा होता है।

राजाराम की अपनी एक प्रतीक योजना है। मैंने उनसे पूछा - यह उल्लू क्या है? अपने आक्रोश को सहजता के आच्छादन में ढकते हुए कहा - यह उल्लू भारत का तथाकथित बुद्धिजीवी! यह भारतीयता के हर प्रश्न पर एक ही तरह रिएक्ट करता है।

हम लोगों ने 'गोली-चालक' के विरोध में एक प्रदर्शन किया। डॉ. बिनय और राजाराम आए। उस चित्र के साथ। मौन प्रदर्शन। चलने में तकलीफ लेकिन राजाराम हम लोगों के साथ राजभवन तक गये।

ऐसा ही एक प्रसंग सरस्वती वंदना के विरोध में हुए आन्दोलन में कदम-ब-कदन राजाराम हमारे साथ रहे।

एक दिन कालेज से लौटते हुए राजाराम घर आए। उस समय मैं प्रोफेसर कालोनी में रहता था। साथ में बिनय भी थीं। मुझसे कहा-जरा बैठिए। वह घर आए थे तो मुझे स्वागत में बैठना ही था। मैं बैठा। उन्होंने अपनी जेब से अपना पेन निकाला और एक कागज पर कुछ ही मिनट में मेरा एक रेखाचित्र बना दिया। अब उस कागज पर मैं था। एकदम फिट। मेरी चुस्ती-स्फूर्ति उनके बनाए रेखाचित्र में ज्यों की त्यों। रेखाओं पर उनका अधिकार सचमुच अद्भुत था।

एक प्रसंग और मकबूल फिदा हुसैन एक बड़े चित्रकार। भारत के चित्रकार, लेकिन भारतीय चित्रकार नहीं। उन्होंने सरस्वती और अन्य देवी देवताओं के भद्दे चित्र बनाए। इस मुद्दे को सबसे पहले डॉ. ओम नागपाल ने अपनी एक पत्रिका में उठाया। पूरे देश में उन चित्रों को लेकर हंगामा, पूरी प्रगतिशील लॉबी हुसैन के पक्ष में लाम बंद! राजाराम ने पूरी स्थिति का जायजा लिया हुसैन के चित्रों की पूरी फेहरिश्त के साथ वे इस विषय को लेकर मुखरता से सामने आए। समझने की बात यह कि वे सोच-समझकर और नाप-तौलकर ही किसी विषय पर अपना पक्ष रखते थे।

मैं साहित्य अकादमी का निदेशक बना। हमारे सामने समस्या थी कि कार्यक्रम में मंच पर प्रदर्शन हेतु कुछ अच्छे चित्र बने। श्री कृष्ण 'सरल' का कोई चित्र उपलब्ध नहीं था। उनके परिवार ने दो छोटे अस्पष्ट से चित्र हमें सुलभ कराए। हमने राजाराम जी से कहा

कि इन चित्रों के आधार पर आप श्रीकृष्ण 'सरल' जी का चित्र बनाएँ। उन्होंने हमारे अनुरोध का मान रखा और श्रीकृष्ण सरल जी का भव्य चित्र बनाया। उनके बनाए चित्र को उनके सुपुत्र ने देखा तो आनंद से कहा – बाबू जी, ठीक ऐसे ही थे। मेरे अनुरोध पर राजाराम जी ने अकादमी के लिए मैथिलीशरण गुप्त का भी एक भव्य चित्र बनाया।

राजाराम सक्रियता के स्तर पर 'पर्यावरण मित्र' थे। उपदेश नहीं। आचरण भी चरण-दर-चरण। उन्होंने सूर्या कालोनी में अपना भवन सप्तवर्णी बनवाया तो उसमें वाटर हारवेस्टिंग की व्यवस्था की, सोलर का प्लांट लगवाया। उनका आवास एक प्रकार से 'हरा-घर' है।

एक अद्भुत प्रसंग मुझे बिनय ने सुनाया। उनके बगीचे में आम के पेड़ हैं। राजाराम एक बार गंभीर रूप से बीमार हुए, उन्हें अस्पताल में भर्ती होना पड़ा तब उनके बगीचे के आम के पेड़ भी मानों उदास रहे, क्यांकि उस समय उचित मौसम में भी उनमें कोई मंजरी नहीं खिली। राजाराम अस्पताल से स्वस्थ हो कर लौटे तो आम के पेड़ विलंब से भी मंजरियों से भर गए थे। यह है उभयपक्षी राग-बंध! मेरे लिए यह विरल प्रसंग है।

राजाराम 'स्मारक-आकलन' के विशेषज्ञ हैं। कहीं भी स्मारक बने, उनकी प्रकृति-संस्कृति पर उनकी दृष्टि रहती। जहाँ विसंगति दिखती, वे अपना विरोध दर्ज कराते। 'शौर्य स्मारक' की विसंगतियों को उन्होंने उजागर किया था। चन्द्रशेखर आजाद के गांव पर बने स्मारक की भी उन्होंने समीक्षा की। कौन-सी प्रतिमा किस स्थान पर स्थापित की जाये इसको लेकर भी वे आग्रही थे।

कला-क्षेत्र का नेपथ्य नीति-अनीति, न्याय-अन्याय, तिरस्कार-पुरस्कार के अनेक प्रसंगों और घटनाओं से भरा पड़ा है। राजाराम प्रयोगधर्मी थे, लेकिन घालमेल और 'एडलट्रेशन' उन्हें स्वीकार नहीं थे। वे नाराजगी का खतरा मोल लेकर भी अपनी असहमति व्यक्त करते थे। इसके लिए कई बार उनके नाम के साथ 'झगडालू' शब्द भी जोड़ा गया।

अनेक बार उन्होंने तथ्यों के उद्घाटन के लिए आर.टी.आई. लगाई और उसके लिए कार्यालयों के चक्कर लगाये, अधिकारियों से टकराए!

अपने चयन में राजाराम सदैव निष्पक्ष रहे हैं। प्रतियोगिता के निर्णायक रहे हों, किसी प्रदर्शनी के लिए चित्रों के चयन का दायित्व हो, किसी पद पर नियुक्ति का प्रश्न हो राजाराम का चयन निर्विवाद रहा है।

राजाराम बेदाग चादर ओढ़कर बैठे, लेकिन उठे तो भी उनकी चादर पर कोई दाग नहीं था। उन्होंने ख्यातनाम लोगों को भी अनैतिक होते देखा, लेकिन अपने को काजल की कोठरी में भी बेदाग रखा। राजाराम तुम अद्भुत हो!

राजाराम ने देश-विदेश की कला-यात्राएँ कीं, कला के इतिहास को संजोया। एक बात जो मैं रेखांकित करना चाहता हूँ कि विदेशी कला-आन्दोलनों के अध्ययन से भारतीय कला-बोध और सौन्दर्य-बोध के प्रति उनकी आस्था निरंतर सघन होती गयी।

शरीर ने राजाराम का साथ नहीं दिया, लेकिन उनका मन-कमल कभी मुरझाया नहीं।

संस्कृति और कला के मोर्चे पर अविराम: राजाराम!

- लेखक साहित्य-सेवी, पूर्व निदेशक साहित्य अकादमी, म.प्र. संस्कृति विभाग हैं।

प्रो. राजाराम भैया को मेरी अश्रुपूरित श्रद्धांजलि

विभा गोयल

वे मेरी प्रिय सखी बिनय के अंतरंग थे। वे हमारे महाविद्यालय में चित्रकला विभग में वरिष्ठ प्राध्यापक थे। बिनय के माध्यम से भैया से संपर्क हुआ। वे एक सरल, हँसमुख व्यक्तित्व के धनी थे। वे कला के अतिरिक्त साहित्य प्रेमी भी थे। उन्होंने अपने क्षेत्र में (कला), देश, विदेश में, काफी महारथ हासिल की। अपनी जीवन संगिनी बिनय को सदा प्रोत्साहित करते रहे, उसकी सफलता पर प्रसन्न होते रहे। मेरी दृष्टि में उन्होंने इस कथन को चरितार्थ किया-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।

उनके निधन ने प्रियजनों के जीवन में शून्यता भर दी है। ईश्वर से प्रार्थना है कि वे हमें इस दु:ख को सहने की शक्ति दे व भैया की आत्मा को शाँति दे।

पुण्य-संस्मरण

प्रो. राजाराम : एक अविस्मरणीय व्यक्तित्व

जगदीश तोमर

सर्ववरेण्य कलाविद् (स्व.) प्रो. राजाराम जी से मेरी भेंट 1977 के आसपास हुई थी। तब वह यूनान से अपनी तीन वर्षीय प्रवास पश्चात स्वदेश वापस आए थे, और ग्वालियर के कमलाराजा कन्या महाविद्यालय में ललित कला के आचार्य एवं विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए थे। मुझे याद पड़ता है कि वह बड़े खुले मन से मिले थे। मैंने उन्हें प्रथम दृष्टया ही समझ लिया था कि वह बहुत सरल, सहज और पर्याप्त मुक्त व्यक्ति हैं। उनकी आत्मीयता और अकृत्रिम व्यवहार ने मुझे और मेरे मित्र (स्व.) डॉ. शिव बरूआ को पहली भेंट में ही मोह लिया था। और फिर एक बहुत छोटी-सी लगने वाली बात ने मुझे उनका आजीवन प्रेमी और प्रशंसक बना दिया था।

उस भेंट के समय उनकी सहधर्मिणी बिनय जी भी उपस्थित थीं। उस समय राजाराम सर ने जो चिन्ता व्यक्त की थी उसमें उनकी स्वदेश भक्ति की स्पष्ट झलक थी। उनका कहना था कि उनके पुत्र कौस्तुभ का शैशव यूनान में ही व्यतीत हुआ था, इससे भारत से उसका कोई परिचय नहीं है। मुंबई हवाई अड्डे से बाहर आते ही उने पहली बार गाय देखी। क्योंकि यूनान, बल्कि पूरे पश्चिमी गोलार्द्ध में, गायें यहाँ-वहाँ घूमी नहीं दिख पड़ती। इसलिए भारत आते-आते गाय को देखना उसके लिए आश्चर्य एवं जिज्ञासा का विषय था। और इसलिए प्रो. राजाराम जी बोले थे कि हम चाहते हैं कि कौस्तुभ जल्दी से जल्दी अपने देश के पशुपक्षियों, नदी-पहाड़ों आदि से परिचित हो जाये। उनकी इस चिंता ने मुझे बड़ा प्रभावित किया था क्योंकि हमारे कितने ही देशवासी तो इस सोच के बिल्कुल उलट, अपने बच्चों को विदेशी संस्कारों में बढ़ता हुआ देखना चाहते हैं। बहरहाल, प्रो. राजाराम और बिनय जी की इस चिन्ता का सुपरिणाम यह हुआ कि आज कौस्तुभ को इस देश के नदी, पहाड़, जंगल, पशु-पक्षी परम प्रिय हैं और वह पर्यावरण के क्षेत्र में पावन दायित्वों का निर्वहन कर रहा है।

प्रो. राजाराम का सदैव से मानना रहा कि साहित्यकार हो या शिल्पी-चित्रकार या जननेता, उसे प्रथमत: स्वदेश प्रेमी होना चाहिए। उनसे इस सोच ने मुझे उनके और भी समीप ला दिया था और फिर उनसे ऐसे संबंध बने कि ग्वालियर से उनके स्थानांतरण के बाद भी हम लोग बीच-बीच में मिलते रहें, चाय या भोजन की मेज पर अनेकानेक चर्चाओं में निमग्न होते रहे।

श्री राजाराम जी सुविख्यात कलाविद् थे और एक कला-चिंतक एवं समीक्षक के रूप में सर्वत्र समादृत थे। सहस्त्रों युवा कला-साधकों के वह संपूज्य गुरूवर थे। किन्तु इन सबके बावजूद मैंने जब भी उनसे कोई निवेदन किया तो उन्होंने इसके लिए समय निकाला और भरपूर सहयोग किया। इस संदर्भ में एक छोटा सा प्रसंग मुझे याद आ रहा है। 2006 में मुझे प्रेमचंद सृजनपीठ, उज्जैन का दायित्व मिला। उस समय पीठ की ओर से एक पत्रिका 'संवाद सृजन' के प्रकाशन का निर्णय हुआ। तब मैंने प्रोफेसर सर से उस पत्रिका का आवरण-पृष्ठ तैयार करने का अनुरोध किया। और उन्होंने, अपनी अनेक व्यस्तताओं को एक तरफ रखते हुए, सवांद सृजन के लिए आवरण पृष्ठ बनाकर दिया। उसके केन्द्र में तो मुंशी प्रेमचंद जी ही चित्रित हुए थे। वे इतने सजीव और मोहक थे कि वे वैसे ही पीठ के राइटिंग पेड पर सुसज्जित हुए।

उनके प्रेम और सहयोग की अनेक स्मृतियाँ मेरे भीतर उठ रही हैं। कई बार तो उन्होंने विशुद्ध प्रेमवश ही मुझे महत्व प्रदान किया था। एक बार देश के एक बहुत बड़े चित्रकार एवं शिल्पी रूद्रअप्पा जी के जन्मशताब्दी वर्ष के संदर्भ में भोपाल में एक बड़ा आयोजन हुआ। उस निमित्त प्रोफेसर सर ने मुझे आमंत्रित किया था। तब मैंने यह कहते हुए, अपनी अनिइच्छा व्यक्त की थी कि मैं वहां क्या करूंगा, मुझे तो कला की एक-बी-सी भी नहीं आती। किन्तु वह नहीं माने थे, बोले थे - 'आपको आना है, मंचासीन होना है, फिर भले ही आप आभार प्रदर्शन की रस्म ही पूरी करें।' फिर तो मैं भोपाल पहुंचा ही। यह उनका प्रेम ही था जो मुझे वहां खींच ले गया।

ग्वालियर में भी उनके मुख्य आतिथ्य में एक बड़ा कला-आयोजन सुसंपन्न हुआ था। इस समय भी, मुझे उनके कारण ही, मंच

पर स्थान दिया गया था। यूं अनेक अवसरों पर मैं बेवजह ही सम्मानित होता रहा।

प्रो. राजाराम जी कला-समीक्षा की एक पत्रिका 'फोकस' का भी संपादन करते रहे। उसमें कला जगत की गतिविधयों के विद्वान तो रहते ही थे, अनेक मान्यताओं, परंपराओं आदि का विवेचन भी रहता था। वह उस पत्रिका को मेरे पास भेजते रहे और मैं कला के विविध कर्मो-आयामों से परिचित होता रहा।

यूं प्रो. राजाराम जी दूर रहकर भी सदैव हमारे समीप रहे। आज वह पार्थिव भले ही हमारे बीच न हों किन्तु वे हमारी स्मृतियों में सदैव रहेंगे। वह निश्चित ही एक अविस्मरणीय व्यक्तित्व हैं। उनके निधन से कला जगत की तो अपूरणीय क्षति हुई है।

उनकी अशेष स्मृति को पुन: पुन: प्रणाम है।

चित्रकला एवं साहित्य के क्षेत्र में एक स्थापित नाम

डॉ. स्मृति उपाध्याय

लगभग पिछले 11 वर्षों से मैं आदरणीय प्रोफेसर राजाराम जी से जुड़ी हुई हूँ। मैं डॉ. बिनय राजाराम मैडम के निर्देशन में पीएच.डी. कर रही थी। कार्य के सिलसिले में मुझे मैडम के घर जाने का कई बार अवसर मिला। उसी समय कभी-कभी आदरणीय राजाराम सर से भी कई विषयों पर चर्चा हुआ करती थी ।

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि प्रोफेसर राजाराम चित्रकला एवं कला-लेखन के क्षेत्र में एक स्थापित नाम है । उनका परिचय देना सूरज को दीपक दिखाने जैसा है। चाहे उनका घर हो या उनका व्यक्तित्व, हर जगह उनकी कलात्मकता की छाप दिखाई देती है। कला पर जितनी बारीकी से उनकी दृष्टि रहती थी उतनी ही बारीकी से स्वाद के प्रति भी सजग थे। मुझे पकवान बनाने और खिलाने का बहुत शौक है ।

अत: यदा-कदा त्योहारों पर या कभी ऐसे ही कोई व्यंजन बनाकर ले जाती तो वे बड़े ही उत्साह और रस ले लेकर व्यंजन को चखते और व्यंजन में डाली गई एक-एक सामग्री का पूरा स्वाद लेते और बता-बता कर खाते जाते की तुमने इसमे ये सामग्री डाली है इससे स्वाद और ज्यादा बढ़ गया। और वे पुरानी स्मृतियों में गोते लगाते जाते ।

मेरे द्वारा बनाए गए पकवानों की प्रशंसा करते जाते और सबसे बड़ी बात खाते समय उनके चेहरे पर जो आनंद के भाव उभर कर आते थे वह मुझे सुखद अनुभूति प्रदान करते थे । ऐसा लगता था कि मेरी पाक कला सफल हो गई ।

कभी इंदौर तो कभी उज्जैन के पकवानों के बारे में बताते और उन्हें विशेष तौर पर बेसन चक्की जिसे बेसन की बर्फी कहा जाता है लेकिन मालवा में बेसन चक्की ही कहा जाता है और गुजिया बेहद पसंद था । ऐसी ना जानें कितनी बातें हैं।

उनके पास बैठना, घंटों बाते करना बड़ा अच्छा लगता था। उनका सरल और प्रेरक व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावशाली था। उन जैसा कला का धनी व्यक्ति मिलना अत्यंत दुष्कर है। उनकी स्मृतियां सदैव मेरी स्मृति में बनी रहेंगी ।

उन्हें सादर श्रद्धांजलि। कोटिश: प्रणाम।

- फ्लैट न. 306, ब्लॉक 8, सौम्या एवरग्रीन, हिनोतिया आलम, भोपाल

Anurag Offset
complete printing solution
OFFSET PRINTING : Books, Magazine, Brochure, Poster, Leaflet, CD/ DVD Cover, File, Pumplate etc.
26-B, Deshbandhu Parisar, Press Complex, M.P. Nagar, Zone-I,
Bhopal (M.P.) Mob.: 9993044828 | e-mail: anurag.offset@gmail.com

पत्रों के आईने में : प्रो. राजाराम

घनश्याम मैथिल 'अमृत'

सन्त कबीर का एक बहुप्रचलित दोहा है जो इस नश्वर संसार को दो पंक्तियों के माध्यम से बड़े ही सटीक ढंग से व्याख्यायित करता है, कबीर कहते हैं – वैद्य मरे रोगी मरे, मरे जलावन हार, देखन वारे भी मरे,अपनी अपनी बार। यानी अंतत: आये हैं सो जाएंगे राजा रंक फकीर ..! और इस प्रकार प्रभु तथा प्रकृति के अटल सत्य का परिपालन करते हुए ख्याति लब्ध चित्रकार प्रो. राजाराम अपनी नश्वर देह को त्याग इस नश्वर संसार से अपनी भौतिक उपस्थिति को विराम दे कर हम सबके बीच से बिदा हुए ,तथा अपने पीछे छोड़ गए एक समृद्ध कला संसार एक भरी पूरी विरासत और कभी न विस्मृत करने वाली अनेक स्मृतियां ,यह स्मृतियाँ हमें उनके न रहने पर भी उनका अपने बीच होने का अहसास कराती हैं ,हमें कुछ नवीन करने की ऊर्जा तथा प्रेरणा देती हैं।

प्रो. राजाराम जी से मेरा परिचय लगभग पच्चीस वर्ष पुराना था ,जब वर्ष 1995 में कीर्तिशेष मित्र डॉ. बाबूराव गुजरे के साथ मिलकर हमने करवट कला परिषद की स्थापना की थी, और राजधानी के साहित्यकारों से कार्यक्रमों के सिलसिले में हमारा मिलना जुलना हुआ, तब वरिष्ठ साहित्यकार डॉ देवेंद्र दीपक के माध्यम से वरिष्ठ साहित्यकार डॉ (श्रीमती) बिनय राजाराम जी से भेंट हुई और फिर कभी किसी आयोजन में अध्यक्षता तो कभी मुख्यवक्ता के रूप में हम बिनय जी को अपनी मासिक गोष्ठियों अथवा कृतियों के लोकार्पण हेतु आमंत्रित करते और टी.टी.नगर स्थित एफ-42/10 दक्षिण तात्याटोपे नगर स्थित शासकीय आवास पर उनसे भेंट करने जाया करते , आदरणीया बिनय जी से मुलाकातों के दौरान ही प्राय: प्रो.राजाराम जी से भी नमस्कार होती , राजाराम जी के सौम्य आकर्षक चेहरे पर एक कलाकार की आभा के दर्शन स्पष्ट दिखाई पड़ते थे, उनकी आंखें जैसे बिना कुछ कहे भी बहुत कुछ कहती थीं मैं यह भाषाई चमत्कार के लिए अतिशयोक्ति के रूप में पाठकों को लुभाने के लिए नहीं लिख रहा बल्कि यह पूर्णत: सत्य है और मेरे कथन की पुष्टि वे लोग करेंगे जो राजाराम जी के सम्पर्क में रहे हैं कि प्रो साहब कितने सहज सरल थे उनकी वाणी में कितनी मधुरता थी वे जितने सुदर्शन बाहर से थे उससे सुदर्शन कहीं वे भीतर से थे यानी किसी को प्रभावित करने के सम्पूर्ण रंग परमेश्वर ने उनको दिए थे । मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि जाने कब मैं अपने आपको बिनय जी की अपेक्षा प्रो.राजाराम के निकट पाने लगा, जब कभी उनके निवास पर जाना होता तो बिनय जी से अधिक प्रो. साहब से घण्टो बातें होती, देश दुनिया राजनीति, कला-संस्कृति किसी भी विषय पर उनसे खुलकर चर्चा होती, यहां तक कि महीने में दो चार

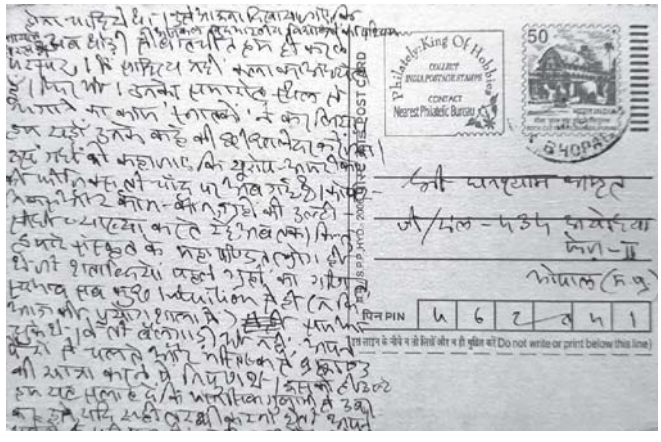

बार दूरभाष पर भी उनसे आधा-पौन घण्टे चर्चा होना मामूली बात थी, उनसे चर्चा कर हृदय को बड़ा आनन्द मिलता कई चीजों के बारे में सोचने की एक नई दिशा मिलती मार्गदर्शन मिलता उन्होंने कभी अपने आपको बहुत बड़ा कलाकार नहीं माना हमें आश्चर्य होता था एक कलागुरु एक प्रोफेसर जिनकी देश ही नहीं विदेशों में भी अनेक कला प्रदर्शनियां आयोजित हो चुकी थी, अनेक शोधपत्रों का वाचन, 'आर्ट-फोकस' (त्रैमासिक) पत्रिका का सम्पादन, भारत भवन में रूपंकर प्रमुख यह सब उपलब्धियां उनके लिए जैसे सामान्य थीं। वह हमसे ऐसे आत्मीयता से अपनत्व भरा व्यवहार करते कि आज वह दृश्य उनकी आवाज उनका निश्छल मुस्कराता हुआ चेहरा आंखों के सम्मुख सजीव चलचित्र की भांति गतिमान हो उठता है। हमारी

संस्था साहित्य कला संस्कृति के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान करने वाले अग्रज वरिष्ठ कलाकारों साहित्यकारों को अपने वार्षिक सम्मान समारोह में 'कला साधना' सम्मान से विभूषित किया करते थे और बिनय जी को साहित्य सेवा के लिए और प्रो.राजाराम को उनकी चित्र कला के क्षेत्र में विशिष्ट उपलब्धियों प्रयोगों शोध और नवाचारों के रूप में किये गए कार्यों श्रेष्ठ उपलब्धियों के लिए वर्ष –1998 में 'कला साधना सम्मान' से विभूषित कर स्वयम को गौरवान्वित किया था।

प्रो. साहब से मेरा जीवंत सम्पर्क उनके शासकीय आवास के पश्चात अपने निजी निवास एच –8 सप्तवर्णी सूर्या आवासीय परिसर, राजाभोज मार्ग जी हां वे कोलार मार्ग को यही लिखा करते थे पर भी प्रत्यक्ष तो था ही साथ ही जैसा मैंने ऊपर लिखा है उनसे दूरभाष पर भी लम्बी चर्चा होती थी और कभी कभार महत्वपूर्ण विषयों पर हमारे बीच पत्राचार भी होता था । हमारे यहां कहा जाता है –'सौ बका एक टका' यानी मौखिक रूप से कही गयी सौ बातों से अधिक महत्वपूर्ण है लिखी गयी एक बात ।

वर्तमान सूचना प्रौद्योगिकी के आधुनिक समय में जब हम कम्प्यूटर, मोबाइल, व्हाट्सएप, ई–मेल के बढ़ते प्रयोगों के चलते भले आज हस्तलिखित पत्रों की समृद्ध परंपरा समाप्त होती जा रही हो परन्तु पत्रों का अपना अलग महत्व है पत्रों का स्थान कोई नहीं ले सकता पत्र अपने समय के दस्तावेज होते हैं, पत्र में आत्मीयता का भाव होता है उसके पढ़ने देखने स्पर्श करने का एक अलग सुख होता है।

आज प्रो.राजाराम हमारे बीच नहीं हैं परन्तु उनके कुछ महत्वपूर्ण पत्र आज भी हमारे बीच हैं वे अधिकतर पोस्ट कार्ड लिखा करते थे और इसका भरपूर उपयोग करते थे बहुत छोटे छोटे अक्षरों में कितनी सारी बातें एक कार्ड पर लिखी जा सकती हैं यह हम राजाराम जी के पत्रों से सीख सकते हैं ,यह पत्र दस्तावेज हैं यह पत्र हमें बताते हैं कि प्रो.साहब की विचारधारा को समाज और राष्ट्र के बारे में उनके महत्वपूर्ण विचारों को आइये उनके कुछ पत्रों पर दृष्टि डालें । पहले मैं संक्षिप्त में सन्दर्भ, फिर उनका पूरा पत्र।

इनके कुल चिंतन का आधार है 'एकाकी आदमी' और 'व्यवस्था'। जो कुछ भी अस्तित्व में आदमी द्वारा भोग के लिए है जिसके लिए ये पर्यावरण जीवों और मनुष्य के सहअस्तित्व में विश्वास न करके सबकुछ निर्ममता से नष्ट कर देंगे, असंतुलित हो जाने देंगे, यह भूल जाते हैं कि ब्रम्हांड का कण–कण एक दूसरे से जुड़ा है और एक दूसरे के लिए है दुनिया की इकोलॉजी को इन्होंने नष्ट किया है खुद मनुष्य का जीवन इनके कारण खतरों में उलझ चुका है।

भारतीय संस्कृति विचारों की विविधताओं रवींद्रनाथ ठाकुर के 'तपोवन' में विश्वास करती है जहां मनुष्य पर्यावरण और समस्त जीव जगत काव्यमय काव्य में लीन है एक दूसरे में यह समग्रतावादी चिंतन हैं।

– आपका राजाराम

हस्त लिखित पत्र लिखने की समाप्त होती जा रही परम्परा पर एक पत्र का उत्तर कुछ इस तरह से –

दि–03 नवम्बर 2011

भोपाल

परमप्रिय श्री घनश्याम युगल, बच्चे सबको भोपाल में हम दोनों की ओर से आपको दीपपर्व की हार्दिक बधाई और भावी वर्ष की मंगल कामनाएँ। स्नेह –पत्र के लिए आभार (स्वयं की तुलना में अक्षरों की ओर न जाना) आपने पत्र जब भी भेजा हो मैंने एक नवम्बर की डाक में आपकी लिपि में लिखा दीपावली का पत्र प्राप्त किया खूब अच्छा लगा।

कम्प्यूटर साधन आया तो दिग्गज कलाकारों को कम्प्यूटर पर कुछ रचने का एक आयोजन हुआ कई शंकाएं भी उछाली गईं दसीयों खली जबान अच्छा रहा प्रयोग।

कामर्शियल आर्ट क्षेत्र के कलाकार इसीके सहारे अपना मार्केट चलाते हैं किन्तु अभिव्यक्ति के लिए तो केनवास कागज़ कलम ब्रश रंग के बिना उस तड़फड़ाव मन को राहत कहाँ ? कम्प्यूटर में वह स्पर्श–सुख ही कहाँ, उल्टे कम्प्यूटर ऐंसा लगता होगा कि प्रणयरत प्रेमियों के निजी क्षणों में कोई बाहरी तत्व तांक झांक करता हो।

हाँ जीवन में टाटा की रफ्तार का हो या श्री बैरागी के 'गरीबी बखान' का ना चने छूटे ना बाजरा बेसन मकई या ज्वार की रोटियां बड़े बड़े भोजों में भी सिकतीं हैं और लोग चने काजू किशमिश के साथ भी खाते हैं, कौदा चटनी का मजा कुछ और ही है सीधे स्वाद से मुखातिब होने वाला व्यक्ति ही यह अनुभव ले सकता है जैसे आप या मैं कलम की महिमा को सिर आंखों पर रखते हैं।

यह आपने सही लिखा कि– 'नेट /मोबाइल/कम्प्यूटर हमारी ज़रूरत हैं अनिवार्यता नहीं।' घाटा तब होता है हमें जब प्रकाशन हमारी चिट्ठी पहुंचने का जोखिम न उठाकर तुरत फुरत ई–मेल से पहुंची प्रतिक्रियाओं को छाप देते हैं, लेकिन डाकिया भी आपका मूल स्वभाव भावनात्मकता को नहीं समझता।

– आपका राजाराम ■

कैनवास का दृश्य-संगीत

अवधेश अमन

हमारे यहाँ अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी में राजस्थानी और पहाड़ी चित्रकला में रागमालाओं के चित्रांकन बखूबी किये गए हैं । मगर इन चित्रों में उन दिनों के कलाकारों ने भारतीय शास्त्रीय संगीत की राग-रागिनियों के स्थूल रूप की मांसल और रूमानी कल्पना की थी-- बड़ी खूबसूरत , जवान और हसीन नायिकाओं के रूप में उन्होंने रागिनियों को अनुभव किया था--- रागों के बारे में भी उनके जेहन में कुछ ऐसे ही खयालात थे , जैसा कि उनके चित्रों से जाहिर होता है । इन चित्रों में नायक-नायिकाओं के साथ उन्होंने दिल को रिझाने वाले खूबसूरत परिवेश को भी रचा। यह सब भारतीय रजवाड़ों में जनमी और विकसित हुई लघु चित्रकला में व्यापक पैमाने पर हुआ । पुन: लगभग एक शताब्दी से भी अधिक समय के बाद इस बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में भारतीय चित्रकला में भोपाल के चित्रकार श्री राजाराम ने शास्त्रीय गायन को एक दृश्य-संगीत के रूप में अपने कैनवास पर उतारा । सर्वप्रथम 1976 ई. में भोपाल में प्रख्यात गायिका मालविका कानन के गायन के बिम्बों को इन्होंने अपने कैनवास पर चित्रांकित किया । राग मियां की तोड़ी में गाये गए मालविका कानन के गायन 'जब मोरे राम...' - 'कंकरिया न मारो ..' के स्वर को सुनकर जिन बिम्बों का अनुभव इन्होंने किया , उन्हें कैनवास पर तत्काल उतार दिया । यह चित्रांकन भारतीय रागमाला चित्रांकन की परंपरा से बिल्कुल भिन्न था , इस अर्थ में भी कि इसमें गायन की संवेदनाओं को सूक्ष्म रूप में अनुभव किया गया था । दूसरी बात यह कि इस चित्रांकन का ताल्लुकात गायन के कवित्त से नहीं, बल्कि इसके स्वर एवं इसके अनुभवों से था । चूँकि ऐसे अनुभवों का कोई लोकप्रचलित या लौकिक आकार नहीं होता , इसलिए जाहिर है इसके बिम्ब अमूर्त रूपों में उभरे, जो कुछ दुर्लभ अनुभूतियों वाले रंगों के साथ प्रकट हुए । लेकिन कोई जरूरी नहीं कि हर बार ऐसा ही हुआ हो।

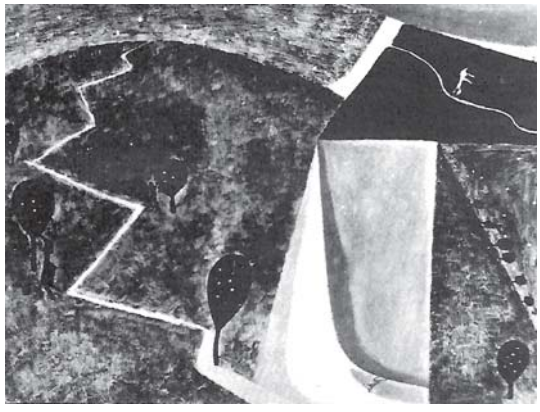

राजाराम भोपाल के भारत भवन में आयोजित प्रख्यात गायकों के गायन सुनते रहे हैं और इन पर चित्रांकन भी करते रहे हैं। जिन्होंने प्रख्यात गायक-संगीतकार पंडित रामचतुरमल्लिक का ध्रुपद गायन भी ठीक से सुना है और इसके अनुभवों को अपने कैनवास पर उतारा है । अपने संगीत-दृश्य को बिम्ब रचनाओं के साथ जब इन्हें कहीं अनुभव हुआ कि स्वर में किसी घोड़े की टाप भी कहीं है तो इन्होंने इसे यथार्थ रूपों में भी अंकित करने का अर्थपूर्ण प्रयास किया। इनके अन्य प्रयासों में रागों के थाट, आरोह, अवरोह, पकड़, स्थाई, अंतरा, आलाप और गाये जाने के समय का अनुभव भी कैनवास पर गायन के समान ही अपनी गंभीरता के साथ व्यक्त हुआ। मगर यह सब इतनी स्फूर्ति के साथ हुआ कि गायन को सुनने और इनके चित्रों को एक साथ देखने के साथ ही इसे ठीक से अपनी दृष्टि के अनुभवों में लाया जा सकता है । कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि इन चित्रों को अलग से नहीं देखा जा सकता । इसे अलग से देखकर बिना इसकी रचना की पृष्ठभूमि की जानकारी के भी इनमें एक ऐसे दृश्य-संगीत का अनुभव होता है , जो अलौकिक है और चमत्कारिक भी । इनमें ज्यादातर गहरे भूरे , गहरे नीले , गहरे हरे और मटमैले पीले रंगों के प्रयोग हुए हैं । गौर करने वाली बात यह है कि इन चित्रों में आकृतियाँ बनते-बनते भी अमूर्त्त हो गई हैं -जैसे स्वर के बिम्ब अपने ही रूपों में स्थापित होने के लिए मजबूर हों।

पिछले दिनों 26 जनवरी, 1988 को राजाराम के चित्रों सरीखा ही एक प्रयोग बम्बई के आधुनिक सभागृह टाटा थियेटर में 'बम्बई आर्ट सोसायटी' की ओर से हुआ था। प्रेक्षकों से पूरी तरह

भरे सभागृह में महान संगीतकार पंडित भीमसेन जोशी के गायन और एक कैनवास पर प्रख्यात चित्रकार मकबूल फिदा हुसैन का चित्रांकन एक ही समय मे हुआ। भीमसेन जोशी के गायन के पहले चरण के साथ आकृतिपरक चित्रों की रचना करने वाले चित्रकार हुसैन ने जो चित्र रचना शुरू की, उनमे यथार्थपरक रूपाकार उभरे, किन्तु गायन के अंतिम चरण तक वे अमूर्तन के शिखर बिंदु तक पहुंच गए, जिनमे रंगों का एक अच्छा विन्यास था। यह उदाहरण यहाँ इसलिए प्रस्तुत किया जा रहा है कि राजाराम के चित्रों में गायन के ऊपर आधारित चित्रांकन में अमूर्तन का अनुभव एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इनके चित्रों में आरोपित या थोपा गया नहीं है अमूर्तन । भारत मे इस शताब्दी में ललित कला की संगीत और चित्रकला जैसी निष्पादन और चाक्षुष विधाओं का यह अनूठा समन्वय संभवत: भारतीय कला में पहली बार राजाराम ने ही स्थापित किया। राजाराम आज भी ऐसे चित्रांकन कर रहे हैं, जिनकी एक अद्यतन 'रागमाला' है।

इन्दौर में जन्मे राजाराम ने कला की शिक्षा बम्बई से पाई , कला-समालोचना की शिक्षा बड़ौदा से तथा कला में शोध कार्य यूनान में किया । भारत के साथ ही यूनान तथा इटली में कई राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय गोष्ठियों में हिस्सा लिया , एकल प्रदर्शनियाँ की , समूह प्रदर्शनियों में चित्र शामिल किये , कुछ पुरस्कार भी प्राप्त हुए और अनेक चित्र देश-विदेश के संग्रहों में शामिल किये गए । इन सब के साथ ही इन्होंने कला विषय पर अपने विपुल लेखन से एक कला-समालोचक के रूप में भी अपनी समर्थ पहचान बनाई । सम्प्रति मध्यप्रदेश सरकार के संस्कृति विभाग और कला अध्यापन से जुड़े हुए राजाराम नित नए सृजनात्मक मूल्यों की सोच से भी जुड़े हैं।

- 1 सी, आकृति प्रांजल अपार्टमेंट, लेन- 15, आर्य समाज मंदिर पथ, पोस्ट- दानापुर, बेली रोड, पटना-801503, मो.: 7991170799

सर ने हमें हमेशा आगे बढ़ना सिखाया

ज़ीनत सिद्दीकी

बिल्कुल सही है यह मेरे बहुत ही अच्छे शिक्षक जिन्होंने मुझे बहुत मोटिवेट किया पेंटिंग के लिए और हमेशा ही सराहा मेरे काम को हौसला बढ़ाया पूरी कोशिश की के मैं हौसला ना हारो मुश्किलों का सामना करते हुए आगे बढ़ना है ये सर ने अपने स्टूडेंट्स को सिखाया और जब भी कोई नया काम किया सबसे पहले सर का कॉल आया और तारीफ करते हुए कहा मैंने एक बहुत बड़े आर्टिस्ट का काम देखा है आज बड़ा जबरदस्त काम कर रहा है वह आर्टिस्ट पूछने पर पता चला की मेरा ही काम देखा है सर ने अपने टीचर से इस तरह से काम की तारीफ सुनना एक स्टूडेंट के लिए बहुत ही बड़ी बात होती है स्टूडेंट का हौसला बहुत बढ़ जाता है। प्रो. राजाराम सर के साथ उनके सारे स्टूडेंट की बहुत सारी दुआएं हैं।

- कला शिक्षक, बाल भवन विद्यालय, भोपाल

वे एक मूल्यवान व्यक्ति थे

-डॉ. जी.सी. बैजल

प्रो. राजाराम से पहली बार मिलने का अवसर लगभग 50 वर्ष पूर्व मिला जब मेरी पत्नी श्रीमती बीना बैजल को तत्कालीन प्रधानाचार्य सुश्री सरोजिनी रोहतगी ने ग्वालियर के केआरजी कॉलेज में ड्राइंग और पेंटिंग विभाग में लेक्चरर के रूप में नियुक्त किया । प्रो. राजाराम उसी विभाग के प्रमुख थे। वे एक अमूल्य व्यक्ति थे और हम धीरे-धीरे पारिवारिक मित्र बन गए। वह अपने विषय में बहुत अच्छे थे और अपने छात्रों और सहयोगियों के बीच लोकप्रिय भी। उनकी ड्राइंग और पेंटिंग उल्लेखनीय थीं। बाद में उन्होंने आगे की पढ़ाई के लिए ग्रीस में कई वर्ष गुजारे और अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। प्रो. राजाराम का निधन कला बिरादरी के लिए एक बड़ी और अपूर्णीय क्षति है।

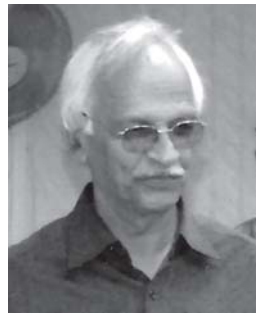

-सेवानिवृत्त निदेशक चिकित्सा शिक्षा, मध्य प्रदेश सरकार, भोपाल

स्नेह घट की छलकन

विनय त्रिपाठी

प्रो. राजाराम; मध्यम कदकाठी में मनोरम व्यक्तित्व! जिनके चेहरे पर सदा स्मिति का वास था। मैंने उन्हें कभी क्रोधित नहीं पाया। कभी-कभी थोड़ा खीज में अवश्य देखा। यह खीझ भारतीयता के विरुद्ध कला जगत की कुटिलताओं की चर्चा के समय देखी जा सकती थी।

बात लगभग पच्चीस वर्ष पहले की है। प्रो. राजाराम से पहलीबार मिलना भोपाल के हृदयस्थल दक्षिण तात्याटोपे नगर स्थित उन के शासकीय आवास पर हुआ था। उन का वैशिष्ट्य पहली बार के इस साक्षात्कार में ही देखने को मिला गया था। अवसर था अखिल भारतीय साहित्य परिषद् की भोपाल इकाई द्वारा आयोजित कविता प्रतियोगिता का। समाचार पत्र में सूचना पढ़ कर मैं अपनी कविता ले कर पहुँच गया था। कविता पर एक दृष्टि राजारामजी ने डाली और कहा दे दो। कविता पुरस्कृत भी हुई।

यह न केवल प्रो. राजाराम जी से अपितु अखिल भारतीय साहित्य परिषद् से भी मेरा पहला परिचय था। यह परिचय निरंतरता पा सका इसके पीछे उस समय का साहित्यिक वातावरण था। मेरी अभिरुचि और पारिवारिक परिवेश साहित्यिक था अत: राजाराम जी से भेंट होती रहती थी। प्रो. भास्कराचार्य त्रिपाठी के यहाँ होने वाले पारिवारिक-साहित्यिक आयोजनों में भी राजाराम जी उपस्थित हुआ करते थे। हिंदी भवन की व्याख्यान मालाओं और गोष्ठियों में उन्हें डॉ. बिनय राजाराम के साथ प्राय: देखा जा सकता था। वे सुधी स्रोता भी थे। प्रो. राजाराम चित्रकार तो उन की सहधर्मिणी डॉ. बिनय राजाराम कवि और सक्रिय साहित्यिक कार्यकर्ता। जब मैंने 'पुरवैया' का सम्पादन-प्रकाशन आरंभ किया तो उस का वितरण भी स्वयं ही करता था। अत: पुरवैया के सभी सदस्यों से व्यक्तिगत सम्पर्क भी हो जाया करता था। राजाराम दम्पति पुरवैया के सदस्य थे इसलिए निरंतर सम्पर्क बना रहा। वे पुरवैया के प्रशंसक थे। अनेक बार अंकों पर चर्चा भी करते थे। उन का लिखा पुरवैया में छपा भी। कला, साहित्य, जीवन, परिवार और समाज के बारे उन की समझ गहरी थी।

जब मुझे अभासाप की मासिक साहित्यिक गोष्ठियों से जोड़ा गया तो स्वाभाविक रूप से राजाराम जी से और निकट परिचय हुआ। उनकी उपस्थिति गोष्ठियों को गरिमा प्रदान करती थी। अभासाप की भोपाल इकाई के सचिव के रूप में कार्य करते हुए निकटता और बढ़ी।

उन का अपना घर 'सप्तपर्णी' बन जाने के बाद उन के कई रूप और निखरकर सामने आए। यहाँ मैंने उन्हें एक ऐसे मनीषी के रूप में पाया जो परिवार और प्रकृति में गहरे डूब कर सतत कला साधना में रत रहता है। मुझे उन की अंदर-बाहर की बगिया आसक्त, अनुरक्त प्रेमी का अनुपम उदाहरण लगी।

एक बड़े से भूखण्ड पर उन का आवास एक जीवंत कलाकृति की तरह ही लगा। वे अंदर-बाहर की प्रत्येक व्यवस्था को जीते हुए लगते। उन के भाँति-भाँति के पौधे, लता-वल्लरियाँ, जल-कुण्ड, जल-कुण्ड में खिले कमल, दीवारों की बाह्य सज्जा...भीतर की साज-सज्जा, दीवार पर सजाए गए सम्मान और प्रशस्तिपत्र...समाचार-पत्रों की कतरनें। उन कतरनों से सार की बात निकाल लेना वे बखूबी जानते थे।

जल्दबाजी उन के स्वभाव में कभी नहीं दिखी। अटल जी की एक आकर्षक पेण्टिंग वर्षों से बना रहे थे।

उन का कृतित्व मैं ध्यान से देखता और आनंदित होता था। जो समझ आता सो उन से कहता भी। वे भी प्रसन्न भी होते और अपने काम के सम्बन्ध में बताते भी। वे एक अच्छे संग्रहकर्ता और शोधार्थी भी थे।

मेरे प्रति उन की सदा उदारता रही। जब सन् 2010 में भोपाल के सुधीजनों के साथ मिल कर मैंने 'महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्' की स्थापना की तो उसका पहचान चिह्न बनवाने की बारी आई। मेरे मन में दो नाम थे- प्रो. लक्ष्मीनारायण भावसार और प्रो. राजाराम। प्रो. भावसार से थोड़ा सा परिचय था। अत: प्रो. राजाराम का नाम आश्वस्तिभाव के साथ पहले स्थान पर था। संस्थानम् के

अध्यक्ष प्रभुदयाल मिश्र को विश्वास नहीं था कि प्रो. राजाराम पहचान चिह्न बनाएँगे। इसलिए उत्तरदायित्व मैंने अपने ऊपर लिया और प्रो. साहब ने मेरे विश्वास का मान रखा। उन्होंने बिना किसी प्रकार की आर्थिक आशा के पहचान चिह्न बनाया। यह उन की उदारता थी। जब भी उन से मिलना होता खूब बातें होतीं। जब-जब उन के नए आवास पर अभासाप की साहित्यिक गोष्ठियाँ भी होतीं तो बड़ा आनंद आता। वे और डॉ. बिनय राजाराम हम सब का भरपूर स्वागत सत्कार करते।

इसके बाद भी वे मुझे अबूझ कहते थे। सन् 2014 से 2019 तक के मेरे ग्रामवास में उन से न तो बात हुई और न ही मिलना हुआ। इस बीच गंगा में काफी पानी बह चुका था।

इधर सन् 2019 से पुन: पूर्वकार्यक्षेत्र में सक्रिय हुआ तो फोन से बात हुई। पता चला कि उनकी हड्डी टूट गई थी। घुटनों की तकलीफ उन्हें पहले से ही सताया करती थी। वे तकलीफ में थे, पर उन्होंने फोन पर हुई लम्बी बातचीत की। तमाम बातें। साहित्यिक भी और व्यक्तिगत भी। यह भी कहने से नहीं चूके कि तुम मुझे समझ नहीं आते हो।..और वे ठीक ही कह रहे थे, सच तो यह है कि कोई किसी को और स्वयं को भी कहाँ समझ पाता है। सारा जीवन बूझबुझउअल में ही निकल जाता है।

...और एक दिन फेसबुक पोस्ट से पता चला कि ठीक हो रहे प्रो. राजाराम नहीं रहे। डॉ. बिनय राजाराम खूब सेवा की। उन के दोनों सुपुत्र भोपाल में नहीं थे।

कोरोना ने बहुत से जिन स्नेहीजनों को छीन लिया उन में प्रो. राजाराम अत्यंत विशिष्ट हैं। वे सदा स्मरणीय रहेंगे। उन के स्नेह घट की छलकन स्मृति वल्लरियों को सदाबहार बनाए रखेगी।

- द्वारा- श्री आशाराम त्रिपाठी, 19, स्वस्तिक, सीटीओ, बैरागढ़, भोपाल, म.प्र., पिन-462 030, संपर्क- 62658 25459

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com मो. 9425678058, 0755-2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला, संस्कृति और विचार के अछूते पहलुओं पर सृजनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबंध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेजे जा सकते है।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें। सदस्यों को पत्रिका साधारण डाक से भेजी जाती है। नहीं मिलने की स्थिति में सदस्यता शुल्क के साथ ` 120/- का प्रतिवर्षानुसार रजिस्टर्ड डाक शुल्क अतिरिक्त भेजा जाना होगा।

-संपादक

पुण्य-संस्मरण

चित्रकला की विश्वदृष्टि और प्रो. राजाराम

लक्ष्मीनारायण पयोधि

29 अप्रैल 2021 को बिनय जी का संदेश मिला, 'नये जीवन की नयी यात्रा पर अकेले चल दिये प्रो.राजाराम...।' यह स्तब्ध कर देने वाली सूचना थी। अभी कुछ दिनों पहले ही तो वीडियो काल पर किस्तों में उनसे कलाओं के वैश्विक परिदृश्य और भारतीय चित्रकला की अभिकल्पना पर लंबी बातचीत होती रही थी। चित्रकला की मूल अवधारणाओं,भारतीय जीवनदृष्टि और चिंतन के परिप्रेक्ष्य उनके विचार के केन्द्र में थे। मुझसे वे जनजातीय कलाओं और ख़ासतौर पर विभिन्न जनजाति समूहों की पारंपरिक चित्रकला पर चर्चा करते थे।

प्रो. राजाराम नयी पीढ़ी के चित्रकारों द्वारा भारतीय चिंतन और कला-परंपरा को समझे बिना किये जाने वाले विकृत घालमेल के प्रति अधिक चिंतित थे। पूर्वज पीढ़ी के चित्रों की नकल के आधार पर स्वयं को स्थापित करने की बढ़ती प्रवृत्ति की भी वे तीखी आलोचना करते थे। वे राजा रवि वर्मा के प्रदेय और अमृता शेरगिल के नवाचार का बारीकी से विश्लेषण करते और पारंपरिक चित्रकला के उत्स को दृष्टिगत रखते हुए आधुनिक कलाबोध के साथ उनके चित्रों की पुनर्व्याख्या की आवश्यकता को रेखांकित करते। राजाराम जी चित्रकला में अमृता शेरगिल के अभूतपूर्व अवदान का स्मरण करते हुए कहते कि 'उन्हें तो बहुत पहले भारतरत्न से सम्मानित किया जाना चाहिये था। परंतु ऐसी विभूतियों की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता।'

प्रो. राजाराम एक प्रयोगधर्मी चित्रकार थे। वे अपने चित्रों में परंपरा और आधुनिक बोध का इतना कलात्मक मिश्रण करते थे कि देखने वाला चमत्कृत हो जाता था। परंपरा और आधुनिक बोध की ऐसी संतुलित और समन्वित अभिव्यक्ति चित्रकला में दुर्लभ है।यह संयोग उनसे इसलिये संभव हो सका है कि वे अध्येता और चिंतक थे। उन्होंने भारतीय मिथकों का,वे चाहे पौराणिक हों अथवा लोकमान्य, उनका गहन अध्ययन किया था। उनका जन्म इंदौर में हुआ था, इसलिये मालवा की लोकभूमि से उन्होंने संस्कार ग्रहण किये। लोक संस्कृति का ताप उनकी रगों में था,जो बाद में रंगों में निखर आया। प्रचीन साहित्य के अध्ययन ने उनके कला-बोध और दृष्टि को नये आयाम दिये। दरअसल लोक परंपराओं के मर्म को समझे बिना शास्त्रीय विधानों को समझ पाना बहुत कठिन है। मिथकों का प्रतीकार्थ लोक ही खोलता है, इसलिये लोक ही वह पाठशाला है, जहाँ गूढ़ ज्ञान की व्यावहारिक और सहज व्याख्या मिल जाती है। राजाराम जी इसी पाठशाला के विद्यार्थी थे। उनके चित्र इस तथ्य के प्रमाण हैं।राजाराम जी के अमूर्तन की भी एक सहज भाषा है, जिसके माध्यम से उनके चित्र दर्शक या भावक से सीधे संवाद करते हैं।

राजा रवि वर्मा के अनुसार चित्रकारी एक द्विआयामी (Two Dimensional) कला है। भारत में इस कला का एक आरंभिक स्रोत 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' माना जाता है। आदि महाकाव्य 'रामायण' में भी चित्रों,चित्रकारों और चित्रशालाओं का उल्लेख हुआ है। इसलिये यह मान लेने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि चित्रकला की परंपरा भारत में प्राचीनकाल से रही है। चीन और मिस्र में भी यह कला पहले से ही बहुत प्रचलित थी। गुफाचित्र इस तथ्य के प्रमाण हैं। ईसा से 1400 वर्ष पूर्व चित्रकला का प्रचलन मिस्र में भी रहा है। माना जाता है कि यहीं से यह विद्या यूनान गयी। भारत के अनेक प्राचीन ग्रंथों में चित्रकला के बारे में बताया गया है। 'विश्वकर्मीय शिल्पशास्त्र' के अनुसार स्थापक,तक्षक और शिल्पी में से शिल्पी को चित्रकार के रूप में योग्य माना गया है। भवभूति के 'उत्तर रामचरित' में प्राकृतिक दृश्यों के चित्रपट देखकर सीताजी के चकित होने का वर्णन है। 1100 वर्ष पूर्व कश्मीर के राजा जयादित्य के राजकवि दामोदर गुप्त के ग्रंथ 'कुट्टनीमत' में चित्रविद्या के 'चित्रसूत्र' नामक ग्रंथ के उल्लेख के बारे में बताया जाता है। कालक्रम में चित्रकला के प्राचीन इतिहास और यहाँ की समृद्ध विरासत को सहेजे गुफाचित्र-शैलाश्रय तो हैं ही। प्रो. राजाराम इस विरासत और परंपरा के गहन अध्येता, चिंतक और अन्वेषक रहे हैं। भारतीय चित्रकला-परंपरा को वैश्विक परिदृश्य के मद्दे-नज़र समग्रता में

समझकर किया गया उनका आलोचना-कर्म इस तथ्य की पुष्टि करता है।

राजाराम जी की चित्रकला को समझने के लिये उनके विभिन्न ग्रंथों में प्रकाशित और राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में प्रस्तुत शोधपत्रों को पढ़ना आवश्यक है। इन शोधपत्रों से इस चाक्षुषकला के कथ्य, बिंब, प्रतीक, रंग और रंजकता की बारीकियों को समझा जा सकता है। वर्ष 1977 से 2009 तक समय-समय पर प्रकाशित ये शोध-आलेख हैं : प्रोसीडिंग्स ऑफ वर्कशॉप इन हिस्ट्री ऑफ आर्ट (1977), XVII इंटरनेशनल बेजेंटाइन कांग्रेस,वाशिंगटन मे प्रस्तुत-संकलित शोध-आलेख (1986),द आर्ट ऑफ अजंता : न्यू पर्स्पेक्टिव्ज (1991),एक्टा XIII सी आई ए सी, क्रोएशिया-इटली का संयुक्त शताब्दी अंक (1994),इंडियन कल्चर विश्वकोष, संस्कृति संसद, कोलकाता (1998), हिस्टॉरिकल डेव्हलपमेंट ऑफ कंटेम्पररी इंडियन आर्ट, केन्द्रीय ललित कला अकादमी का स्वर्ण जयंती ग्रंथ (2009) आदि।

जैसा कि मैंने ऊपर उल्लेख किया है,प्रो. राजाराम एक प्रयोगधर्मी चित्रकार थे। उन्होंने लम्बे समय तक आवाँ गार्द प्रयोगों के माध्यम से चित्रकला में नवाचार करते हुए नयी संभावनाओं का न केवल अन्वेषण किया,बल्कि उन्हें कला के नये आयामों के रूप में स्थापित भी किया। उनके प्रमुख प्रयोग इस प्रकार हैं : -एन-टोन-पेंटिंग (मेनीफेस्टो सहित प्रदर्शनी,1971), राग आधारित चित्रांकन (श्रृंखला,1975-77),आर्ट हेप्पनिंग (नृत्य और चित्रांकन केन्द्रित, 1979), लीविंग आर्ट इंस्टालेशन (संरचनाएँ, 2001-02), आर्ट इंस्टालेशन इन नेचर (2004) और 'रूपध्वनि : आविष्कृत तृतीय रूप' आदि।

कला-आलोचना त्रैमासिकी 'आर्ट फोकस' के संस्थापक संपादक रहे प्रो.राजाराम स्वयं चित्रकला के इतिहासज्ञ, मर्मज्ञ और विद्वान आलोचक रहे हैं। इस पत्रिका के माध्यम से वे न केवल चित्रकला के अंतरंग से साक्षात्कार कराते रहे, बल्कि उसके इतिहास की निरंतर खोज भी करते रहे। शैलाश्रयों से लेकर आनुष्ठानिक चित्रलेखों तक संपूर्ण परंपरा के अन्वेषण में जुटे रहे। वे किसी भी शैली के उत्स तक पहुँचने की कोशिश करते थे। विगत दिनों उन्होंने मुझसे जनजातीय चित्रकला परंपरा पर लंबी चर्चा की थी। उनकी इस टिप्पणी से मुझे चमत्कृत कर दिया कि 'आपको नहीं पता कि आपने 'लमझना' की कविताओं के ज़रिये जनजातियों की कितनी पारंपरिक कलाओं की जड़ों को खोजा है !पृथ्वी की उत्पत्ति से लेकर सृष्टि के पहले मनुष्य तक जनजातीय मान्यताओं को आपने जिस तार्किकता के साथ प्रस्तुत किया है,वास्तव में इतिहास की खोज का यही सही मार्ग है। इसी मार्ग से कलाओं के उत्स तक भी पहुँचा जा सकता है।' उन्होंने जिस निश्छल और निरपेक्ष भाव से 'लमझना' के काव्य की प्रशंसा की,वह मेरे लिये किसी बड़े पुरस्कार से कम नहीं था। इसी से पता चलता है कि वे न सिर्फ़ चित्रकला के,बल्कि साहित्य के भी गहन अध्येता थे। यह सही है कि कलाओं की समझ और तार्किक दृष्टि भी साहित्य के अध्ययन के बिना ठीक से विकसित नहीं हो पाती है। राजाराम जी इस सत्य के प्रमाण थे।

जनवरी 1990 में मासिक बाल पत्रिका 'समझ झरोखा' के संपादन-दायित्व के लिये मैं भोपाल आया। उन शुरुआती दिनों में श्रद्धेय डॉ. धनंजय वर्मा के अलावा मैं जिन साहित्यकारों के संपर्क में आया, उनमें डॉ. बिनय राजाराम प्रमुख रही हैं। उन्हीं के माध्यम से प्रो. राजाराम जी से परिचय हुआ। मैं आरंभ से ही उनकी चित्रकला का प्रशंसक रहा हूँ। उनसे जब भी भेंट हुई,एक अपनापन उनसे हमेशा मिला। आज वे हमारे बीच नहीं हैं,मगर उनका आत्मीय स्नेह हमारी निधि है। उनके विचार हमेशा हमारा मार्गदर्शन करते रहेंगे। मेरी यह दृढ़ मान्यता रही है कि वे एक उच्चकोटि के चित्रकार ही नहीं, भारतीय और वैश्विक कलाओं के उद्गम और विकासक्रम के गहन अध्येता तथा संस्कृतियों के परिप्रेक्ष्य में उनके महत्व के जानकार थे। मैंने हर बार उनसे हुई चर्चा के बाद स्वयं को समृद्ध अनुभव किया है।

उनकी स्मृति को नमन!

- मो.नं. 8319163206

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की खुराक में खर्च क्यों न करें !

कलासमय

प्रबंध संपादक

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com

पुण्य-संस्मरण

सौष्ठव कलाओं का चतुर चितेरा - प्रो. राजाराम

नरेन्द्र दीपक

साहित्य, संगीत एवं सभी कलाओं का संबंध सीधा हदय से होता है। हृदय स्पर्शता इनका मौलिक गुण हैं। सौजन्यता भी एक कलात्मक गुण है, जो संस्कारों से मिलता है, अनुभव की अग्नि शिखा पर तपता/पनपता है,और सामाजिक सराकारों एवं फ़िज़ाओं में महकता है। साहित्य, संगीत एवं अन्य कलाओं का संबंध या यूं कहें कि तमाम तमाम कलाओं का संबंध सीधा सीधा हृदय से होता हैं। हृदय स्पर्शिता इनका मौलिक गुण हैं। इन सभी आस्थाओं को चहेता, एक उत्सवधर्मी मुस्कुरता हुआ सौम्य चेहरा इन चन्दनीय क्षणों में मेरे ज़हन में हैं। साहित्य, संस्कृति, संगीत एवं अनगिनत सौष्ठव कलाओं के चौराहे पर खड़ा मैं, इसी मिज़ाज की जीवन्त मूर्ति को जी रहा हूं। जिसे चित्रकर्मी, आलोचक एवं कलां इतिहासविद आदि विशेषणों के साथ प्रोफ़ेसर राजाराम के नाम से पुकारा जाता रहा हैं।

अर्वाचीन मध्यप्रदेश की एक मात्र पारम्परिक बघेलखण्डी कलम के प्रतिनिधि रीवा के ''दरबारी मुसिव्वर'' अवधेश शरण सिंह बाननी, प्राचीन भारतीय मानदण्डों के पुनर्जागरण की भावना से अभिप्रेरित ग्वालियर के रूद्रहांजी, अकादमिक शिल्प में माहिर पद्मश्री आर.के. फडके (धार) और जगेश्वर सावलकर (सुवासरा), मध्यप्रदेश में हुए वही आधुनिक प्रभाववादी दिग्गज डी.के.जोशी इंदौर में सक्रिय रहें।

इंदौर के ही ललितकला शिक्षण संस्थान के कला महर्षी डी.डी. देवलालीकर एवं एम.एस. रेगे के सानिध्य में कला एम.एफ हुसैन और प्रोफेसर बेन्द्रे विश्वख्याति तक पहुंचे। इसी कडी में इंदौर में ही जन्में कला इतिहासविद भारत भवन में रूपंकर के पूर्व निदेशक, राज्य ललितकला शिक्षा पुनर्गठन से सम्बद्ध,लगभग चालीस वर्षो तक वनस्थली विद्यापीठ (राजस्थान) एवं मध्यप्रदेश के महाविद्यालयों में कला अध्यापन में लम्बी पारी खेलने वाले चुम्बकीय आकर्षण के धनी स्वर्गीय प्रोफेसर राजाराम की छवि एक चमत्कारी आकर्षण की तरह हमारे मन मस्तिष्क में उभर कर आती हैं।

प्रोफेसर राजाराम का जन्म म.प्र. की प्रसिद्व औद्योगिक नगरी इंदौर में हुआ। ये बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। चित्रकर्मी तो वे थे ही, एक कुशल मँजे हुए भाषाविद भी थे। चित्रकला को उनने विविध रूपों में उँकेरा ही नहीं वरन समग्र रूप से जिया भी। वे बहुत कुशल लेखक भी थे, मँजे हुये आलोचक एवं कला इतिहास विद भी। लम्बे समय तक उनने कलाओं संबंधी चर्चित त्रैमासिक पत्रिका ''कला आलोचना'' का कुशल संपादन किया। दीर्घकाल तक यह पत्रिका चर्चा में रही। वे राज्यकला शिक्षा से भी काफी समय तक सम्बद्व रहे। विश्व प्रसिद्व साहित्य और कलाओं के बहुचर्चित केन्द्र ''भारत भवन'' में काफी समय तक वे रूपंकर प्रभाग के निर्देशक के रूप में अपनी सेवायें देते रहे और काफी चर्चा में रहें।

प्रोफेसर राजाराम अध्यनशील स्वभाव के तेजस्वी जी व्यक्तित्व के पुरोधा थे। उनने फाइन आर्ट मेंएम.ए.तो किया ही था, साथ ही छाया चित्रांकन, शिल्पांकन,अपलाइड आर्टस आदि में भी महारथ हासिल की। आपने बोलोना विश्वविद्यालय इटली के माध्यम से बिजान्ति एवं कॉप्टिक कला का भी गहन अध्ययन किया।

आपने राजस्थान के वनस्थली विद्यापीठ में 1971 में नृत्य केन्द्रित आर्ट ''हैप्पनिंग'' एवं संगीत चित्रांकन प्रयोग श्रंखला के माध्यम से एक बड़ी उपलब्धि हासिल की। चित्रांकन के सभी रूपों में राजाराम जी ने उल्लेखनीय प्रयोग किये,किन्तु उनकी सर्वाधिक रूचि पोर्टरेट चित्रांकन में थी, और इसके लिये वे वे विशेष रूप से जाने जाते हैं। इसके अतिरिक्त संगीत चित्रांकन पर भी उनके काम की खूब चर्चा और प्रशंसा हुई।

विविधि रूपों में चित्रांकन के अतिरिक्त ''कला'' के आधार बनाकर लेखन का कार्य भी आपने बड़ी मुस्तैदी से किया। भारत में कलाशिविरों, कलागोष्ठियों तथा भारत के अतिरिक्त अमेरिका, जर्मनी, क्रियोशिया आदि देशों में आयोजित अंर्तराष्ट्रीय आयोजनों में आपके द्वारा प्रस्तुत शोध पत्र भी समय समय पर खूब चर्चा में रहें। भोपाल में म.प्र. उच्च शिक्षा विभाग के सौजन्य से सन

1953 में आयोजित, राष्ट्रीय ललितकला संगोष्ठी ''परम्परा और हम'' में प्रो. राजाराम जी की उल्लेखनीय भूमिका रही। ''पहला अन्तरा ''(त्रैमासिक) पत्रिका के मध्यप्रदेश की संस्कृति, साहित्य, और कलाओं पर केन्द्रित विशेषांक में आपका उल्लेख ''रूपांकन कलाओं का तिराहा–अर्वाचिन मध्यप्रदेश'' खूब चर्चा में रहा।

प्रोफेसर राजाराम बौद्धिक रूप से भी अत्यंत सम्पन्न व्यक्ति थे और अनेक भाषाओं से उनका सरोकार था। हिन्दी और अंग्रेज़ी के अतिरिक्त ग्रीस में रहकर, एरिस्टोटल विश्वविद्यालय में आपने शोधकार्य के अतिरिक्त ग्रीक,फ्रैन्च एवं जर्मन भाषाओं का भी गहरा अध्ययन किया।

एक उत्कृष्ट कलाकार के साथ ही वे हँसमुख व्यक्तित्व के धनी एवं एक ज़िन्दादिल इंसान थे। अंगेजी में कहावत है कि ''बिहाइंड ऐवरी सक्सेसफुल मैन,देयर इस ऐ वुमैन'' यह उक्ति यहाँ खूब चरितार्थ होती है, और उनके इस व्यक्तित्व निर्माण में उनकी साहित्कार संगिनी, आदरणीया बिनय जी की महती भूमिका रही। बादल न बरसते तो धरती पर हरियाली की धारा कैसे हिलोरें लेतीं। कुछ समय कि लिये जब मैं भारत भवन का वागर्थ प्रभाग का निदेशक एवं मुख्य प्रशासनिक अधिकारी था, बिनय जी न्यास की सदस्या थीं, और उसी समय यह दम्पत्ति मेरी सोच में शामिल हुई।

प्रोफ़ेसर राजाराम,सचमुच ''राजा–राम''थें। उनकी स्मृति में भोपाल में नव निर्मित यह कला मंदिर, ''राजाराम रूप ध्वनि दीर्घा'' शहर के कलात्मक माहौल को और अधिक सुगंधित करेगी, इस मनोकामना के साथ प्रोफेसर राजाराम जी की स्मृति को प्रमाण करता हूँ।

–ई–1/159,अरेरा कॉलोनी, भोपाल–462016 (म.प्र.)

पुण्य-संस्मरण

जाने वाले वापस नहीं आते, लेकिन उनकी स्मृति सदा मन में रहती है

डॉ. शकुंतला जैन एवं सी.ए. के. टी. जैन

मुझे याद है कई साल पहले जब राजाराम साहब से पहली बार मिले थे तब वह मुलाकात सिर्फ एक सहकर्मी के पति से हुई थी। तब यह नहीं मालूम था कि उनके आत्मीय स्वभाव के कारण जल्द ही हम सब के घनिष्ठ पारिवारिक संबंध बन जाएंगे। साथ काम करते हुए हमारा– बिनय, सुधा , मिसेस सक्सेना व मेरा एक ग्रुप सा बन गया, जिसमें सपरिवार आना– जाना व साथ उठना– बैठना होने लगा। समय के साथ हम सबकी कॉलेज से आगे पारिवारिक मित्रता गहरी होती गई।

राजाराम साहब सिर्फ एक अच्छे कलाकार ही नहीं थे, बल्कि उससे भी अच्छे इंसान थे। सदा मुस्कुराते और पॉजिटिविटी से भरे रहते। धीरे–धीरे अपने–अपने जीवन की व्यस्तता के चलते उनसे अक्सर मिलना नहीं हो पाता था लेकिन जब भी वे मिलते, लगता ही नहीं था कि हम इतने समय के अंतर पर मिल रहे हैं। शांत स्वभाव, मीठी बोली, चेहरे पर मीठी सी मुस्कुराहट व जीवन का पूर्ण आनंद लेते हुए – उनका नाम लेते ही यह विशेषण स्वत: जुड़ जाते हैं।

मुझे याद है वे हमेशा मुझसे कहते थे, ''मैडम, आप जैन हैं लेकिन हम भी जैन से कम नहीं है, क्योंकि हमने भी जैनियों की ही जीवन शैली अपनाई है – सूर्यास्त पूर्व भोजन व सरल–सादा जीवन।''

राजाराम साहब के हाथों में भगवान ने ऐसी कला दी थी कि जब भी वे पेंट ब्रश उठाते तो कोई पेंटिंग नहीं, बल्कि ऐसे सजीव चित्र बनाते कि लगता मानो अभी बोल उठेंगे। अपने अंत:करण के भाव अपने चित्रों के माध्यम से व्यक्त करते थे।

आज वे शारीरिक रूप से चाहे हमारे बीच नहीं है, लेकिन अपने चित्रों के जरिए उन्होंने सबके दिल में ऐसा घर बना लिया है कि वे सदैव अमर रहेंगे।

कला गुरु राजाराम- एक टुकड़ा सोच से आगे...

डॉ. अंजलि पांडेय

प्रोफ़ेसर राजा राम के जीवन में लगन, परिश्रम, कर्तव्य परायणता, पर्यावरण तथा राष्ट्र के प्रति प्रेम उनकी शिक्षण शैली में भी दृष्टिगोचर होता था। वर्ष 1981- 1982 में ग्वालियर के शासकीय कन्या महाविद्यालय मुरार में मैंने शिक्षण हेतु प्रवेश लिया था, हालांकि छात्रा के रूप में उनके अध्यापन शैली को अनुभव करने का यह अवसर अल्प ही था। सर, यूनान से अपनी 4 वर्षीय शोध यात्रा पूर्ण कर ग्वालियर आए थे एवं आते ही उनकी प्रतिनियुक्ति नवनिर्मित भारत भवन में रुपंकर निदेशक के रूप में हो गई थी। तब मैं बीए प्रथम वर्ष की छात्रा थी। एक दिन मैंने बड़े ही उत्साह से अपना एक, एकरंगी चित्र संयोजन 'पनघट' उन्हें दिखाया। उन्होंने मुझसे पूछा ''पानी भरती हुई ये स्त्रियां इतने गहने पहने हुए हैं... क्यों ? उनके इस प्रश्न का उत्तर मैं उस समय नहीं दे सकी। चित्रांकन विषय अनुरूप ही होना चाहिए। यह समझाने की उनकी अनूठी शिक्षण शैली का मर्म मुझे तब समझ में आया जब मैंने स्वयं अध्यापन कार्य प्रारंभ किया। यह मेरा सौभाग्य ही था उनके गुरु रूप को मैंने एक सहकर्मी होकर प्राप्त किया। सर के सानिध्य में मुझे उनकी शिक्षण शैली व अनुभवों का लाभ प्राप्त हो सका। उनका स्नेहासिक्त वाक्य ''अंजलि अभी छोटी है'' मुझे सदैव अपने बचपन का स्मरण करा देता था।

मेरी अध्यापन कार्यशैली को उन्होंने साधिकार कई बार परखा तथा संतुष्ट होने पर प्रशंसा भी की। लंच ब्रेक के दौरान हमारी कला चर्चाएं होती जिसमें वे कला संबंधी नवीन प्रयोगों तथा कला संस्मरण पर विस्तार से चर्चा करते थे। उनके संस्मरण में उनके कला गुरु प्रोफेसर एन. एस. बेंद्रे, प्रख्यात दृश्य चित्रकार डी. जे. जोशी, शिल्पकार श्री रूद्र हांजी, कला गुरु रेगे, ख्याति प्राप्त चित्रकार व्यौहार मनोहर सिन्हा एवं अन्य चित्रकारों के कला प्रसंग तथा उनके सहपाठियों व सहकर्मियों के साथ व्यतीत पल के किस्से होते।

ऐसी ही विभागीय कला चर्चा के दौरान उन्होंने एक बार अपने आवाँ-गार्द प्रयोगों की श्रृंखला के एक प्रयोग नृत्य तथा चित्र के अंतर संबंधों पर अपना एक लेख मुझे पढ़ने को दिया था उन दिनों मैं स्नातकोत्तर कक्षाओं के पाठ्यक्रम के कला एवं अंतर्संबंध विषय पर अपनी कक्षाओं में व्याख्यान दे रही थी उस आलेख की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं ।

विश्व की हर एक विविधता एक तात्विक सूत्र में बंधी है कलाओं का तात्विक ऐक्य कोई नई बात नहीं है परंतु इस ऐक्य का प्रायोगिक प्रदर्शन अपने आप में मौलिक विचार अवश्य है प्रस्तुत

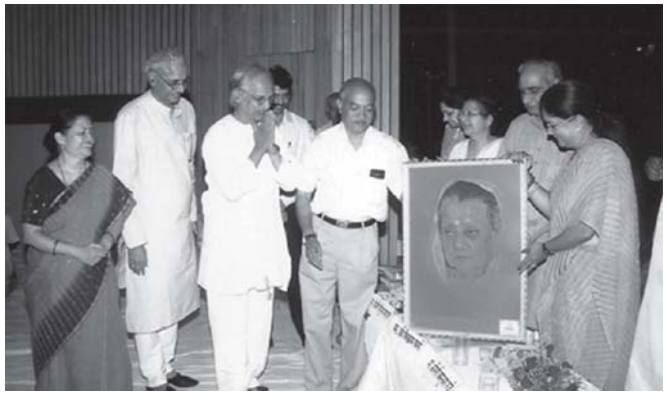

प्रयोग में चित्रकला एवं नृत्य कला में व्याप्त तात्विक समानता स्पष्ट होती है। प्राचीन भारतीय कलाविदों ने भावाभिव्यक्ति के लिए चित्रकला एवं नृत्य कला में समान आंशिक मुद्राओं एवं भंगिमाओं का कारण पारस्परिक संबंध बताया था लेकिन इस प्रयोग द्वारा दोनों ही कलाओं में व्याप्त अत्यंत ही सूक्ष्म तत्व की ओर संकेत किया जा सकता है। वनस्थली विश्वविद्यालय में अपने अध्यापन काल में उन्होंने विश्वविद्यालय के प्रांगण में कलाओं के अंतर संबंध में नृत्य तथा चित्र का अंतर संबंध स्थापित करने हेतु, मणिपुर के प्रख्यात कलाकार नव चंद्र सिंह व उनके सहयोगियों द्वारा रंग- युक्त पद थाप से 10 फुट के व्यास एवं 20 फुट के अर्ध व्यास में पद छापों के अनूठे संयोजन से प्रयोग की सफल प्रस्तुति प्रदर्शित की।

वैसे तो सर कला समीक्षक होने के नाते सभी विषयों में पकड़ रखते थे किंतु व्यक्ति चित्र के प्रति उनका विशेष रुझान था। व्यक्ति चित्रों में भी वे नित नए नवाचार करते। मुझे याद है एक बार

शिक्षक दिवस के अवसर पर कार्यक्रम में उन्होंने डॉ राधाकृष्णन का त्वरित चित्र, ब्राउन पेपर पर चॉक से चित्रित कर दिया था। उनके व्यक्ति चित्र भाव प्रवण होते थे। उन्होंने अपने कई व्यक्ति चित्रों में रंगीन शीट पर ऑयल पेस्टल से चित्रण किया है। ऐसा ही एक चित्र उन्होंने राजमाता विजया राजे सिंधिया का चित्रित किया था जिसमें शीट में ''लाइट और डार्क शेड्स'' देकर चित्र को उभारा दिया था तथा शेष भाग और पृष्ठभूमि अपने मूल रूप- रंग में ही छोड़ दिए थे। कुछ ही स्ट्रोक्स के द्वारा श्रेष्ठ प्रभाव उत्पन्न कर देना उनकी शैली गत विशेषता थी।

वे छात्राओं की चित्रण शैली तथा विचारों के निजत्व को सदैव संरक्षित रखते हुए और अधिक प्रयास करने हेतु छात्राओं को प्रोत्साहित भी करते। वे कहते कि हर एक कलाकार की अपनी एक विचार शैली होती है और उसे उसी के साथ आगे बढ़ना चाहिए। उनका मानना था कि छात्राओं को मार्गदर्शन तो अवश्य दिया जाए पर इस प्रकार कि उनकी अपनी उड़ान स्वतंत्र हो तभी वे उन्मुक्त भावों से चित्रांकन कर सकेंगी। चित्रांकन में वे मुक्त भावों पर विशेष ध्यान देते थे। वे हंसकर कहते थे कि जब भाव स्वतंत्र होंगे तभी चित्रांकन बंधन मुक्त होगा।

समय की पाबंदी, कर्तव्य परायणता, नवाचार तथा कार्य में लगन व पूर्णत्व उनकी अध्यापन शैली के महत्वपूर्ण केंद्रबिंदु थे। कार्य के प्रति लापरवाही व कोताही उन्हें विचलित कर देती थी। उन्होंने अपनी छात्राओं को कभी उंगली पकड़कर चलना नहीं सिखाया बल्कि ''महत्वपूर्ण टिप्स'' देकर उनका पथ प्रदर्शन करते। उन्होंने छात्राओं के अंदर के आत्मविश्वास को बढ़ाने का सदैव ही प्रयास किया। वे योग्य व आर्थिक रूप से कमजोर छात्राओं को आर्थिक मदद करने में भी कभी पीछे नहीं रहते।

मुझे याद है NAAC Visit की तैयारी हेतु ''डिपार्टमेंटल प्रोफाइल'' बनाते समय मैंने उनका बायोडाटा पढ़ा। देश के साथ

साथ उन्होंने अंतरराष्ट्रीय पटल पर भी अपने विचार प्रस्तुत किए थे। अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियो में उनके द्वारा शोध पत्र वाचन की सूची को देखकर मैंने स्वत: उनसे पूछा ''सर क्या मैं भी कभी आपके जैसे किसी अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में शोध पत्र प्रस्तुत कर पाऊंगी ?'' उनका जवाब था, क्यों नहीं, बस जब भी आप पूरी लगन और मेहनत से काम करेंगीं यह अवश्य संभव हो पाएगा। उनका ही प्रोत्साहन ही था कि वर्ष 2004 के जनवरी-फरवरी माह में थाईलैंड, बेंकाक की चुलालॉन्गकार्न यूनिवर्सिटी में मुझे अपना प्रथम अंतरराष्ट्रीय शोध पत्र प्रस्तुत करने का अवसर मिल सका।

उनका शिक्षण कार्य कभी उन्हें कालखंड की सीमाओं में नहीं बांध सका, जब भी वे पढ़ाते या डेमोंसट्रेशन देते तो इतने मनोयोग से कि उन्हें समय का भी ध्यान ना रहता। अध्यापन ही नहीं, वे जो भी कार्य करते थे पूरी लगन और मनोयोग से ही करते थे। नवाचार करने का कोई भी अवसर वे नहीं खोते थे। हमारा महाविद्यालय उन दिनों छोटे तालाब के किनारे स्थित था। मुख्य बिल्डिंग की दीवारों से पानी की लहरें अठखेलियां करती रहती थी। आसपास का वातावरण बड़ा ही सुरम्य था व पहाड़ी चित्रकला के पृष्ठभूमि सा प्रभाव उत्पन्न करता था। महाविद्यालय का सभागार ऊपरी मंजिल पर हमारे विभाग के निकट ही स्थित था जहां निरंतर

कार्यक्रम हुआ करते थे। महाविद्यालय के अकादमिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में अतिथिगण के स्वागत में दिए जाने वाले पुष्पगुच्छ के स्थान पर पौधे देने का चलन हमारे महाविद्यालय में सर्वप्रथम उनके ही प्रयासों से संभव हो सका था। उनका यह प्रयास आज परंपरा रूप में प्रचलित हो गया है। कार्यक्रम के दौरान जलपान व्यवस्था स्वाभाविक रूप से हुआ करती। कार्यक्रम में भागीदारी लेने वाले कुछ आगंतुक महानुभाव स्वभाववश कचरा तालाब में डाल देते थे जो उनके पर्यावरण प्रेम को कतई स्वीकार्य नहीं था। बस, उन्होंने तत्काल ही कुछ टीन के कनस्तर बुलवाएं व रंग रोगन करके 'पर्यावरणीय स्लोगन' के साथ उन्हें सभागार के बरामदे के स्तंभों पर स्थापित कर दिया उनका यह 'बेस्ट आउट ऑफ वेस्ट' वाला प्रयोग अब आगंतुकों का ध्यान आकर्षण केंद्र बन गया था। कुछ इसी भांति, हमारे महाविद्यालय के प्रमुख द्वार के पास ही दो पेड़ थे जो लगभग सूख चुके थे। 'नैक विजिट' के दौरान उन्होंने उन वृक्षों की सूखी डालियों पर बगुलों तथा तोतों की ऐसी टोली बनाई कि पूरा वृक्ष जीवंत हो गया। यह उनके आवाँ- गार्द प्रयोगों की श्रृंखला के कुछ चिर स्मरणीय उदाहरण हैं।

उनके नवाचार प्रयोग अनवरत चलते रहते चाहे वह पाठ्यक्रम हो या प्रश्नपत्र में पूछे जाने वाले प्रश्नों का पैटर्न। वे जो भी कार्य करते पूरे उत्साह, अथक परिश्रम और लगन से करते थे। मितव्ययिता उनकी जीवनशैली का अभिन्न अंग थी। वे पुराने कागजों को भी संभाल कर रखते तथा उन पर छोटे-छोटे नोट्स या याददाश्त हेतु कुछ 'पॉइंट्स' लिखकर रख लेते और कहते हर कागज एक पेड़ है, हमें इसे बर्बाद होने से बचाना चाहिए। उनकी एक विशेषता सदैव याद रहती है वह जिस स्कूटर से कॉलेज आते थे, उसे सामान्य जन की तरह ना खड़ा करके आते समय ही स्कूटर को उस दिशा में लगाते जहां उन्हें जाना होता था यह विशेषता मैंने केवल उन्हें ही देखी थी।

कारगिल युद्ध के दौरान शहीद हुए भारतीय जवानों तथा 9/11 के ट्विन- टावर की ध्वस्त होने वाली घटना, दोनों ने ही उनके कलाकार मन को झकझोर कर रख दिया था। उन्होंने समाचार पत्रों को जोड़ कर 4 म 6 फीट की एक बड़ी शीट बनाई जिस पर उन्होंने लाशों से पटे पड़े ट्विन- टावर चित्रित किए तथा उसे एक इंस्टॉलेशन का रूप प्रदान करके दिवंगतों को कला रूप में श्रद्धा सुमन अर्पित किए।

वे इंडियन आर्ट हिस्ट्री कांग्रेस गुवाहाटी के आजीवन सदस्य तथा ललित कला अकादमी नई दिल्ली के कला शिक्षा संबंधी

राष्ट्रीय करिकुलम समिति के सदस्य भी रहे। इन दोनों संस्थाओं में किए जा रहे सकारात्मक विकास कार्यों की वे चर्चा करते रहते थे । कला इतिहास पर उनकी पकड़ मजबूत थी फिर चाहे वह पाश्चात्य हो या पौर्वात्य, प्राचीन हो या समकालीन। प्राचीन पाश्चात्य कला पर भारतीय बौद्ध कालीन प्रभाव विषय पर उन्होंने गहन शोध किया तथा इस विषय पर उनके कई शोध पत्र व आलेख भी प्रकाशित हुए हैं।

उनका कला संबंधी विभिन्न विधाओं का विशेष ज्ञान था समय-समय पर होने वाली कला चर्चा से ज्ञात होता था कि वे ग्रीक, फ्रेंच, जर्मन आदि भाषाओं का भी ज्ञान रखते थे। उन्होंने 15 से भी अधिक एकल तथा समूह प्रदर्शनों में भागीदारी की तथा 1971 में नई दिल्ली मैं उनके एन-टोन मेनिफेस्टो का प्रकाशन हुआ एवं तत संबंधी प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। आज उनकी कलाकृतियां देश-विदेश के कई संग्रहों में संग्रहित हैं । उन्हें अनेक विशिष्ट पुरस्कार एवं सम्मान से सम्मानित भी किया गया।।

वे जब भी कला समीक्षा करते निष्पक्ष भाव से करते उनकी समालोचना, टुकड़े- टुकड़े ना होकर समग्र भाव से होती और विचारधारा, सदैव ही एक टुकड़ा सोच से आगे अत्यंत ही व्यापक और संपूर्ण, फिर चाहे वह समीक्षा देश की हो या व्यक्तित्व की, कलाकृति की हो या स्वाद की। मुझे याद है भोजनावकाश में भी वे, भोजन में रंगों और रूपा कारों के तथा स्वाद के सुंदर मेल को तलाश लेते थे और बड़े चाव से उस पर चर्चा भी करते थे।

श्री राजारामजी पर कुछ लिखना अत्यंत ही कठिन है, वह तो मुक्त पवन और मुक्त झरने की भांति थे। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को शब्दों में बांधना अत्यंत कठिन है। वे एक आदर्श शिक्षक, श्रेष्ठ चित्रकमी, निष्पक्ष कला समीक्षक, प्रख्यात कला इतिहासकार, एवं सच्चे देश प्रेमी थे। ऐसे समग्र गुणी व्यक्तित्व को मैं सादर नमन एवं श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूं।

- लेखिका विभागाध्यक्ष चित्रकला विभाग, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय भोपाल

■

प्रो. राजाराम स्मरण

डॉ. सुषमा श्रीवास्तव

राजाराम सर से मेरी पहली मुलाक़ात 1987 में मेरी एकल चित्र प्रदर्शनी के दौरान हुई थी । उन्होंने मेरी प्रदर्शनी पर अपनी टिप्पणी भी एक पत्रिका में विस्तार से लिखी थी। मैंने उनके बारे में बहुत सकारात्मक बातें सुन रखीं थीं की वे एक बहुत योग्य शिक्षक, अच्छे कलाकार, कला आलोचक एवं लेखक हैं । मेरे पति द्वारा उनकी चित्रकला के प्रति संजीदगी और उनकी विद्वता की चर्चा अक्सर घर पर हुआ करती थी क्योंकि वो दोनो एक ही महाविद्यालय में कार्यरत थे और एक दूसरे से परिचित भी थे । मैं भी उस समय अपने शोध कार्य हेतु एक ऐसे गाईड की तलाश में थी जो मुझे सही मार्गदर्शन दे सकें। मैंने सोचा क्यों ना मैं एक बार सर से मिलकर आग्रह करूँ यदि वे मेरे शोध विषय के गाइड बन जाएँ। मैं सर से मिली और अपनी मंशा से उन्हें अवगत करवाया। उन्होंने भी सहर्ष मार्गदर्शन हेतु अपनी स्वीकृति दे दी। इसके बाद मेरे संपर्क का सिलसिला प्रारम्भ हुआ और सर की कार्यप्रणाली , सूक्ष्म अवलोकन वाली पैनी नज़र, काम की परिपक्वता को लेकर अत्यंत संवेदनशीलता आदि को जानने का मौक़ा मिला। वे किसी भी संदर्भ को छोटा नहीं मानते थे। विषय के चयन से लेकर अंतिम निष्कर्ष तक को इतनी बारीकी से मूल्यांकित कर संशोधित करने को कहते थे जिस पर कभी कभी हमारा ध्यान ही नहीं जाता था ।उसी समय उनके ज्ञान से निकटता से परिचित होने का मौक़ा मिला। वे भारतीय कला के साथ साथ अंतर्राष्ट्रिय कला समाचारों, गतिविधियों से हमेशा सरोकार रखते थे और उनके बारे में विस्तृत चर्चायें किया करते थे। उनके द्वारा निकाली गयी पत्रिका 'फ़ोकस' में वो समकालीन कलागतिविधियों का विस्तृत विवेचन दिया करते थे। वो छोटा सा न्यूज़लैटर अपने आप में समस्त कलात्मक गतिविधियों का ख़ज़ाना होता था जो संग्रहणीय हुआ करता था। वे निरंतर अपने कला संसार में खोये रहते थे... कोई ना कोई नया सृजन, नया लेखन, नयी गतिविधि उनको हमेशा व्यस्त रखती थी। यही उपक्रम उनकी अंतिम साँसों तक चलता रहा। वे कहा करते थे कि मेरे पास अभी करने को इतना काम है कि यदि यमराज भी आयेगा तो उसे भी लौटाना पड़ेगा। बीच बीच में कभी अस्वस्थ हुआ करते थे और उनसे पूछो सर तबियत कैसी है तो हमेशा उनका जवाब होता था की तबियत को क्या हुआ वो तो चलती रहती है और फिर कभी अमृता शेरगिल , कभी डी. जे. जोशी और अन्यान्य कलात्मक विषयों की चर्चा करने लगते थे। कला से इतना लगाव बिरले ही लोगों में देखने को मिलता है।

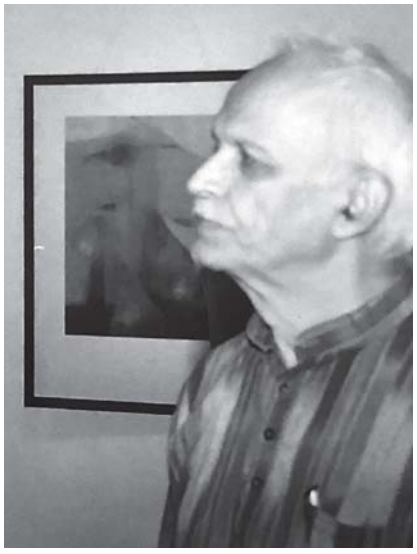

सर और बिनय जी (श्रीमती राजाराम)के साथ हमारा व्यवहार बहुत आत्मिक एवं पारिवारिक रहा । उनका बेटा कौस्तुभ मेरा विद्यार्थी था और मेरे बेटे का हमउम्र भी। पी.एच. डी के कार्यकाल में मेरे परिवार में कुछ पारेशानियों का समय रहा जब मुझे

काम को आगे बढ़ाने में मुश्किल हो रही थी । सर ने उसका भी उपयुक्त समाधान सुझाकर मेरी मदद की ।मैं अपने को सौभाग्यशाली मानती हूँ की उनके निर्देशन में मैं अपना शोध कार्य समाप्त कर पायी । सौभाग्य यह भी रहा की मेरे शोध कार्य को देखकर तत्कालीन मैनेजिंग डाय रेक्टेर हस्तशिल्प विकास निगम म. प्र. ने मुझे बाग़ और भैरोगढ़ की वस्त्र छपाई कला के दस्तावेजीकरण का कार्य सौंपा। इसका सुझाव भी सर द्वारा ही दिया गया था। इस शोध की सराहना मुंबई के कलर काँग्रेस द्वारा भी की गयी। उनके सहयोग एवं मार्गदर्शन के लिए मैं आजीवन उनकी ऋणी रहूँगी।

सर का प्रकृति, पशु पक्षियों एवं जानवरों से भी विशेष लगाव था। इसका साक्षात उदाहरण उनका घर है जहां सैकड़ों तरह के फल, फूल, औषधीय पौधे देखने को मिल जाएँगे। उनके घर जाते ही कुत्ता आपका स्वागत करते हुए मिलेगा। एक नहीं दो नहीं तीन तीन कुत्ते थे सर के घर में जिन्हें वे बड़े प्यार दुलार से रखते थे परिवार के सदस्य की तरह।

ऐसे अद्भुत कला संसार के धनी राजाराम सर आज हमलोगों के बीच मानवी रूप में नहीं हैं परंतु उनके विडीओ, उनकी शिक्षाएँ, उनकी कला सम्बन्धी चर्चायें आज भी ऐसा आभास करातीं हैं जैसे कि वे कह रहें हैं अमृता शेरगिल भारतवर्ष की पिकासो हैं उन्हें

भारत रत्न मिलना चाहिये... आदि आदि ।ईश्वर उनकी कलाकार आत्मा को सद्गति प्रदान करे।

शत् शत् नमन

– सेवानिवृत्त उप प्रधानाध्यापिका, प्रायोगिक विद्यालय, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान (एन.सी.ई.आर.टी) भोपाल, म.प्र.

पारखी व्यक्तित्व

राजेन्द्र उपाध्याय

आदरणीय प्रोफेसर राजाराम जी शर्मा का नाम चित्रकला एवं साहित्यिक क्षेत्र में जाना माना नाम है । इन क्षेत्रों से जुड़ा ऐसा कोई नही होगा जो इन्हें ना जानता हो। उनसे पिछले 3 वर्षों से मैं जुड़ा था, लेकिन यह जुड़ाव ऐसा लगता है कि 3 नहीं 30 बरस का हो। उनका सरल व्यक्तित्व मुझे सदैव प्रेरित करता रहेगा। मुझे उनमें अपने पिता की छवि नजर आती थी। उनके साथ बैठने में कब दो–तीन घंटे निकल जाते थे मालूम ही नहीं चलता था । मेरा उनके साथ भावनात्मक जुड़ाव स्थापित हो गया था। उनकी पारखी नजर के बारे में मुझे याद है, जब बगल के प्लाट में उनके मकान का कार्य चल रहा था तो एक छोटी सी गलती जोकि आर्किटेक्ट, मिस्त्री नहीं पकड़ पाए वो उन्होंने दूर से देख कर ही बता दिया कि यह दीवार इधर से इतनी कम है, उधर से इतनी ज्यादा है। जब हम लोगों ने नापा तो उतना ही अंतर निकला, जितना उन्होंने बताया था। उनसे बातचीत के दौरान इंदौर के नमकीन से लेकर राजनीतिक गलियारा हो या फिर सामाजिक क्षेत्र या आदिवासी जनजाति के रहन–सहन से संबंधित या भारत भवन पर चर्चा, सभी विषयों पर चर्चा करना रुचिकर लगता था। सभी विषयों पर विस्तार से चटखारे लेकर बात करते थे। उनका यूं अचानक चले जाना मुझे स्तब्ध कर गया । आप जहाँ रहे, वहां से अपना आशीर्वाद हम सब पर बरसाते रहे, यही ईश्वर से प्रार्थना है।

– फ्लैट न. 306, ब्लॉक 8, सौम्या एवरग्रीन,
हिनोतिया आलम, भोपाल

पुण्य-संस्मरण

(22 फरवरी 1943-29 अप्रैल 2021)

राजाराम्स रूम

अखिलेश निगम

उम्र के इस पड़ाव पर राजाराम जी ने फेसबुक के मैसेंजर पर वर्ष 2020 में 'राजाराम्स रूम' नामक एक ग्रुप बना लिया था, जिसके माध्यम से वे कला के विभिन्न पक्षों पर चर्चा करते रहते थे। इस ग्रुप के बनने के पीछे शायद यह वजह अधिक बलवती थी कि अपनी बीमारी के चलते वे बिस्तर पर ही रहते थे। अपनी इस सीमा से बंधना उन्हें स्वीकार नहीं था। उनका अध्यापन पक्ष (साथ ही एक कला समीक्षक का रूप) उन्हें मौन नहीं रहने दे रहा था। यह ग्रुप, जिसमें उन्होंने कोई 47 सदस्य जोड़े थे, यथा – सर्वश्री / सुश्री आशीष श्रीवास्तव, अभिलाष खाण्डेकर, अभिमन्यु सारंगी, अनिल गायकवाड़, अपर्णा अनिल, अर्चना यादव, अवधेश मिश्रा, रूप नारायण बाथम, भँवरलाल श्रीवास, देवेन्द्र दीपक, अनुपम सिन्हा, फैसल मतीन, गायत्री गोस्वामी, घौसिया ख़ान सबीन, केदारलाल सारंगी, किरन गुप्ता, लक्ष्मी श्रीवास्तव, लक्ष्मीनारायण पयोधि, महेंद्र सिंह बावनी, मीता जौहर दत्त, नीता सोनी, नीता विश्वकर्मा, ओम प्रकाश खरे, पूनम सक्सेना, प्रकाश भाटी, राकेश श्रीमाल, रमेश आनंद, रमेश खेर, रेनू मेहता कोचर, ऋचा काम्बोज, रोहित सारंगी, रुपेन्द्र कुमार शर्मा, सच्चिदानंद जोशी, संगीता पाठक, सत्येंद्र बावनी, सीमा शर्मा, शब्बीर हसन काज़ी, शैली शर्मा जैन, शोभा घारे, शुभदा ठाकुर, सुहास निंबालकर, सूर्यकांत नागर, सुषमा श्रीवास्तव, सुषमा वर्मा, शरद शबल, ज़ीनत सिद्दीकी एवं इन पंक्तियों के लेखक को भी उन्होंने नामित किया था। उन्होंने जिस अभिलाषा से इस ग्रुप का गठन किया था उनकी बैसी इच्छा पूर्ण नहीं हो सकी। कुछेक सदस्यों को छोड़कर ज्यादातर निष्क्रिय ही रहते थे जबकि वे प्रतिदिन चार-पांच बार प्रत्येक सदस्य को चर्चा के लिए कॉल करते थे। जब इस ग्रुप से अपेक्षित उत्तर उन्हें नहीं मिलता तो वे मुझे वाट्सएप पर सीधे कॉल करके चर्चा करते। यदि किसी दिन उनकी कॉल किसी कारणवश मैं न उठा पाता ऐसी हालत में वे तब तक कॉल करते रहते जब तक मैं कॉल न उठा लेता। उनकी यह प्रक्रिया इस बात की द्योतक थी कि कला-चर्चा करने की उनमें कितनी भूख थी; मुझसे वे विशेष तौर पर 'अमृता शेरगिल' के कृतित्व और व्यक्तित्व पर चर्चा करते थे। हालांकि यह ग्रुप अभी भी कायम है जिस पर शोभा, लक्ष्मी, और अपर्णा के 'सुप्रभात' संदेश यदा-कदा आ जाती हैं।

राजाराम जी के व्यक्तित्व के अनेक पक्ष थे, उनमें से एक उनका कवि रूप भी था और इसकी परीणित कई कविताओं के रूप में देखने को मिलती है पर उनके इस पक्ष से चंद लोग ही परिचित हैं। कविता में भी वे एक चिंतनशील कवि दिखाई देते हैं। इसे आप उनकी कवयित्री धर्मपत्नी डॉ. बिनय की संगत का प्रभाव भी मान

सकते हैं। इस संदर्भ में उनकी एक कविता – 'एक सैनिक का सवाल' का उल्लेख अप्रसांगिक नहीं होगा, जो 'इंगित' नामक पत्रिका में उस समय में प्रकाशित हुई थी जब वे भोपाल के टी.टी. नगर में रहते थे –

एक सैनिक मेरी ओर देख रहा है।
मुहं से वह कुछ नहीं बोलता।
लेकिन उसके मुख से कुछ स्फुट है।
वह मुझसे कई सवाल करता है।
वह मुझसे सवाल करता है कि मैं,
उसकी जिंदगी और मौत का रहस्य बताऊँ/
वह सवाल करता है कि मैं,

उसकी कुरबानी का अर्थ बताऊँ।
मेरे पास जबाब में कोई शब्द नहीं।
जबाब तो फक्त यही हो सकता है,
कि मैं भी उसकी मौत मर जाऊँ।

राजाराम जी के कृतित्व एवं व्यक्तित्व से मैं परिचित तो बहुत पहले से था परंतु उनसे मेरी पहली मुलाकात वर्ष 1990 में हुई। उस वर्ष ललित कला अकादेमी, नई दिल्ली के लिए मैंने एक अखिल भारतीय व्याख्यानमाला एवं कार्यशाला का आयोजन लखनऊ में मार्च 31 एवं अप्रैल 01, 1990 में किया था। 'कला की परख एवं समीक्षा' शीर्षक से इसका आयोजन अलीगंज स्थित आंचलिक विज्ञान केन्द्र-प्रेक्षागृह में संपन्न हुआ था। यह अपने आप में कला समीक्षा का एक महत्वपूर्ण आयोजन था जिसमें राजाराम जी के अलावा सर्वश्री डॉ. जगदीश गुप्त, प्रो. पी.एन. चोयल, डॉ. सुमहेंद्र, प्रयाग शुक्ल, रूप नारायण बाथम, अवधेश अमन, विनोद भारद्वाज एवं ललित गुप्ता सम्मिलित हुए थे। दो दिन चलने वाला यह आयोजन मेरे लिए इसलिए भी महत्वपूर्ण बना कि इसके माध्यम से मेरी और राजाराम जी की मित्रता ने एक प्रगाढ़ रूप पा लिया।

यह संयोग ही था कि भारत भवन के निमंत्रण पर मुझे वर्ष 1991 में भोपाल जाने का अवसर मिला। भारत भवन ने अपनी द्वैमासिक पत्रिका 'पूर्वग्रह' को अधिक सक्षम और सम्पुष्ट करने की भावना के परिपेक्ष्य में साहित्यकारों / विशेषज्ञों की एक बैठक 28 दिसम्बर 1991 को आयोजित की थी। जिसमें मुझे और राजाराम जी को मिलाकर कोई बारह लोग निमंत्रित थे। इस बैठक में अन्य विचार-विमर्श होने के साथ-साथ पूर्वग्रह' पत्रिका के सात विशेषांक निकालने का निर्णय लिया गया इनमें से एक 'कला विशेषांक' का अतिथि संपादन मुझे सौंपा गया था। इसके अतिरिक्त सर्वश्री ई. विश्वनाथ अय्यर (मलयालम विशेषांक), प्रभाष जोशी एवं सरोजकुमार (शरद जोशी विशेषांक), आर. गौरिराजन एवं एम. शेषन (तमिल विशेषांक), रसिक पुत्तिगे (कन्नड़ विशेषांक), शंकर लाल पुरोहित (उड़िया विशेषांक), विवेकानंद शर्मा (विदेशी हिन्दी विशेषांक) का भी अतिथि संपादक बनाया गया था।

इसके बाद मेरा कई बार भोपाल आना-जाना हुआ। राजाराम जी उस काल में भारत भवन में ही थे अत: उनसे भी भेंट होती और कला के विभिन्न पक्षों पर वार्ता भी। इस तरह हमारी निकटता बढ़ती गई और हममें पत्राचार भी शुरू हो गया। यह मोबाइल युग नहीं था। मोबाइल युग आने के बाद हम फेसबुक फ्रैंड भी हो गये और फिर इसी के सहारे हमारी दोस्ती परवान चढ़ती रही। अपनी बीमारी के चलते बिस्तर पर निष्क्रिय रहना राजाराम जी को कभी नहीं सुहाया। बतकही उनका एक शग़ल था। इसलिए अपने इष्ट-मित्रों से बात किये बगैर वह नहीं रह पाते थे। इसी के चलते ही 'राजाराम्स रूम' का गठन उन्होंने किया था; पर नियति कुछ और ही खेल खेल रही थी। अचानक उनका कोरोनाग्रस्त होना और फिर हमें अलविदा कह देना...आज भी विश्वास नहीं होता। कोरोना-काल की बंदिशों के चलते आख़िरी वक्त में उनसे रूबरू न हो पाने का गम भी था-ज़िंदगी के लिए रह गया, बकौल शकील बदायुनी -

जाने वाले से मुलाक़ात न होने पाई,
दिल की दिल में ही रही बात न होने पाई।

- राधा कृष्णन पुरम, शिक्षक कॉलोनी वार्ड, पो. गोसाईगंज,
लखनऊ (उ.प्र) - 226501, मो. 9580239360

सृजन का समकालीन परिदृश्य

(बातचीत)

अरुण तिवारी

पृष्ठ : 144

मूल्य : 190/-

प्रकाशक : प्रेरणा पब्लिकेशन, देशबंधु भवन, प्रथमतल,
26-बी, प्रेस काम्पलेक्स, एम.पी. नगर जोन-1,
भोपाल (म.प्र.) 462011, टेलीफोन : 0755-4940788

ई-मेल : prernapublicationbpl@gmail.com

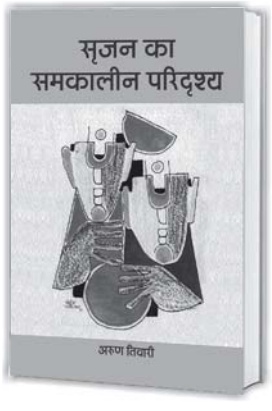

पुण्य-संस्मरण

राजाराम जी का चरित्र स्वच्छ नीले आसमान जैसा

गायत्री गोस्वामी

उनका व्यक्तित्व, उनका चरित्र स्वच्छ नीले आसमान जैसा था, उनकी सोच अतल गहराईयों में जाकर सुकून पाती, उनके निकट कोई मकड़जाल नहीं होता, वो स्पष्ट वादी, सरल सच का सम्मान करने वाले वो हमारे मनों में, हमारी चर्चाओं में हमेशा हमारे निकट रहेगे।

उनकी शिक्षा , उनका ज्ञान चाल बाजियां नही सिखाता एक साफ सच्चाई के पथ पर चलने को प्रेरित करता है। पिता तुल्य गुरु पूजनीय श्री राजाराम सर जो अच्छाईयों को दिल खोलकर प्रोत्साहित करते और अपनी तरफ से उसको आगे ले जाने की राह भी बताते। वो झूठ को कभी स्वीकार नही करते। वो सामने वाले को गलत बात का एहसास भी द्रढ़ता के साथ कराते।

सर अपने आसपास हो रही देश दुनिया समाज राजनीति की बात हो या घर के सदस्यों के काम की सबसे पहले चर्चा करते। अपने काम में जुटे हुये कलाकारों पर उनकी तीखी नज़र रहती उनकी अपनी तरफ से एक बार नही कई बार पूछते क्या हाल है ? क्या बना रहे हो ? काम को वो हमेशा टालने बाली नही गहन दृष्टि से देखते हर काम उनको बाद में भी याद रहता। सर हमेशा देर तक देखते काम को हर बात बहुत ध्यान से सुनते अच्छा सुनकर बेहद बेहद खुश हो जाते।

हमने क्या बनाया ? क्यों बनाया ? कभी दखल नही देते कलाकार के अंदर क्या छुपा है, वो महान कला पारखी अदभुत दृष्टी उनकी काम की दिशा का एहसास करा देती। वो गलत रास्ते पर चलने वालों को सहजता से स्वीकार भी नही करते।

अलमारी में चूहे घुस जायें और कपडे कुतर डाले वो बिल में आसानी से छुपने नही देगें वो चूहे बार बार अलमारियों में घुसेगे और नुक्सान पहुचायेंगे वो सफाई पसंद किसी की फैलाई हुई गंदगी उनको पसंद नहीं थी। उनका ज्ञान खुद की गहराई में उतर कर खुद को खोजने की चाहत पैदा करता है उनकी समग्र सोच एक मां के जैसी होती।

वो चिंतित होते आदिवासियों के जीवन को लेकर वो उनके जीवन को सम्पूर्ण मानते राजनीति उनके जीवन में उनको सहन नही होती और उनकी कला संस्कृति को लेकर वो अपनी चिंता बार बार व्यक्त करते उनको वास्तविक कलाकारो और कला में छेडछाड होने से वो विचलित हो जाते।

वो कभी कोई बात भूलते नही वो भगवन राम को मानते पर समाज मे कोई वैमनस्य उत्पन्न हो ऐसी कोई बात नही होना चाहिए। कही अगर कुछ गलत लगता वो धीरे से कह देते ये थोडा ठीक नहीं है, इस बात से बचिये।

वो अपने आसपास के माहौल को हमेशा हल्का रखते तनाव कभी नही देखा क्रोध की जगह हल्का सा व्यंग्य जो मुस्कराते हुये व्यक्त करते जिसमे गम्भीरता सरलता और दूरदर्शिता के साथ सामने वाला निरूत्तर हो जाता। उनकी बातचीत में अमृता शेरगिल डी जे जोशी जी प्रमुख रहते उनका चिंतन गम्भीर होता न उनको जबर्दस्ती किसी को ऊपर ले जाना पसंद नही था न अच्छा काम करने वाले का ठहराव।

शब्द कम प्रभाव ज्यादा बहुत ज्यादा आदरणीय राजाराम सर से पहली बार में क्लास में ही मिली मेरा एम. ए. फाइनल था ...पहले मुझे जो काम कोर्स का करना था वो लेकर उनके पास गई उनको दिखने लगी ..जो भी काम था में निश्चिंत थी की अच्छा ही होगा उनको पसंद आ जयेगा सारा काम था देर तक देखते रहे फिर बहुत धीरे से कहा आपका काम तो अच्छा नहीं है ये काम तो आप रहने दीजिये ...में सन्न मेंने तो बहुत मेहनत की थी ..ओर बहुत बड़ा बड़ा काम भी था .. मन में आया अब मैं आगे कैसे कर कारूँगी ? .मुझे रोना आ गया ..फिर कुछ फोटो निकालकार उनको दिखाये मनमर्जी करना मुझे पसंद था ..सर तो देखते रहे फिर बोले ये काम आपका है हमने कहा हाँ सर फिर उन्होने जोर देकर कहा ये सारा काम आपका है हाँ सर तो आप ऐसा काम क्यों नही करते.. .हमने कहा सर कोर्स में तो नही हैं इस तरह का काम .वो बोले में आपको पूरी छूट देता हूँ। जो आपको अच्छा लगता हैं वैसा काम करिये .. ..में आश्चार्य से उनको देखती रही कोर्स से हटकर तो कोई काम करता ही नही है ..घर पहुँची सर को एक धन्यवाद पत्र लिखा ..मेरे लिए ये बहुत बडी बात थी मन मर्जी काम करने को मिलेगा ...में खुश .. । पहले क्लास में जाने का मन नही करता था अब कोई क्लास छोड़ने का मन नही करता । में सर की एक एक बात ध्यान से सुनती कम शब्दों में बड़ी बड़ी बातें जो आज भी मेरे जीवन में अपार महत्व रखतीं हैं ....

■

पुण्य-संस्मरण

मेरे प्रथम कला गुरु डॉ. राजाराम शर्मा सर

अनीता सक्सेना

इस संसार में माता-पिता हमें पाल-पोस कर अच्छे संस्कार देने के साथ एक अच्छा और सुसंस्कृत इन्सान बनाने का प्रयास करते हैं और इसके लिए विद्यालय भेजते हैं । प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर उच्चतम शिक्षा तक हमारा भविष्य संवारते हैं हमारे गुरु।

ग्वालियर के प्रसिद्ध गजराराजा स्कूल से निकल कर हम कमला राजा गर्ल्स कॉलेज आए, कॉलेज स्टूडेंट बनकर हम सभी अपने अंदर बड़ा गर्व महसूस कर रहे थे। कच्ची मिट्टी के बने विद्यार्थी थे हमलोग जो अपने अंदर बड़े-बड़े सपने पाले हुए थे। रोज सुबह कंधे पर कलाकारों वाला झोला लटकाए साथ में एक टिफिन लिए ग्वालियर के कमला राजा गर्ल्स कॉलेज की सीढ़ियों पर पहुँच जाते जहाँ से चढ़कर एक बड़ी छत मिलती थी और वहीँ पर कोने में था हमारा ड्राइंग रूम।

हमारा चित्रकला का विभाग बहुत सुन्दर था,बाहर छोटा सा दरवाजा पर अंदर एक बहुत बड़ा हॉल था जिसमें चारों तरफ बेहद खूबसूरत चित्र बने हुए थे,यहाँ न सिर्फ चित्र थे बल्कि उन चित्रों के साथ कांच की कलाकारी भी की गई थी। कमला राजा गर्ल्स कॉलेज सिंधिया परिवार की देन था, बहुत बड़ा महल ही था जिसे कॉलेज में परिवर्तित कर दिया गया था । ड्राइंग रूम के पीछे भी और आगे भी बहुत बड़ी छत थी, पीछे की छत से महल के पीछे का बगीचा और बड़े-बड़े पेड़ों का सुन्दर दृश्य दिखाई देता था और आगे खड़े हो जाओ तो कॉलेज का मुख्य द्वार और लंबा सा बजरी वाला रास्ता दिखता था जिसके दोनों तरफ फूलों के पेड़ लगे हुए थे । हमारा कॉलेज बहुत खूबसूरत था ।

अक्सर हम लोग अपना टिफिन ड्राइंग रूम के ऊपर की छत पर बैठकर करते थे जहाँ से दूर तक का खूबसूरत नजारा दिखता था । यह वह समय था जब मन में ढेरों सपने लिए हम लोग हवा में उड़ते थे । सपना था एक बड़ा कलाकार बनने केऔर इस सपने को सच करने हमारे नए कला गुरु बनकर आये थे राजाराम सर। हम लोग आर्ट्स कॉलेज में सुबह की क्लास अटैंड करते थे और दोपहर को कमलाराजा में । आर्ट्स कॉलेज में ही एक दिन वहाँ के प्रिंसिपल राजपूत सर ने हमें राजाराम सर से मिलवाया और बताया कि आप के आर जी में हमारे कला विभाग के हेड ऑफ़ दि डिपार्टमेंट बन कर आये हैं। सर का व्यक्तित्व ही बहुत प्रभावशाली था । राजाराम सर को देखते ही हमें अनुभव हो गया था कि हम एक बहुत बड़े कलाकार और शिक्षक से शिक्षा लेने जा रहे हैं । स्वत: हमारे सिर सर के आगे श्रद्धा से झुक गए थे।

सर की पहली क्लास मुझे बहुत अच्छे से याद है । एकदम अनौपचारिक तरीके से सर हमारे बीच आकर बैठ गए थे, अपनी गंभीर और मोहक मुस्कान से सर ने हमारा परिचय लिया था और फिर हमें पहले ही दिन हिदायत दे दी थी कि न तो स्केल अपने साथ रखनी है और न ही रबर। जबकि इनके बिना हमारा काम ही नहीं चलता था। हम लोग थोड़े घबराये,शुरू में दिक्कत भी हुई लेकिन धीरे-धीरे हम सबकुछ सीखते चले गए। सर ने एक बार हमसे कहा 'रंगों से डरो नहीं,दोस्ती करो'। दरअसल हम ट्यूब कलर्स को कंजूसी से उपयोग में लाते थे तो सर ने एक दिन थोड़े-थोड़े कलर हथेली पर लगवा दिए और बोले दोनों हाथों को अच्छे से मिलाओ। इनसे डरो नहीं इनसे दोस्ती करो फिर देखो चित्र बनाने में कितना आनंद आएगा। तब पहली बार हमें लगा था कि हम सही में चित्रकला सीख रहे हैं।

हर दिन हम उनसे कुछ न कुछ नई चीज सीखते थे, सिर्फ चित्रकला ही नहीं सर हमें दुनिया जहान का बहुत सारा ज्ञान भी देते थे,मुझे याद है कि जिन्दगी में पहला धन्यवाद ज्ञापन (वोट ऑफ़ थैंक्स) देना मुझे सर ने ही सिखाया था। हमारे डिपार्टमेंट में बाहर से कुछ नामी कलाकार आये थे, उन्होंने हमारी एक क्लास भी ली थी जब उनके जाने का समय आया तब सर ने कहा 'वोट ऑफ़ थैंक्स तुम्हें देना है। मैं तो घबरा गई, फिर सर ने मुझे समझाया कि धन्यवाद ज्ञापन क्या होता है। यह बात आज तक मैं कभी नहीं भूलती।

भोपाल आकर बहुत वर्षों बाद सर से मुलाकात फिर से

हुई। मैं, मेरी लोककला की पुस्तक मांडना की पांडुलिपि सर को दिखाकर उनसे आशीर्वाद लेने के लिए उनके पास गई थी। सर ने मेरे कार्य की बहुत सराहना की और कहा था ''एक बात याद रखना यह लोक की कला है,इसे लोक की ही रहने देना। इन चित्रों से कोई छेड़छाड़ मत करना। ये हमारे देश की कला और संस्कृति की धरोहर हैं। ''

मैनें उनकी बात का अक्षरश: पालन किया था। आज यह पुस्तक एक शोधग्रंथ के रूप में सबके सामने आई है जिसे इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला संग्रहालय ने प्रकाशित करवाया है। इसके विमोचन के समय सर भी इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय आये थे और मुझे आशीर्वाद दिया था। आज मैं जिस मुकाम पर हूँ उसका श्रेय राजाराम सर को ही जाता है। सर का आशीर्वाद और मार्गदर्शन हमेशा–हमेशा मेरे साथ रहेगा।

– बी– 143, न्यू मीनाल रेसीडेंसी, भोपाल –462023
संपर्क : 9424402456

हमेशा सबका हौसलां ही बढ़ाया

बहुत ही शांत, सरल स्वभाव के व्यक्तित्व थे श्री राजाराम सर। आज तक हम उन्हें भुला नही सके। उन्होंने कभी किसी विद्यार्थी को ये महसूस नहीं होने दिया कि वह अपने काम मे अच्छा नही है हमेशा सबका हौसला ही बढाया। बहुत तल्लीनता से वो हम सब छात्राओं को कला की बारीकियां सिखाते थे। सर ने मुझे बी. ए. में पढाया था। सर को कोटि कोटि प्रणाम!!!

–**प्रतिभा अग्रवाल,** नॉएडा नई दिल्ली

मैं सर की सदा आभारी रहूंगी

श्री राजा राम सर बहुत ही संवेदनशील,शांत स्वभाव के एवम उदार हृदय के व्यक्ति थे। उन्होंने ही मेरे जीवन को नई दिशा दी थी। बात 1974 की है। मुझे फाइन आर्ट्स मैं प्रवेश चाहिए था। बचपन से ही मैं अपने भ्राताश्री को पेंटिंग्स बनाते हुए देखती थी। वो डॉक्टर हैं पर बहुत अच्छी पेंटिंग बनाते हैं।उनसे प्रेरित होकर ही मैंने फाइन आर्ट्स ज्वाइन करने का निर्णय लिया। मैं डरते डरते के. आर. जी. कॉलेज, ग्वालियर के फाइन आर्ट्स विभाग में गई और सर को अपनी इच्छा बताई।

राजाराम सर ने मेरी बात ध्यान से सुनी,एक मुझे एक पेपर और पेंसिल दी। कहा, 'कोई चित्र बनाकर दिखाओ'। थोड़ी देर तो मैं पशोपेश में पड़ गई कि क्या बनाऊं? फिर मैने अपने मन को स्थिर करके एक ग्रामीण स्त्री का चित्र बनाया जो सर पर घांस का पूला लिए घर जा रही है।

मन में डर था कि पता नहीं सर क्या कहेंगे? चित्र बनाकर राजा राम सर को दे दिया। सर को वो चित्र बहुत पसंद आया उन्होंने मेरा उत्साह बढाया और मुझे फाइन आर्ट्स मैं दाखिला दे दिया। एक घंटे बाद एक विशालकाय भव्य हॉल में, मैं चित्रकला की क्लास अटेंड कर रही थी। यह मेरे जीवन का टर्निंग पॉइंट था, मैं सर को कभी नहीं भूल सकती, सर ने मुझे एक नई राह दिखाई। मैं राजाराम सर की हमेशा आभारी रहूंगी।

– **दीपिका छिब्बर,** 4, टैगोर नगर, ग्वालियर–474011

सर हमारे प्रेरणा स्त्रोत रह हैं और रहेंगे

राजाराम सर के साथ की एक घटना नही भूल पाती। हमारी उस समय की इंग्लिश नॉलेज तो पता ही है...एग्जाम के समय सर ने मुझे प्रिंसिपल मैडम (उस समय रस्तोगी मैडम थीं प्रिंसिपल) से ये पूछने भेजा कि एग्जाम के लिए क्या precautions लेना है लेकिन सर के उच्चारण से मुझे लगा पिकार्शन...मीनिंग तो पता था ही नही...मन में रटते, रटते उनके पास जा पहुँची। मैडम ने दो बार पूछा कि सर ने क्या कहा..हर बार मैनें यही उत्तर दिया। फ़िर वह समझाते हुए बोली कि बेटे, प्रिकाशन होता है, पिकार्शन नही...इतनी शर्म आई उस समय पर सर ने हँसते हुए कहा 'कोई बात नहीं'...।

सर ने हमें हमेशा उत्साहित किया और उनके कारण ही हम कुछ–कुछ नया सीख पाए। एक और यादगार लम्हा...याद

आता है। सर हमेशा हमें चित्रकला की पत्रिकाओं को दिखाते थे, पढ़ने के लिए बहुत जोर देते थे। उनका कहना था कि जितना पढोगे और देखोगे उतना सीखोगे। एक किताब में नीग्रो लोगों के चित्र देखकर मैंने सर को बोला कि कितनी काली और भद्दी शक्ल होती है इनकी...तो सर ने फ़ौरन मुझे टोका और समझाया था कि हरेक की अपनी अलग सुंदरता होती है....सुंदरता शक्ल और रंग में नहीं देखनी चाहिए। तब सुंदरता की व्याख्या पता नही थी न...अब सब समझ में आती है, सर की यह बात मैं हमेशा याद रखती हूँ। सर हमारे प्रेरणा स्त्रोत रहे हैं और रहेंगे।

– **तिलोत्तमा वाघ**, गोरेगांव , मुंबई

राजाराम सर जैसे शिक्षक को भुला पाना मुश्किल हैं

मैं बी एस. सी. की छात्र थी, विषय बदलकर मैंने फाइन आर्ट्स लेने का निर्णय लिया और कमलाराजा गर्ल्स कॉलेज के कला विभाग में पहुँच गई। जहाँ मुझे राजाराम सर ने चित्रकला का ज्ञान दिया। सर एकदम स्पष्ट शब्दों में अपनी बात करते थे और नियम के बहुत पक्के थे। समय के भी एकदम पाबंद थे। हम लोग एक वर्ष ही उनसे शिक्षा ले पाए उसके बाद सर का ट्रांसफर हो गया था। हम लोग उनसे बहुत प्रभावित थे, उनके ट्रांसफर का हमने विरोध भी किया था तथा प्रिंसिपल मैडम को एक प्रार्थना पत्र भी देकर आये थे कि कृपया सर का ट्रांसफर मत कीजिये। राजाराम सर जैसे शिक्षक को कभी भी भुलाना मुश्किल है।

– **सविता बहल,** ग्वालियर

उनकी हर बात पत्थर की लकीर थी!

मैं राजाराम सर की बहुत इज्जत करती थी, उन्हें बहुत मानती भी थी, उनका कहना कभी भी नहीं टाला मैनें। उनकी कही हर बात मेरे लिए पत्थर की लकीर हुआ करती थी। सर हम सभी को हर बात कई–कई उदाहरण देकर बहुत अच्छे से समझाते थे, हर एक के साथ बहुत अपनापन दिखाते थे। कभी यह महसूस नहीं होने दिया उन्होंने कि हम शिष्य हैं और वह बहुत बड़े कलाकार। उनकी बहुत मधुर सी मुस्कान हर किसी को भी प्रभावित करती थी। सिर्फ एक वर्ष हम लोग उनसे पढ़े लेकिन वह एक वर्ष ही हमारी जिन्दगी का बहुत महत्वपूर्ण वर्ष रहा जब हम कला के विषय में बहुत कुछ जान पाए। मैं हमेशा सर को याद करती रही पर सर से फिर कभी मुलाकात नहीं हो पाई।

– **सुमनलता अग्रवाल,** गाज़ियाबाद

कविता

व्यक्तित्व के धनी प्रो. राजाराम

प्रो. रेखा भदौरिया

सौम्य मृदुभाषी, व्यक्तित्व के धनी,
चित्रकार, ना जाने कितने
अद्भुत क्षणों को,
अपने अनुभवों को अपनी
तूलिका से चित्रांकित,
रेखांकित करके आजीवन
ज्ञान बांटते रहे, ...
अपने सपनों को उकेरते रहे ...
और फिर न जाने कितने
अपने हस्ताक्षरित धरोहरों को
भावी चित्रकारों के
मार्गदर्शन हेतु विरासत में दे गए ... !

– वानस्पतिक अध्ययन शाला, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
वर्तमान: ए–46, सागर रॉयल होम्स होशंगाबाद रोड, भोपाल

श्रीयुत् प्रोफेसर डॉ.राजाराम सर

– डॉ. अर्चना मुखर्जी 'अश्क'

व्यक्तिवाचक संज्ञा और शब्द संज्ञा से मंडित राजाराम जी स्वनाम धन्य थे। हां वे अपनी ख्याति एवं कर्मपुण्य से अजर–अमर ही रहेगें अत: उन्हें अतीत न मानकर चिर–जीवित ही मान लेना चाहिए लिहाजा उनके विषद् जीवन कैनवास पर लेखनी चलाना थोड़ा दुष्कर लेखनी धर्म है फिर भी इसे सुखद् प्रारब्ध ही समझ कर कर्म साधना अवश्यमेव करूगीं। सरल–सहज दरिया सा बहता एक सैरा चित्र (Landscape) की भाँति पारदर्शी रंगों से उन्मुक्त लेकिन अथाह ज्ञान सागर के गहन–गंभीर स्त्रोत!

हां जितना उनका प्रायोगिक पक्ष रंगों की रचनाधर्मिता से सराबोर था सर में उतनी ही समीक्षात्मक पैनी लेखन क्षमता थी । वे प्रयोगवादी विचारधारा का सम्मान तो करते थें लेकिन तर्कसंगत नवाचार ही उनके लिए स्वीकार्य थे।

गोकि मेरा उनके साथ गुरु–शिष्या सा सीधा रिश्ता तो कभी रहा नहीं लिहाजा उनके सानिध्य का सुअवसर केवल प्रतियोगिताओं के निर्णायक मंडल में बतौर सदस्य ही हुआ जो हमेशा सुखद्, प्रेरणादायी एवं निर्णय क्षमता में इजाफा करने वाला ही रहा । उनकी पैनी नज़र से चयन–प्रक्रिया की जटिलताओं का सुगम करनी की विलक्षण क्षमता का मैनें दोहन किया जो एक गुरुतर भूमिका सी मेरी अनुभव मंजूषा के मणी–मुक्तक सिद्ध हुए। कला के क्षेत्र में वे एक मील का पत्थर से है जो हर एक ज्ञान पिपासु के गत्–आगत् प्रगति–पथ के सोपानों का निर्धारण करते रहेगें। साहित्यिक गोष्ठियों में उनकी समृद्ध कुशाग्र मेधा को मौन देखकर मेरे जैसे कितने ही मुखर वक्ता आपद मस्तक हो उनके प्रति सम्मान की गुणात्मक वृद्धि का कारक हो जाया करते थे। वे जितने बहिर्मुखी थे उससे कई गुना अधिक अंतर्मुखी थे सम्भवत: यही मूर्धन्य व्यक्तित्व का वास्तविक लिबास है। नपे–तुले शब्दों से गूढ़ तथ्यों का प्रकटन ही उन्हें राजाराम नाम से सुशोभित करता रहा जो अशेष रहेगा ।

चिरंजीव कौस्तुभ, पहले हम माँ–पिता के दैहिक अंश होते है फिर स्वतंत्र होकर भी उनके अभिन्न हिस्से हो जाते है और अन्त में उनके जाने के बाद वे हम में समाहित हो जाते है .. !!

ये सूक्ष्म दर्शन है आध्यात्म का इसे आपने स्वीकार कर लिया जाए ये शुभ संकेत हैं इसी से जीवन की आगामी धाराएं सहज गति में बहने लगेगीं। आप एक जीवट पिता की संतान, वे सदैव आपके साथ है!

अंत में कुछ आदराञ्जलि शब्द सुमन डॉ. बिनय राजाराम मेडम जो नेपथ्य और प्रत्यक्ष शक्ति द्वय की स्त्रोत सरीता है उनको समर्पित करती हूँ....

किसी भी व्यक्ति की प्रत्यक्ष उपस्थिति परिवार व समाज के लिए बरगदी छाँव सी बहुत शीतल होती है और महती समस्याओं का समाधान होती है और हर परेशानी से महफूज़ रखती है और ये बात उनके जाने के बाद ही समझ में आती है चाहे उनका साथ किसी भी वयस में छूटे। हां बिना कोई पूर्व सूचना के यूं कैसे कोई जा सकता है? ये जटिल प्रश्न है जिसका उत्तर प्रभु का प्रबन्धन क्षेत्र है जिसमें हमारा कोई हस्तक्षेप नहीं है। लिहाजा

न जायते म्रियते वा कदाचि– न्नायं भूत्वा भविता वा न भूय: ।
अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो– न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

प्रोफेसर राजाराम सर भी जीवन–गति के हर पल साक्षी रहेगें।

दूसरा सच ये है कि हमारी जिस भी जिम्मेदारी के लिए नियोक्ता (ईश्वर)ने हमें भेजा है उसका निर्वहन तो हमें करना ही है चाहे वो किसी भी मनोदशा से गुज़रते हुए करें, इसलिए जितनी जल्दी मन को मजबूत कर इन शेष कर्त्तव्यों को परिणाम तक आपने पहुँचाया है वो स्तुत्य है, गोकि कविहृदय आपके लिए ये इतना सहज नहीं था फिर भी उस रिक्तता को जो भरी तो नहीं जा सकती लिहाजा कम की जा सकती है उसे आपने इस महती भूमिका के द्वारा पूरीत की, नमन। आप परमज्ञानी है और आपसे इस विषय में शब्दों से कुछ संवाद करना थोड़ा दुष्कर है हां इतना अवश्य जानती हूँ कि आदरणीय सर और आप एक दूसरे की छाया–प्रतिछाया से है और इस स्वरूप में वे सदैव आपके पास है अहसासों में है जीवन के अंतिम क्षण तक।

और सात जन्मों के इस हिन्दू दर्शन में वे जीवन के साथ भी और जीवन के बाद भी साथ है। बिनय दीदी आप स्वयं विदुषी है क्या ही कहूँ सिर्फ यही कि सर की अर्धांगिनी है। कला एवं साहित्य जगत् सदैव उनके शोधपरक ज्ञान–दान के लिए ऋणी रहेगा ।

हृदयतल के अन्तरकक्ष से उन्हें शत् शत् नमन.. !!

– विभागाध्यक्ष : चित्रकला, शास.कमला नेहरू क.उ.मा.विद्यालय, भोपाल(मध्य–प्रदेश), मो.नं.8989541144

पुण्य-संस्मरण

राजाराम सर, मेरी यादों में

डॉ. लक्ष्मी श्रीवास्तव

करिये... करिये... पेंटिंग करिए... शुरूआत तो करिये... अरे, सब आ जाएगा... सब बन जाएगा ... बस करते रहिये।

ये वाक्य हुआ करते थे – हमारे परम श्रद्धेय राजाराम सर के, ये वाक्य आज भी मुझे काम करते रहने को प्रेरित करता है। मैं अपने आपको सौभाग्यशाली मानती हूँ कि मुझे राजाराम सर जैसे गुरू से शिक्षा और सतत् मार्गदर्शन मिला। उनकी उर्जावान सीखों और प्रेरणा ने मुझे मेरी मंजिल तक पहुंचाया। सर के लिए कुछ लिखना है तो बहुत असमंजस में हूँ – क्या लिखूँ और क्या छोडूं? बहुत सारी यादें हैं – कोशिश करती हूँ कम शब्दों में ज्यादा से ज्यादा व्यक्त करने की।

सर से मैं पहली बार वर्ष 1976-77 में मिली थी, जब मैंने बी.ए. में चित्रकला विषय में प्रवेश लिया था और बी.ए. द्वितीय वर्ष पूरा भी नहीं हो पाया था कि भारत सरकार की ओर से सर चार वर्ष के लिए ग्रीस चले गये। मात्र डेढ़ वर्ष सर के मार्गदर्शन में चित्रकला की बारीकियों को समझा, जो आगे निरन्तर मुझे चित्रकला के क्षेत्र में मार्गदर्शन करती रहीं।

राजाराम सर की शिक्षण पद्धति के बारे में बात करें तो सर से जुड़ी कुछ महत्वपूर्ण बातें मुझे याद आ रही हैं। हमारी पेटिंग क्लास के प्रवेश द्वार के समीप ही सर की कुर्सी और टेबिल लगी रहती थी। अंदर घुसते ही सर का पहला वाक्य होता था – बैंग में से रबर निकालो, यहां टेबिल पर रखों। उनका कहना था कि रबर से बार-बार मिटाकर मत बनाओ, बल्कि बार-बार बनाओ..... बनाते रहो..... बन जाएगा।

1977-78 में अखिल भारतीय कालिदास चित्र एवं मूर्तिकला प्रदर्शनी में कालिदास रचित अभिज्ञान शाकुन्तलम् पर पेंटिंग बनाकर भेजने के लिए सर ने हमें प्रेरित किया। सर का आदेश हमें मानना ही होता था क्योंकि उनके कहे शब्दों और समझाइश में बहुत ताकत होती थी। मुझसे शकुन्तला और उसकी सखियां तो बन गयीं, मगर हिरण बार-बार बनाने पर भी बन ही नहीं रहा था .... उसकी आकृति गधे जैसी बन जा रही थी ..... आखिरकार हिम्मत करके सर के सामने शीट रख दी ..... सर, और तो बन गया, पर हिरण नहीं बन रहा, प्लीज सर आप बना दीजिए .... बस कहा ही था सर ने प्रश्न भरी आंखों से देखा कि जैसे ये क्या कह दिया। सर बोले, कल रविवार है सब स्टूडेंट्स चिड़ियाघर जाओ, वहां बहुत सारे हिरण हैं, स्केचिंग करो, उन्हें बार-बार बनाओ .... फिर भी ना बना पाओ तो फिर मैं जरूर बना दूंगा और फिर अंततः मैंने हिरण बना लिया था।

एक और किस्सा याद आ रहा है – जो उनके व्यक्तित्व का दूसरा पहलू था। एक दिन सर ने हमें कुछ ग्रीटिंग काड्र्स दिखाए, जिनमें पीपल के सूखे पत्तों पर पेंटिंग, सूखे गुलाब के फूलों के साथ पेटिंग और कुछ काड्र्स पर पीले रंग की मृत तितलियाँ चिपकी हुई थीं, उनके आसपास पेंटिंग थी। सारे ही काड्र्स बहुत सुन्दर लग रहे थे। बस ..... फिर क्या था दूसरे ही दिन महाविद्यालय में आते ही हम सब जुट गये तितलियाँ तलाशने में – वो भी पीले रंग की। कॉलेज बिल्डिंग के पीछे अरहर के पौधों की खेती थी जिस पर छोटी-बड़ी पीली तितलियाँ मंडरा रही थीं। पीछे के क्लासरूम की खिड़कियाँ कुछ नीचे थीं, वहां से नीचे कूदकर तितलियाँ पकड़ीं और किताबों के बीच में दबा-दबाकर रख लीं। बाकी विषयों के क्लास में हम गए ही नहीं, तितलियाँ ही पकड़ते रहे। घर गये – किताबों में दबीं तितलियाँ मर चुकी थीं, उनसे ग्रीटिंग कार्ड बना लिये और अब इंतजार था कि सर इन्हें देखकर कितना खुश होंगे, शाबासी देंगे। फिर दूसरे दिन हम सभी सीधे पेटिंग क्लास में आ गए ... सर को ग्रीटिंग्स् दिखाने की जो जल्दी थी। सर ने जब हम सबके काड्र्स और उन मरी हुई तितलियों को देखा तो सिर पर हाथ रख लिया ..... ये क्या किया आप लोगों ने! तितलियों को मार कर कार्ड बनाया ..... मैंने ऐसा कब बोला था? सर ने बहुत डाँटा, उनकी आंखें नम थीं और उनके चेहरे पर गहरा पश्चाताप। और हम सब तो बस पूछिये मत हमारी क्या हालत थी? ये सच है कि हमसे

ज्यादा अफसोस सर को हो रहा था, वो बार-बार कह रहे थे – ऐसा करने को मैंने कब कहा था ?

सर कहते थे – घर से कॉलेज आते समय हर चीज को ध्यान से देखो और फिर बनाओ। एक बार बारिश का महीना था – मैंने भैंसों को पानी में बैठे हुए देखा और बनाया। पता नहीं रंग भरते समय मैंने हर भैंस के अंदर अलग-अलग पैचेज बनाकर रंग भर दिया, फिर डरते-डरते सर को दिखाया ... अरे, ये क्या सर तो बहुत खुश हो गए .. बोले – ऐसे ही कुछ नया सोचो ....नया करो।

क्लास में स्टिल लाइफके लिए जो पॉट्स का समूह रखना होता था, वो हम विद्यार्थियों से ही रखवाते थे, जिससे हमारा कम्पोजिशन नॉलेज तो बढ़े ही, साथ में रंगों के संयोजन के ज्ञान में भी वृद्धि हो। जब मैं सर के साथ महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल में कार्यरत थी, वहां भी उन्होंने वो सीख जारी रखी। लाइफस्टडी के लिए मॉडल को बैठाने का काम वो मुझसे ही करवाते थे। एक बार मॉडल के लिए जो व्यक्ति आया था, उसकी बड़ी-बड़ी मूँछें थीं। मैंने उसको पगड़ी पहनवाई और हाथ में डंडा पकड़ाकर एक विशेष मुद्रा में बैठा दिया। सर को वो बहुत पसन्द आया, पूरे दिन तारीफकरते रहे... जो आते उससे कहते – अंदर जाकर देखिए, लक्ष्मी ने आज मॉडल बहुत अच्छा बैठाया है।

तो ऐसे थे हमारे परम श्रद्धेय कलागुरु और ऐसी थी उनकी शिक्षण-पद्धति। उनकी सीखें मुझे 1976-77 से अब तक मुझे मिलती रहीं। मैं 16 वर्ष की थी, 61 वर्ष की हुई तब भी – उनके लिए उनकी शिष्या ही रही। वो हमेशा बोलते रहते – प्रदर्शनियां देखती रहा करो... म्यूजियम्स जाओ, कमरे से बाहर निकलकर काम करो, वो किताब पढ़ी थी ? ये करो .. ये पढ़ो ... ये सुनो, ये अपने विद्यार्थियों को समझाओ। बहुत सारी बातें हैं पर यहां शब्दों की सीमाएँ हैं, उन पर जितना भी लिखा जाए, शब्द कम ही पड़ जाएंगे।

सर, शरीर से भले ही इस दुनियाँ से चले गये हैं – पर वो आज भी हमारे साथ हैं, हमारी खींची रेखाओं और भरे हुए रंगों में सदा रहेंगे। ईश्वर मुझे हर जन्म में सर जैसे गुरु का सानिध्य प्रदान करे। राजाराम सर केवल गुरु के रूप में ही सर्वश्रेष्ठ नहीं थे, बल्कि उनका व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही आदर्शवादी और प्रेरणादायी था, वे अप्रतिम थे। अन्त में, उनका एक और वाक्य याद आ रहा है, वो कहते थे –'' किसी से डर के अपने को मत सुधारो ..... बल्कि अपने आपसे डरो... कभी गल्ती नहीं होगी।''

परम आदरणीय सर को मेरा शत्-शत् नमन् और विनम्र श्रद्धांजलि।

– प्राध्यापक, चित्रकला, सरोजिनी नायडू शा.क.स्ना. स्वशासी महाविद्यालय, शिवाजी नगर, भोपाल

एक प्रयोग यह भी...

– डॉ. बिनय राजाराम

प्रो. राजाराम अपनी प्रयोग धर्मिता का एक मजेदार किस्सा सुनाते थे। जब वे वनस्थली में प्राध्यापक थे तब प्राय: पास की ढाणियों में जाकर वहाँ के जन-जीवन का स्केच तैयार किया करते थे। एक बार पास की किसी ढाणी के एक घर के बाहर ओटला पर बैठकर पेंसिल स्केच कर रहे थे। तभी घर के भीतर से कोई घूँघट वाली युवती बाहर आकर उनका चित्र बनाना देखकर खुश हो रही थी। फिर बातचीत करने लगी –

''थे कईं करो ?''

''चित्र बनाऊँ।''

''और ?''

''पढ़ाऊँ।''

''कहाँ ते आया हो ?''

''बाहर गाँव से।''

थोड़ी देर की चुप्पी के बाद बात करने की गरज से चित्रकार महोदय ने उस युवती से कहा –

''बाई पाणी पिला दो।''

''हूँ! थें कईं जात हो ?''

''म्हारी जात ये थांके कईं लेना ?''

''जात तो पूछनी पडै।''

''मैं अछूत हाँ।''

''अछूत ? मैं थांके नी छिआँ ?''

''छीने को कईं काम ? बस पाणी पिला दे।''

''ऊपर से पिलाएँगा।''

''ऊपर से पिला दीजै बाई सा.।''

वह बेचारी पानी लेने जो अंदर से गई तो वापस मुड़कर नहीं आई। अछूत को पानी कैसे पिलाती ?

रंग जब आस-पास होते हैं

संतोष रंजन

ईश्वरीय सृष्टि विविध वर्णी है। मानवीय प्रकृति, मानव समाज, सभ्यतायें, संस्कृतियाँ भी बहुरंगी है। रंगों के मेल से ही तो आकार बनते हैं। कितना विचित्र है कि श्वेत दिखने वाले प्रकाश पुंज के सामने प्रिज्म रख देने पर उसमें से अलग-अलग सात रंग फूट पड़ते हैं। ऋग्वेद कहता है - 'एक सदविप्रा बहुधा वदन्ति।' अर्थात सच तो एक है, विद्वान उसे अनेक रूपों में परिभाषित करते हैं। जीवन से बड़ा सच और क्या हो सकता है, ठीक उसी प्रकार जैसे जीव-रूपों का अंत, जिसे मृत्यु न कहकर परिवर्तन कहा जाये तो उचित होगा - 'बासांसि जीर्णानि यथा विहाय.....।' कई बार तो शैशव, तरुणाई और युवावस्था में ही यह देह-परिधान त्यागना पड़ता है। चलिये, त्याग, बिछोह और शोक की बातें छोड़कर जीवन की बातें करते हैं क्योंकि व्यक्ति की एक यात्रा समाप्त होकर, दूसरी प्रारंभ होती है। और व्यतीत यात्रा के पड़ाव कभी-कभी कालातीत हो जाते हैं, चिरंतन हो जाते हैं। उस यात्री की व्यक्तित्व और कृतित्व की विशिष्टताओं के कारण - ' लोग चले जाते हैं, यादें रह जाती है।'

सचमुच यादों के रंग भी अनेक होते है। विषाद, अभाव और क्षतियों के रंग काले हो सकते हें, किन्तु अधिकत: स्मृतियाँ सात-रंगी होती है और रंग और अधिक प्रगाढ़ हो जाते हैं, जब हम किसी चित्रकार और कलाकार की बात करते हैं। लेखक के हाथ में जिस प्रकार भावों के मंच पर लेखनी थिरकती है , एक कुशल वक्ता के मुख से जिस तरह मुग्धकारी वाग्धारा प्रवाहित होती है, रंगमंच पर नर्तक या कलाकार जिस प्रकार अनेक भाव-भंगिमाओं का सृजन करता है, उसी प्रकार एक कलाधर्मी, चित्रकार के हाथ में तूलिका थिरकती है - रंग जब आस-पास होते है, रूह तक कैनवास होते हैं।''

आज स्मृतियों के कैनवास पर जो रंग, जो व्यक्तित्व, जो कृतित्व उभर रहा है वह है- भोपाल के प्रख्यात कला पारखी, कलाकार, चित्रकार, कला - समीक्षक एवं कला के प्रोफेसर, प्रोफेसर राजाराम का, जो कुछ महीनों पहले हमें छोड़कर चले गये, अपनी पारलौकिक यात्रा पर। उनकी याद आते ही एक सहज, सौम्य आकर्षक मृदुभाषी व्यक्तित्व का अक्स उभरता है, जो पहली मुलाकात में ही किसी अपरिचित को भी अपना मुरीद बना लेता है, और उसे बार-बार मिलने पर बाध्य करता है।

मेरा और प्रोफेसर राजाराम तथा उनकी सहधर्मिणी डॉ. बिनय राजाराम का परिचय लगभग 30 वर्ष पुराना है। प्रोफेसर साहेब और डॉ. बिनय का संग जैसे 'मणि-कांचन' संबंध को परिभाषित करता हो। एक ओर अपने समय के ख्यात चित्रकार तो दूसरी ओर साहित्य की अनेक विद्याओं में पारंगत लेखिका। राजाराम दम्पत्ति से मेरा परिचय प्रकाण्ड संस्कृत विद्वान डॉ. भास्कराचार्य त्रिपाठी के माध्यम से हुआ। डॉ. बिनय और डॉ. भास्कराचार्य त्रिपाठी द्वारा समय-समय पर आयोजित कवि-गोष्ठियों एवं विचार- गोष्ठियों में इस अकिंचन साहित्य सेवी को प्रवेश और स्नेह मिला। इन्हीं गोष्ठियों के माध्यम से हिन्दी / संस्कृत के मूर्धन्य विद्वानों - डॉ. देवेन्द्र दीपक, डॉ. प्रभुदयाल अग्निहोत्री, आदि का सानिध्य प्राप्त हुआ। इन गोष्ठियों में प्रोफेसर साहेब न केवल एक श्रद्धालु एवं मननशील श्रोता के समान सहभागिता करते थे, वरन् गोष्ठी के अंत में विवेच्य एवं अभिव्यक्त विचारों का आकलन करने के साथ-साथ अपना स्वतंत्र मत भी रखते थे। ऐसे अवसरों पर उनका वक्तव्य विनय और शालीनता की सीमाओं को रंच मात्र भी आक्रान्त नहीं करता था। गूढ़-से-गूढ़ साहित्यिक चर्चाओं एवं कवि गोष्ठियों में उनका समापन भाषण (संभाषण कहें तो अधिक उपयुक्त होगा) हमेशा आकर्षण और उत्सुकता का केन्द्र बना रहता। इन वक्तव्यों में उनकी कला-पारखी दृष्टि सर्वोपरि रहती थी।

प्रोफेसर साहब के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता उनकी सत्य-प्रियता वैचारिक प्रतिबद्धता थी। दूसरे शब्दों में कहें तो वे मनसा-वाचा-कर्मणा एक रूप थे। महापुरुष होते ही ऐसे हैं। उनले राष्ट्रीयतावादी विचार हम सभी के लिये प्रेरणा स्रोत थे। कट्टर दक्षिणपंथी होते हुये भी उनका कलाकार-मन मानवीय संवेदनाओं

का पोषक था और उनका विरोध भी इतना मृदु होता था कि वह कभी भी अपमान जनक नहीं लगता था।

कला में आधुनिकता के हामी होते हुये भी अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़े थे। उनकी चित्रकला के आधुनिकता और परंपरा का अद्‌भुत संयोग दर्शनीय था। मैंने उनकी अधिक कलाकृतियों एवं चित्रों का अवलोकन तो नहीं किया किन्तु जितना कुछ भी एक अज्ञानी समझ सकता था, उससे यही जान पाया कि भारतीयता और लोक-रंग उनकी अभिव्यक्ति में सर्वाधिक मुखर थे।

प्रोफेसर राजाराम का असमय हमारे बीच से चले जाना अत्यंत दुखकर है और कला-जगत की अपूरणीय क्षति है। जहाँ उसका व्यक्तित्व साहित्य सेवियों और कला - प्रेमियों के लिये सुखद- स्मृतिदायी है, उनका कृतित्व कला-जगत के लिये एक कीर्तिमान है।

- 1/6 दानिश कुंज, सेक्टर-5, कोलार रोड, भोपाल, मो. 9425689091

मेरे बड़े भाई : प्रो. राजाराम

स्वर्णलता मिश्रा

''ढूँढ मेरा किरदार दुनिया की भीड़ में ऐ दोस्त; वफादार तो हमेशा तनहा ही मिलते हैं।'' देखने में दुबले-पतले लेकिन ऊर्जा से परिपूर्ण हँसता हुआ चेहरा। ऐसे थे हमारे राजाराम भाई। हम चार भारतीयों दो पुरुष व दो स्त्रियों का चयन ग्रीस में स्कॉलरशिप के लिए हुआ था, जिनमें हशीम और शिप्रा आर्कियोलॉजी तथा राजाराम भाई और मैं चित्रकला विषय में चुने गए थे। ग्रीस प्रवास के दौरान मेरा प्रथम साक्षात्कार हुआ था राजाराम भाई से और तभी से मैं उनकी फैन बन

मौका मिला और इन तीन वर्षों में वे मेरे आत्मीय बड़े भाई बन गए। उच्च कोटि के कलाकर तो वे थे ही। मुझे आज भी याद है जब 1977 में भारतीय एम्बेसी को उन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का एक सुंदर व्यक्ति चित्र भेंट किया था।

ऐथेन्स में रहते हुए मुझे उनके साभिध्य में जो विशेष बातें सीखने को मिलीं उनमे एक बात थी अपनी बात को साथियों से बाँटना। हम लोग प्रतिदिन ग्रीक भाषा क्लास में जाते थे। घर से कक्षा तक पहुँचने में हमें जो अनुभव होते थे उन्हे हम संकोच वश अन्य साथियों को बता नहीं पाते थे। पर, राजाराम भाई ने हमें सबको सिखाया कि जो यहाँ की सभ्यता उसे बताने में संकोच कैसा ? उनके साथ हमने विभिन्न द्वीपों की सैर की। कला विषयक कोई विवाद हो तो उसे वो बड़ी सहजता से सुलझा देते थे। व्यक्ति चित्र बनाने में तो वे अद्वितीय थे। ढेरों व्यक्ति चित्र महात्मा गांधी, अटल बिहारी वाजपेयी विभिन्न राजनेताओ के और न जाने किन किन के बनाए। उनके घर पर भी चित्रों का प्रपूर्व संसार है।

खुदी को कर बुलंद इतना कि हर तकदीर से पहले,
खुदा बंदे से पूछें बता तेरी रज़ा क्या है

जन्म जन्मांतर ऐसे ही सहृदय विद्वान, श्रेष्ठ भाई से मिलन होता रहे और हम कभी न बिछडें।

- रूड़की

साहित्यकार दुष्यन्त कुमार की धर्मपत्नी राजेश्वरी त्यागी का निधन

भोपाल। कालजयी साहित्यकार दुष्यन्त कुमार की धर्मपत्नी श्रीमती राजेश्वरी त्यागी का 29 अगस्त को भोपाल मे निधन हो गया। वे 87 वर्ष की थीं। दुष्यन्त कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय मे उनकी श्रद्धांजलि सभा का आयोजन मंगलवार 31 अगस्त को शाम 5 बजे किया गया है।

यह जानकारी देते हुये संग्रहालय के निदेशक राजुरकर राज ने बताया कि श्रीमती राजेश्वरी त्यागी का संग्रहालय के लिए अनुपम योगदान रहा है। उनका निधन संग्रहालय की अपूरणीय क्षति है। संग्रहालय के अध्यक्ष श्री रामराव वामनकर ने भी उनके निधन पर शोक व्यक्त किया।

रपट : राजुरकर राज

यादों के झरोखे से

संजीव पाण्डेय

बात उन दिनों की है जब मैं प्रतिनियुक्ति पर जिला पंचायत रतलाम में पदस्थ था, यूँ तो सर से परिचय पत्नी अंजलि के विभागाध्यक्ष, चित्रकला विभाग, एम. एल. बी. कॉलेज भोपाल होने के नाते ही हुआ था पर आश्चर्य मुझे तब हुआ जब उन्होंने मुझे रतलाम चिट्ठी लिखी एवं विस्तार से देश की घटनाओं पर चिंता व्यक्त की। आज भी वह पत्र मेरे पास सुरक्षित है।

उनसे जब भी मिलता ऐसा लगता बरसों से उनसे मुलाकात होती आ रही है एक सहज स्वभाव, सहज संवाद हमेशा करते थे । जब भी चर्चा होती सर हमेशा देश के संबंध में चिंतित रहते थे। मैं कोई साहित्यिक बुद्धि वाला तो था नहीं अत: देश संबंधी चर्चा मनोयोग से होती थी।

कभी पत्नी को फोन करके कहते कि आज तो देश काल की चिंता सुनने वालों से बात करना है, उनको फोन दे दो, फिर घंटों देश की घटित घटनाओं पर चर्चा होती। कभी-कभी मैं सोचता कि कितना चिंतित रहते हैं सर देश के लिए, आम भारतीयों की तरह वे केवल चिंतित ही नहीं रहते थे अपितु उस चिंता को सक्षम लोगों तक अभिव्यक्ति के माध्यम से पहुंचाते भी थे। सर अपना कार्य पूरी ईमानदारी से करते थे।

मैं उनकी तुलना जर्मनी के बिस्मार्क से करता, जो जिस विषय पर सोचता था काम करता था बस वही खिड़की खुली रखता था। सर भी ऐसा ही करते, वे हमेशा कहते थे कि यदि सभी अपनी जगह रह कर देश की भलाई का कार्य ईमानदारी से करें तब विश्व गुरु होने से भारत को कोई नहीं रोक सकता ।

जब भी कभी हम पति-पत्नी उनसे मिलने जाते तब दोनों बेटियों के बारे में जरूर पूछते थे और कहते थे अगली बार अकेले मत आना उनको जरूर लाना, बहुत दिन हो गए हैं उन्हें देखे हुए। छोटी बेटी मालविका अक्सर कहती कि पापा सर तो बिल्कुल नाना जी जैसे ही स्नेह करते हैं। बहुत लाड करते थे बेटियों को।

जब मैं सूचना आयोग भोपाल में पदस्थ था, फोन पर अक्सर सूचना का अधिकार के बारे में पूछते। एक दिन अचानक आयोग कार्यालय में मुझे मिल गए मैंने पूछा कि सर आप यहां कैसे बोले अपील लगाने आया हूं। मैंने कहा सर मुझे कहते मैं लगवा देता ,बोले अपना काम खुद करना चाहिए मैं ये अपील लगवा दूंगा वे कहते आप मेरे लिए कष्ट न करें आवश्यकता होने पर में आपसे पूछ लूंगा।

मैं कहता कि सर मेरे कमरे में चल कर बैठिए, तब कहते मैं तो फुर्सत में हूं पर आपको तो काम है आवश्यकता होने पर आपकी मदद ले लूँगा।

एक बार हम दोनों के बिना सूचना के अचानक घर पहुंचने पर उन्होने ही अपने हाथों से ही चाय बनाने लगे अंजलि ने कहा सर मैं बनाती हूं पर उन्होंने ही बना कर पिलाई और हंस कर बोले इतनी खराब भी नही बनता हूं।

जब कभी कोई कलाकृति बनाते तब भाव सर्वोपरि होते, रंगों का चयन जीवंत होता।

बनाई कलाकृति को घंटों निहारते और यदि कलाकृति उनके भावो के अनुरूप नहीं बन रही होती तब हंस कर कहते जो चाहता हूं वह बात अभी नहीं आई है, बाद में जब मन के अनुरूप भाव आते तब उसको पूर्ण करते।

बस अब यादें ही शेष हैं और उन्हीं के सहारे रहना है। एक विराट व्यक्तित्व, दुनिया भर की चिंता, देश सर्वोपरि, गलत कदापि स्वीकार नहीं, कहीं भी हो किसी स्तर पर भी हो उसका विरोध अनिवार्य रूप से करते थे, हर कार्य करने का एक विशेष तरीका था, कोई शॉर्टकट पसंद नहीं, केवल मेहनत और मेहनत। भारतीय कला और संस्कारों को सर्वोच्च प्राथमिकता। कम समय में बहुत कुछ करने की ललक हमेशा रहती थी।

उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को कागज पर समेटने को मेरी लेखनी सक्षम नहीं है, बस उस विराट व्यक्तित्व और जमीन से जुड़े, रंगों से खेलने वाले अदभुत कलाकार को श्रद्धा पूर्वक नमन...

■

असाधारण व्यक्तित्व : प्रो. राजाराम

– राकेश कुमार रॉय

किसी साधारण व्यक्ति के बारे में यदि कुछ लिखना हो तो वो अत्यंत सरल है पर यदि किसी महान व्यक्ति के बारे में लिखना हो तो अत्यंत ही कठिन प्रतीत होता है !

स्वर्गीय प्रोफेसर राजाराम कला के पटल पर एक ऐसे ध्रुव तारा हैं जिसकी रौशनी आने वाले कई सदियों तक टिमटिमाते हुए हर उस कला प्रेमी को प्रोत्साहित करती रहेगी जिनको कला बिल्कुल परिशुद्ध और मूल रूप में पसंद आती हो ! मेरा स्वर्गीय राजाराम जी से परिचय केवल 7–8 बरसो का है पर पिछले एक सालो में मुझे उनके साथ काफी सारा समय बिताने का सौभाग्य मिला ! घंटो–घंटो मै उनकी बाते मंत्र मुग्ध होकर सुनता रहता था ! मैं पाठको को यह बता देना जरुरी समझता हूँ की मेरा वास्ता कला क्षेत्र से नहीं बल्कि व्यवसाय क्षेत्र से है लेकिन मेरे हृदय में कला को जानने की लालसा हमेशा से रही है !

मै खुद को अत्यंत खुसनसीब समझता हूँ क्योंकि मुझे पिता समान कला के प्रकांड विद्वान के जीवन के आखरी साल में ऐसे कई मौके मिले, जिसमे मुझे उनसे बात कर उनकी गहराइयों को समझने का मौका मिला ! पहली बार मिलते ही, मै उनके ललितकला विषय पर उनकी अद्भुत और अत्ति सूक्ष्म स्तर तक की पकड़ को देख कर हस्त्प्रभ रह गया था ! कला उनके हर एक सांसो में बसा हुआ था ! उनके पास कहने के लिए इतना कुछ था की पूरा– पूरा दिन एक विषय पर समझाने के लिए कम पड़ जाते थे ! किसी एक विषय पर शुरू हुई चर्चा इतनी गहराइयों में चली जाती थी की कई बार मुझे उनको समय से बाँधने पड़ता था !

मै जीवन में अद्भुत रिश्ते बनाने में विश्वास रखता हूँ और ऐसा ही एक अद्भुत और अविस्मरणीय रिश्ता मेरा इस महान विभूति के साथ भी बन गया ! पहली मुलाकात में ही ऐसा प्रतीत हुआ जैसे हमदोनो एक दुसरे को बरसों से जानते हों ! वो मेरी पत्नी के गुरु तो थे ही और मेरे पिता भी बन गए ! पहली मुलाकात में मुझसे कहा की 'अर्चना' (मेरी पत्नी) उनकी सुपुत्री सामान है तथा मैं उनका दामाद हूँ ! मैं यह सुन कर भाव विभोर हो गया ! आँखो में खुशियों के आँसू छलक पड़े और मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मेरे अपने स्वर्गीय पिता साक्षात् मेरे सामने आ गए हों ! ऐसा भावनात्मक बन्धन कुछ पलो में बन जाना बिकुल असाधारण बात है ! मुझे पूरा यकीन है कि मेरा उनसे पूर्व जन्म का कोई गहरा नाता रहा होगा जिसकी वजह से मेरी मुलाकात इस जन्म में भी उनसे हुई , बेशक कुछ वर्षो की ही क्यों न हो !

महान लोगो कितने सरल और भावुक होते है इस बात का अनुभव मुझे उनसे मिलने के बाद हुआ ! मुझसे मिलने के बाद वो अपनी शिष्या (मेरी पत्नी) से कम बाते करते, परंतु मुझसे इतनी ज्यादा बाते करने लगे कि ऐसा प्रतीत होता जैसे सालों कम पड़ जायेंगे ! मै जब भी दिल्ली से भोपाल आता, उनसे मिलने जरुर आता ! हमलोग घंटों तक बातें करते रहते ! मै उनसे कला से संबंधित परिपक्वता प्रश्न पूछता जाता, और सर मेरे उन सभी प्रश्नों का जवाब बड़ी सरलता से देते जाते थे ! मेरी उनसे की गयी हर मुलाकात में मुझे ऐसा प्रतीत होता था जैसे मैं उनसे सब कुछ जान लूं ,समझ लूं जो उन्होंने इतने बरसो में जाना है !

कहीं शायद मेरे अचेतन मन में यह भय बसा हुआ था की उनके पास ज्यादा समय नहीं है ! और मेरा भय सच निकला ! मुश्किल से 7–8 महीनों की मुलाकात के बाद ही एक दिन पता लगा कि उनकी तबियत काफी ज्यादा ख़राब हो गयी है ! यह समय विभस्त कोरोना के दुसरी लहर के पीक का समय था। जब हर रोज केवल बुरी खबरें आ रही थीं ! उनके बीमार होने की खबर सुन कर मेरा हृदय काप गया था ! उनके बीमार होने के कुछ दिन पहले ही मुझे कोरोना हुआ था जिसकी जानकारी उनको थी ! मेरे स्वाथ्य को लेकर वो इतना चिंतित हुआ करते थे की मुझे अंदाज़ा है कि वो अक्सर मेरी पत्नी से फ़ोन कर मेरे स्वाथ्य की पूछ ताछ कर लिया करते थे ! उनको इस बात की जानकारी थी कि मैं काम काज के सबंध में काफी व्यस्त रहता हूँ, इसलिए वो मुझे सीधा कॉल काफी कम किया करते थे ! वो लगातार मेरे कोरोना से ठीक होने की खबर मेरी पत्नी से पूछ लिया करते थे ! ऐसे पिता के खुद गंभीर रूप से बीमार होने पर एक पुत्र की क्या स्थिति हो सकती है इसका अंदाज़ा किसी भी भावनात्मक व्यक्ति के लिए लगाना कठीन नहीं होगा !

मेरे अंदर अजीब सा डर बैठ गया लेकिन मैंने ईश्वर पर विश्वास रखते हुए हर रोज यही प्रार्थना की की मेरे पिता तुल्य महापुरुष के स्वास्थ्य में सुधार आये! उनके अस्पताल भर्ती होने के कुछ ही दिनों के बाद एक दिन उनके स्वास्थ्य के बहूत ज्यादा बिगड़ने की बात पता लगी ! उसी दिन श्रीमती राजाराम जी की मेरी पत्नी से बातचीत हुई जिसने मेरे जेहेंन को अंदर से झकझोर दिया ! ईश्वर कितना निर्दयी हो सकता है इस बात का एहसास मुझे उसी वक़्त हुआ जब मेरी पत्नी ने मुझे बताया की 'सर'(प्रो. राजाराम जी) की हालत अत्यंत गंभीर हो गयी है तथा वो कह रहे थे की 'उनको बचा ले, वो जीना चाहते थे' ये उनके आखरी शब्द थे। इसके बाद केवल सबसे मनहूस खबर ही आई की, मेरे पिता अपने पार्थिव शरीर का त्याग कर पंचतत्व में विलीन हो गए।

समझ में नहीं आता की क्यों बड़े से बड़े कुकर्मी जीवित रह जाते है। और इतने महान लोग जो इस दुनिया को हमेशा एक नयी दिशा देने के लिए निरंतर प्रयासरत रहते है ऐसे लोगो पर ईश्वर इतना बेरहम क्यों हो जाता है ?

कला क्षेत्र को ख़ास कर चाटुकारों और बहुरूपियों ने पूरी तरह से कब्ज़ा कर रखा है! ऐसे मायावियो के बीच एक महान कलाकार अपने आदर्शो और उसूलो का पूरी ईमानदारी से पालन करते हुए, सरस्वती की मर्यादा को कभी धूमिल नहीं होने दिया! उन्होंने तुच्छ मानसिकता और फूहड़पन जिससे वर्तमान कला क्षेत्र ग्रसित है, से बिल्कुल अलग रह कर कला क्षेत्र के लिए कई नए आयाम और आदर्श प्रस्तुत किये।

उन्होंने हमेशा ऐसी लौबी जो कला को बदनाम करने के लिए निरंतर काम करती है उसको आड़े हाथो लिया और पूरी बेवाकी और साहस के साथ ऐसे कला के दलालों को बेनकाब किया जिसके लिए आने वाली पीढ़ियाँ उनका आभार व्यक्त करेगी! उनके आदर्श किसी सन्यासी से कम नहीं थे। उन्होंने अपने स्वच्छ दामन पर कभी भी कोई छींटा नहीं गिरने दिया। और ऐसे लोगो का डट कर सामना किया जो लोग उनकी ज्ञान की बराबरी इस जन्म में ना कर पाने का आभास कर उनको बदनाम करने की तुच्छ कोशिश की। उनके कई सारे काम कला के बड़े नामचीन कहे जाने वाले लोगो ने चुरा लिया लेकिन उन्होंने अद्भुत और अविस्मरणीय काम करने की श्रृंखला को कभी विराम नहीं दिया! एक के बाद एक संकलन और कला कृतियों का निर्माण करते गए। मुझे याद है एक बार उन्होंने मुझे बताया की कैसे वर्तमान में शौर्य स्मारक जिसका निर्माण डी. बी. माल के ठीक पीछे हुआ है। उसका डिजाईन उनकी 15 साल पहले की गयी एक डिजाईन की हू-बहु कॉपी करके किसी ने अपना नाम दे दिया। इस बात पर मुझे बहूत गुस्सा आया था और मैंने उनसे कहा था की मैं उनपर की गयी इस बेईमानी के लिए उनलोगों से लडूंगा और उनको बेनकाब करूँगा।

अपने आखरी दिनों में वो नरेन्द्र मोदी को अत्यंत चाहने लगे थे और उनकी हर एक बात को गहराइयों से विश्लेषण करते थे। वे मोदी जी के दूरदर्शी और कला के प्रति अगाध रूचि की वजह से इतने प्रभावित हुए की वो उनसे मिलना चाहते थे। मैंने उनसे यह वादा भी किया था की मैं उनकी मुलाकात मोदी जी से करवाने का प्रयास करूंगा जो अब उनके देहांत होने के बाद संभव नहीं हो पायेगा।

कला की साधना करने वाले एक महान सन्यासी, साधक, विद्वान, प्रोफेसर, कला आलोचक। पिता के बारे में एक पुत्र के लिए लिखना असंभव है लेकिन फिर भी मैंने एक छोटा सा प्रयास किया है। आशा है की आपको मेरा यह लेख स्वर्गीय प्रोफेसर राजाराम के ऊपर लिखा हुआ आपके ह्रदय को जरुर स्पर्श करेगा।

ईश्वर से हाथ जोड़ कर विनम्र निवेदन है की महान विभूति को मोक्ष प्रदान करे। शांति

– नई दिल्ली (लेखक व्यवसायी हैं।)

कला समय का बैंक खाता विवरण

1.	**खाता का नाम**	:	कला समय
2.	**खाता संख्या**	:	09321011000775 (चालू खाता)
3.	**बैंक शाखा**	:	पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)
4.	**आईएफएस कोड**	:	PUNB0093210

सम्पादक- कला समय

मेरे मार्गदर्शक - मेरे गुरु

संध्या श्रीवास्तव

गुरु बिना ज्ञान नहीं, ज्ञान बिना आत्मा नहीं ध्यान, ज्ञान, धैर्य और कर्म सब गुरु की ही देन है। प्रो. राजाराम अपने समय के प्रमुख कलामर्मज्ञ, चित्रकार, साहित्यकार, संस्कृतिकर्मी तथा कला समीक्षक रहे हैं। मैं अपने आप को सौभाग्यशाली समझती हूँ कि गुरु के रूप में मुझे राजाराम सर का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। मेरी कलायात्रा को उन्होंने एक बहुत ही सुदृढ़ आधार स्तंभ प्रदान किया है।

यहाँ मैं एक विचार सांझा करना चाहूंगी। जब मैंने अपने स्नातकोत्तर में प्रवेश लिया, तब मैंने पाया कि इस वर्ष हमारा कला का पाठ्यक्रम पिछले पाठ्यक्रम से बहुत भिन्न है। क्योंकि मेरा कलाप्रेम, कला जगत की हर बारीकी को सीखना-समझना चाहता था। अत: मेरे लिए यह एक स्वर्णिम अवसर था, जहां मुझे ललितकला के अंतर्गत पड़ने वाली सभी विधाओं जैसे छापा- चित्रण, मोल्डिंग-कास्टिंग, प्रयुक्त कलाएं, त्रिआयामी कलाएं आदि का आधारभूत ज्ञान पाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। साथ ही चित्रकला के क्षेत्र में हमने अनेक नवीन प्रयोग भी किए। जिसने मेरे ललितकला के ज्ञान को विश्व के आधुनिक खुले मंच पर प्रतिस्पर्धा में भाग लेने का सामर्थ्य प्रदान किया।

राजाराम सर की कला इतिहास पढ़ाने कि शैली मुझे मंत्रमुग्ध कर देती थी। मैं कभी भी उनका कला इतिहास का लेक्चर छोड़ती नहीं थी, क्योंकि उनका एक-एक शब्द इतना महत्वपूर्ण होता था कि मैंने अपनी लिखने की गति को सर के बोलने की गति के साथ मिलाने के लिए बहुत से शब्द-कोड बना रखे थे। जिसके माध्यम से मैं उनका सारा लेक्चर जैसे का तैसा कोड शब्दों में लिख लेती थी, और घर आकर उसे अपनी नोटबुक में उतार लेती थी। इसके पश्चात् मुझे उस अध्याय को कभी भी किताब से देखने कि जरूरत नहीं होती थी। आज दो दशक बाद भी राजाराम सर के काम करने की ऊर्जा मेरे लिए प्रेरणास्त्रोत है। उन्होंने हमें केवल डिग्री के लिए नहीं पढ़ाया बल्कि प्राचीन गुरुकुल रीति की भांति अपने अंतिम समय तक बार समय-समय पर हमारा मार्गप्रशस्त करते रहे। महारानी लक्ष्मी बाई कन्या महाविद्यालय में अपनी स्नातकोत्तर की डिग्री के दौरान मैंने ''समकालीन भारतीय रेखांकन'' विषय पर अपना लघु शोध कार्य पूर्ण किया था । मैंने अपने शोध के दौरान पाया कि मेरे विषय को विस्तार देने के लिए सर ने मेरे मस्तिष्क को

कुछ ऐसे सँवारा जैसे जौहरी अपने कीमती जेवर को आग में तपाकर चमकाता है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि उन्होंने मुझे ही नहीं अपितु मेरी कक्षा की सभी छात्राओं में अन्तर्निहित कला सामर्थ्य को पहचाना, और उसे उनके अंदर विद्यमान हुनर से अवगत भी करवाया। महाविद्यालय के शैक्षणिक भ्रमण के दौरान स्मारकीय स्थलों के बारे हमें बताते हुए मैंने पाया कि सर ऐतिहासिक स्मारकों को स्मरण करते हुए, उस समय में ही खो से जाते थे।

सर के प्रोत्साहन का हम सभी छात्राओं पर कितना गहरा असर था, ये इस बात से ही साबित हो जाता है कि मेरी पूरी कक्षा ने अपना एक समूह बनाया, और भोपाल तथा इंदौर में अपने चित्रों को प्रदर्शित भी किया, जो सर की कोशिशों का ही परिणाम था। अन्यथा एक सत्र के सभी विद्यार्थी एक मंच पर एक साथ काम करें, ऐसा आजतक मुझे कहीं भी दिखाई नहीं दिया। एक शिक्षक और पिता कि तरह उन्होंने हर मोड़ पर हमें प्रोत्साहित किया, परिणाम स्वरुप हमारी समूह प्रदर्शनी बहुत ही सफल रही । मूलरूप से देखूं तो वे हमारी सफलता में अपनी स्वयं कि सफलता देख रहे थे, बिलकुल जैसे एक पिता अपने बच्चों में अपने सपनों को साकार करना चाहता है । प्रदर्शनी के दौरान उनके चहरे कि प्रसन्नता को आज भी मैं महसूस कर सकती हूँ। जैसे सारी दुनियां को बताना चाहते हों कि 'देखो ये मेरे विद्यार्थी हैं'। 1990 में अपने स्नातकोत्तर से आज 30 वर्ष उपरांत भी मैं उनकी आँखों में अपने विद्यार्थियों के लिए वही सपना देखती थी। हाल ही में उन्होंने अपने अथक प्रयासों से अपने उम्दा विद्यार्थियों को पुन: एक सूत्र में पिरोया, और जाते जाते हमें फिर से एक मंच प्रदान करते हुए मानों अपनी कलात्मक जागीर हम विद्यार्थियों में बाँटते हुए बोल रहे हों ... अब मेरे सपनों को मेरे सभी छात्राओं को पूरा करना है।

प्रो. राजाराम अपने विषय के जितने माहिर थे, उतने ही शालीन और शांत भी थे । मैंने कभी भी उनको किसी विद्यार्थी को डांटते नहीं देखा । वे जब तक पूर्ण आश्वस्त नहीं हो जाते थे, तब तक किसी चित्र को अच्छा नहीं बोलते थे, ना ही विद्यार्थी के काम में अपने बुरुश लगाते थे । अनेक तरीकों से वे कोशिश करते थे कि छात्राएं स्वयं ही कला के मूल तत्व को पहचानें। उनसे ही मैंने यूरोपीय प्रभाववादी तकनीक का ज्ञान प्राप्त किया, जो आज मेरी अपनी कला शैली का भी मूलभूत आधार है।

इसी संदर्भ में समकालीन चित्रकार एवं आलोचक तथा मेरे गुरु प्रो राजराम का एक प्रयोग यहाँ उल्लेखनीय होगा- उनका मानना था कि विश्व की प्रत्येक विविधता एक तात्विक सूत्र में बंधी है। कलाओं का तात्विक एक्य कोई नई बात नहीं है। परंतु इस एक्य का प्रायौगिक प्रदर्शन उल्लेखनीय है। प्रस्तुत प्रयोग में चित्रकला एवं नृत्यकला में व्याप्त तात्विक समानता स्पष्ट होती है। नर्तक के पाँव ताल के साथ ज़मीन पर थाप देते जाते हैं। वे कभी आधे, पूरे, सीधे, तिरछे, आगे, पीछे ज़मीन पर पड़ते हैं।

पाँवों कि इस छंदमय गति को हम देखते- सुनते एवं अनुभव करते हैं। इसी दौरान पदचाप ज़मीन पर एक छंदमय रूपाकार बनाते से प्रतीत होते हैं। इसी विचार को लेकर प्रो राजराम द्वारा किए गए प्रयोग में 10 फुट एवं 20 फुट व्यास के अर्धवृत्त में प्रसिद्ध मणिपुरी नर्तक श्री नवचंद्र सिंह जी ने बुरुश संघातों के समान रंग-सिक्ती पदचापों के साथ मुक्त नृत्य किया। एवं अंत में उनके पदचापों से प्राप्त आकारों को राजाराम जी द्वारा एक चित्र का रूप दे दिया गया। जो चित्रकला एवं नृत्यकला के छंदात्मक एक्य को प्रदर्शित करता है।

प्रो. राजाराम का एक अन्य योगदान तथा प्रयोग चित्रकला के क्षेत्र में उल्लेखनीय होगा – एनामल रंगों में चित्रित एन-टोन चित्रण । जिसके बे में उन्होंने बताया है कि – प्रस्तुत चित्रण शैली में विभिन्न रंगों का चित्र में कुछ इस प्रकार से प्रयोग किया जाता है कि सीधे तौर पर देखने पर जो चित्र रंगीन दिखाई देता है, वही चित्र श्वेत-श्याम छायाचित्र में एक ही तान या टोन का दिखाई पड़ता है।

मैं अंत में यही कहना चाहूंगी कि मेरी कला की समझ ही मेरी जीवन शैली है जो मुझे राजाराम जी के आशीर्वाद से प्राप्त हुई है। मैं ईश्वर से प्रार्थना करूँछगी कि मुझे हर जन्म में राजाराम सर ही गुरु के रूप में प्राप्त हों। मेरी कुछ स्वरचित काव्य पंक्तियाँ मैं अपने गुरु को समर्पित करना चाहूंगी । मुझे लगता है मानों मुझे प्रोत्साहित करते हुए कह रहे हों –

निर्झर बन उन्मुक्त गगन से, बतियाते चलते जाना है,
कभी उछलते, कभी फिसलते, मन-माफिक बहते जाना है।
अरे मुसाफिर अरमानों के, बस आगे बढ़ते जाना है।

ऊंची एक कुलांच मारकर, जो नीचे तक बह जाना है,
अरमानों के गलियारे को, रोमांचित करते जाना है।
अरे मुसाफिर अरमानों के, बस आगे बढ़ते जाना है।

बौछारों में खिल जाना है, ओस का बदल बन जाना है,
तपते नभ कि धूप छानकर, रजत-कणों में बंट जाना है।
अरे मुसाफिर अरमानों के, बस आगे बढ़ते जाना है।

बूंदों की बौछारों को फिर, खुले चमन पर बिखरना है,
माटी संग मिल शुष्क ज़मी की, सभी फिज़ा महका जाना है।
अरे मुसाफिर अरमानों के, बस आगे बढ़ते जाना है।

– चित्रकार, शिक्षाविद, साहित्यकर्मी , भोपाल, मध्य प्रदेश
मो. 06283449684

■

पुण्य-संस्मरण

कला के अविरल पुरोधा : प्रो. राजाराम

विनय सप्रे

मेरी पहली भेंट स्व. राजाराम सर से मेनिट में विश्व विद्यालय द्वारा आयोजित एक चित्रकला प्रतियोगिता के समय हुई थी ,इससे पूर्व मैंने उनके द्वारा अरुण गवान्दे के लैण्डस्केप पर की गई समीक्षा पढ़ी जो प्रमाणिकता से की गई थी। उसके कुछ ही दिनों बाद मेरे चित्रों (लैण्डस्केप)की प्रदर्शनी थी, तब श्री लक्ष्मण भाण्ड सर ने मुझ से कहा कि मैं अपने पेन्टिंग की समीक्षा राजाराम सर से लिखवाऊं। मैने सर से अनुरोध किया ।अपनी व्यस्तताओं के चलते वे मेरे घर आकर सभी लैण्डस्केप देखकर प्रसन्न हुए। उन्होंने उस पर विस्तृत लिखा भी। जिसमें सर ने पर्सपेक्टिव, छाया प्रकाश आदि पर तो लिखा ही था इन पेन्टिग्स की तुलना प्रसिद्ध कलाकार श्री डी.जे.जोशी जी के लैणडस्केप से की थी। मेरे चित्रो में उन्हे देसी मिट्टी की महक की कमी महसूस हुई जो सर ने स्पष्ट रूप से लिखा। वे मेरे वॉटर कलर के लैणडस्केप और पेपर स्कल्पचर की अक्सर सराहना करते थे।

सर कला पर चर्चा में कभी भी अपने पराये का भेदभाव नही करते थे। जितने अच्छे वे समीक्षक थे उतने ही अच्छे कलाकार भी थे। हमने कई कार्यशालाओ में साथ कार्य किया।

विशेषकर पोर्टेट और लैण्डस्केप की बात करें तो मैंने सर का बनाया हुआ पं.नेहरू का पोर्टेट देखा था, जो बेहद खूबसूरत बना था। रंगों की ताज़गी के साथ ही इसमे चेहरे की त्वचा की ताज़गी और कोमलता बेमिसाल थी इसके बाद भी यह बाजारू तकनीक से हटकर था ।

दुर्भाग्य से यह पोर्टेट दोबारा देखने को नही मिला। जितने सरल और सहज स्वभाव के सर थे वह उनके लैण्डस्केप में साफ झलकता था। सर अक्सर शोभा घारे की और डॉ.सुषमा श्रीवास्तव के चित्रों की प्रशंसा करते थै। निर्णायक के रूप में भी मैने उनके साथ काम किया। वे प्रत्येक चित्र की गहराई से विवेचना कर सही निर्णय देते थे।

उनके विद्यार्थीयों मे वे अत्यधिक लोकप्रिय थे। इसका कारण था कि इतिहास में प्रसिद्ध कलाकारों की सही जानकारी कला जगत से जुडे लोगो तक पहुचे इसके लिये वे सतत प्रयत्नशील रहते थे।

उन्होंने अपने महाविद्यालय (एम. एल.बी.) में 'हम और परंपरा' विषय पर एक कार्यशाला आयोजित की थी। जिसमें उनके प्रोफेसर रहे डॉ. श्री रतन परीमूर के साथ ही स्थानीय वरिष्ठ चित्रकार श्री लक्ष्मण भाण्ड, श्री रमेश नूतन (जैन), श्री सचिदा नागदेवे आदि कलाकारो को आमंत्रित किया था, इसके साथ ही हम सभी कलाकार उसमें सम्मिलित हुए थे। उसी प्रकार राष्ट्रीय इंदिरा गांधी मानव संग्रहालय में भी उन्होंने विश्व विख्यात चित्रकार राजा रवि वर्मा पर एक व्यख्यान का आयोजन किया था। इसमें डॉ.श्री रतन परीमूर जी ने स्लाईड शो के माध्यम से राजा रवि वर्मा के चित्रों कों प्रदर्शित कर यह स्पष्ट किया कि उनके चित्र महज वेस्टर्न पेन्टिंग की नकल नही है जैसा की कुछ तथाकथित स्थानीय कलाकार ऐसी टिप्पणी करते रहते हैं।

सर कलाजगत में फैली राजनीति के सख्त खिलाफ थे। उनका ज़ोर हमेशा इस बात पर रहता था कि कला पर चर्चा करो तो खुल कर करो।

सेवा निवृत्ति के बाद सर तबीयत ठीक न होने के कारण दो बार अस्पताल में दाखिल रहे। ऐसे में भी जब मैं उनसे मिलने गया तो तबीयत पर कम बात होती थी और कला पर लम्बी चर्चा चलती थी।

उनके निधन के कुछ ही दिन पूर्व मैं उनसे मिला था तब अमृता शेरगिल के चित्रों पर चर्चा इतनी लम्बी चली कि ढाई तीन घंटे कब निकल गये पता ही नही चला। दरअसल उनकी हार्दिक इच्छा थी कि इतनी कम उम्र मे अमृता शेरगिल ने जो काम किया उसके लिये वे भारत रत्न की हकदार हैं।

उनके जैसे व्यक्ति को खोना कला जगत की बहुत बडी क्षति है। ऐसा एक भी दिन नही जाता जब उनका स्मरण नही होता है।

■

एक कला शिक्षक : राजाराम जी

अर्चना यादव

शिक्षक मे दो गुण निहित होते है एक जो आपको डरा कर नियमों में बांधकर एक सटीक इंसान बनाते है, और दूसरे वो जो आपको खुले आसमा में छोड़कर आपको मार्ग प्रशस्त करते जाते है। ऐसे ही दूसरी श्रेणी के शिक्षक के रूप में आदरणीय स्वर्गीय श्री राजाराम सर मुझे मिले, जिसके लिए मै खुद को अत्यंत भाग्यशाली समझती हूँ । आपने मुझे खुला आसमान दिया और मेरा मार्ग प्रशस्त करते रहे। आपसे जुड़े बहुत सारे प्रसंग एवं सीख हैं जिन्हें शब्दों में समेट पाना मुश्किल है।

आपने रंगों को देखना सिखाया जो मुझे नहीं आता था । आपके शब्दो में बहुत गहराई होती थी । आपकी कही हर बात मुझे याद है, सर । जब मैं सफलता की ऊँचाई की सीढ़ी पर चल रही थी तो एक सीख जो आपने मुझे दी, उसको मैंने हमेशा के लिए अपने विचारो में उतार लिया ।

आप कहते थे कि ''फलों से लदे पेड़ को झुकना आना चाहिए नहीं तो उनकी टहनियाँ टूट जाया करती हैं, इसलिए व्यक्ति को अपनी सफलताओं पर कभी घमंड नहीं करना चाहिए'।

जब मै बी.ए प्रथम वर्ष की प्राइवेट छात्रा थी तब आप एम. एल. बी. कॉलेज के हेड ऑफ़ डिपार्टमेंट के पद पर आसीन थे ।एक प्राइवेट छात्रा के रूप में मुझे कई रूकावटों का समना करना पड़ता था लेकिन मेरी खुशकिस्मती से मुझे आपके रूप में एक ऐसे गुरु का सहयोग मिला जिन्होंने मेरे जीवन की दिशा को एक नया रंग रूप दिया। मैं आप के लेक्चर को हमेशा अटेंड करती थी। आपके द्वारा बताये हुए हर एक निर्देश को सुनकर पूरी शिद्दत से उनका अनुशरण करती थी। आपके पढ़ाने की शैली बिल्कुल अनूठी थी। आप हमेशा ये चाहते थे की मै अपने अन्दर की प्रतिभा को पहचान कर उसको स्वयं के परिश्रम से और ज्यादा निखारु। आप रास्ता दिखा कर फिर बिल्कुल दूर खड़े होकर मुझे सफल होते देखकर सबसे ज्यादा गौरवान्वित महसूस करते थे। आपने मुझे कभी भी ऊँगली पकड़ कर नहीं चलाया, क्योंकि आप चाहते थे की मैं अपने जीवन में हो या कार्य क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनू । मेरे कला के क्षेत्र का संघर्ष हो, या फिर एक प्राइवेट छात्रा से रेगुलर छात्रा का सफ़र हो, तब मै यह आशा करती थी की आप मेरी सहायता करें, लेकिन आपने मुझे कभी भी प्रत्यक्ष रूप से सहायता नहीं की बल्कि मुझे अप्रत्यक्ष रूप से संघर्ष करने को प्रेरित कर मेरे जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई , जिसके फलस्वरूप मैं कला को लेकर नित नए आयाम को महसूस कर पायी। मैंने आपके अंदर विशाल उर्जा और जीवटता को महसूश किया है जिसको मै अपने जीवन में भी लाने की कोशिश करती हूँ।

एक विद्यार्थी के जीवन में शिक्षक एक ऐसा महत्वपूर्ण

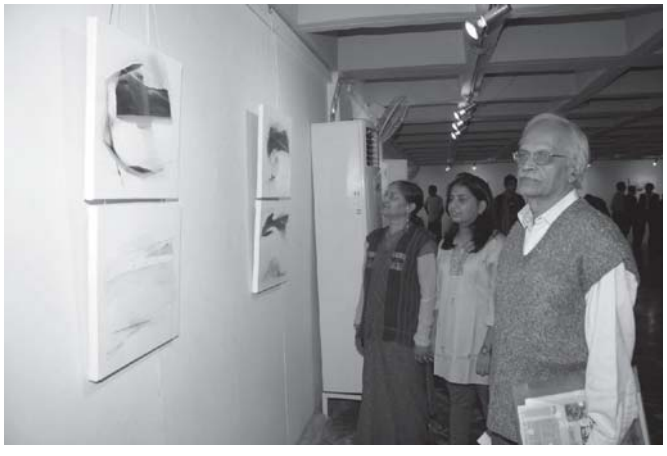

व्यक्ति होता है जो अपने ज्ञान, धैर्य, प्यार और देख-भाल से उसके पूरे जीवन को एक मजबूत आकार देता है। आपने मेरे जीवन में अपने आदर्शो की वजह से एक ऐसी अमिट छाप छोडी़ है जिसके लिए आप मेरे जीवन में हमेशा सर्वोच्च स्थान पर विराजमान रहेंगे। शिक्षक को पता होता है कि सबके पास ग्रहण करने की एक सी क्षमता नहीं होती है इसलिए एक शिक्षक अपने प्रत्येक छात्र की क्षमता का अवलोकन करता है। और उसी के अनुसार वह शिष्यों को शिक्षा ग्रहण करने में मदद करता है। आपको यह बात अच्छी तरह से पता था की मेरे अंदर विषयों को ग्रहण करने की कितनी क्षमता है, और उसी अनुसार आप मुझे काम दे दिया करते थे जिसको उस वक़्त

मुझे करने में ऐसा लगता था जैसे ये मेरे लिए असंभव होगा परन्तु मेहनत और परिश्रम करने के बाद मै आपके द्वारा दिए हुए कार्य / जिम्मेदारियों को अच्छी तरह निभा लेती थी। आप मुझे चाहे जिस किसी प्रतियोगिता अथवा कार्यक्रम में भेज देते, मैं वहा जाकर जरुर भाग लेती थी और आपके मार्गदर्शन से हमेशा ही सर्वोच्च पुरस्कार से नवाजी जाती थी। आप आंखे बंद कर मेरी काबिलियत पर भरोसा करते थे और मैं आपके भरोसे पर खरी उतरने के लिए अपनी पूरी शक्ति के साथ कोशिश करती थी । मुझे सचमुच ऐसा लगता है जैसे शिक्षक में माता पिता की तरह ही ईश्वर के अंश होते है। आपमें मैंने उस ईश्वर का अंश देखा और महसूस किया है। आप एक महान शिक्षक थे। जिन्होंने अपना पूरा जीवन अपने छात्रों को एक गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा प्रदान करने में लगा दिया।

पढ़ाई खत्म होने के बाद भी सर से मेरी बात अक्सर फोन पर हुआ करती थी, कई सालों बाद मैं अपने पति और बेटी के साथ जब आपसे मिलने आई तो आपने मेरा स्वागत ठीक वैसे ही किया जैसे एक बेटी शादी के बाद पहली बार अपने मायके आती है । आपने मेरे साथ वही रस्म किया जो रस्मे एक पिता और माँ पहली बार अपनी बेटी के घर आने पर करते है । पता नहीं कब एक शिक्षक से पिता बन गए और उनका घर मेरे लिए मेरा मायका बन गया । वह दिन जब मै आपकी शिष्य से आपकी सुपुत्री बन गयी, मेरे लिए सदा स्मरणीय रहेगा।

आपके मार्गदर्शन की जरूरत आज भी है मुझे और हमेशा रहेगी। आप हमेशा बहुत याद आते रहेंगे। मुझे पता है आप नहीं आओगे वापस लेकिन फिर भी आपका इंतजार हमेशा रहेगा। आपने मुझे बहुत कुछ दिया है, जिसका मै आपको धन्यवाद भी नहीं कर पाई क्योंकि यह शब्द जो आपने मुझे दिया उसके लिए बहुत छोटा है। हमलोग आप को बहुत याद करते है सर।

– चित्रकार, भोपाल

लघुकथा

एक कलाकार की कहानी

– डॉ. बिनय राजाराम

प्रो. राजाराम प्राय: यूरोप के किसी अनजान गांव से जुड़े एक अनजान कलाकार की कहानी सुनाते थे। दिल को छू जाने वाली कहानी –

एक चित्रकार एक बार घूमते हुए किसी गांव में पहुंचा और एक घर में रात रूकने की अनुमति मांगी। बहुत सोच–विचार करके ग्रामीण ने उस व्यक्ति को रात भर के लिए घर में ठहरने की अनुमति दी और रात्रि भोजन भी कराया।

सुबह जब घर मालिक जागा तब वह आगंतुक उसे कहीं नहीं दिखा। भोर होने के पहले ही वह जा चुका था। मकान मालिक ने देखा कि उसके बगीचे की लकड़ी की बाड़ बहुत सुंदर रंगों से रंगी हुई थी। वह बहुत खुश हो गया।

कुछ दिनों बाद कुछ लोग उसके घर की बाड़ देखने आए। लकड़ी के हर टुकड़े पर रंग और नीचे चित्रकार का नाम लिखा था। लोगों ने उस बाड़ की लकड़ियाँ खरीदनी चाहिए। बल्कि हर कोई वहाँ की एक लकड़ी अपने साथ ले जाना चाहता था क्योंकि उसे रंगने वाला एक बहुत नामी चित्रकार था। घर– मालिक अपने अतिथि की उस महानता से अनभिज्ञ था, जब जाना तब केवल पछतावा ही शेष रह गया।''

मैं आज इस कहानी के मर्म को समझ पाई हूँ कि प्रो. राजाराम जैसे हर सच्चे कलाकार की यही कहानी है।

एक पत्र- स्व. प्रो. राजाराम जी के नाम

ज्योत्स्ना गलगले

मेरे प्रिय सर.....

अब कभी प्रत्यक्ष बात तो नहीं हो पायेगी, इसीलिए पत्र के माध्यम से अपनी बात कहना चाहती हूँ।

मुझे याद है कौस्तुभ के जन्मदिन पर साउथ टीटी नगर के घर पर पहली मुलाकात। सकारात्मक ऊर्जा से भरा, अनोखी सजावट से सजा आपका घर और आप सभी सदस्यों की स्वागत भरी मुस्कान। पीछे छोटा सा सुन्दर बगीचा भी था, 'सप्तवर्णी' में भी बहुत सुन्दर बगीचा है- फलों से लदा, फूलों से सजा और कई तरह की खुशबुओं से भरा, ऐसा लगता है जैसे कण-कण में उल्लास भरा हुआ है, जो कि आपकी उपस्थिति का भास कराता है।

क्या भूलुँ-क्या याद करूँ, अनगिनत संस्मरण जहन में बसे हुए है। एक दूसरे के यहाँ आना-जाना पारिवारिक आत्मीय संबंधों को दर्शाता रहा, कौस्तुभ कस्तूरी के बचपन को, उनकी बाल सुलभ चेष्टाओं को देखते हुए आल्हादित होना आपके चुटेले संवाद भूलाये नहीं भूलते। मुझे आप और बिनय सबसे ज्यादा याद आते है मेरे 'राष्ट्रीय सेवा योजना' के कार्यक्रम अधिकारी के रूप में रहते हुए आपका सहयोग। उस कार्यकाल के दौरान जिला स्तरीय प्रतियोगिता से लेकर राज्य स्तरीय प्रतियोगिता तक आपका जो मार्गदर्शन मिला उससे मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला। 'शुभकामना' पत्रों का विषय क्या हो, कैसे जज किया जा सकेगा प्रदर्शनी किस तरह

आयोजित की जाएगी और भी बहुत कुछ।

ये तो मात्र शुरूआत थी, तत्पश्चात् अगले वर्षों में क्या और कैसे किया जायेगा, जैसे-जैसे स्तर बढ़ेंगे, प्रतियोगिता का स्वरूप क्या होगा, विभिन्न विषय जिसमें पर्यावरण एवं धरोहर समाहित किए गए। उसके बाद आरम्भ से अन्त तक आपका मार्गदर्शन और सहयोग मिलता रहा, समय की चिन्ता किये बिना। मुझे याद है राज्य स्तरीय प्रतियोगिता के समय मुख्य निर्णायक के रूप में आप जो जिम्मेदारी अपने कन्धों पर उठाई वह अविस्मरणीय है।

आधी-आधी रात तक आपने हमारे काम को अंजाम दिया तथा प्रदर्शनी के लिए आवश्यक व्यवस्था सामग्री सहित आपने अपनी जिम्मेदारी पूर्ण की, जैसे कि आप का ही कार्यक्रम हो। प्रयत्न आपका था पर पूरे दल ने प्रशंसा प्राप्त की। वह कायक्रम रासेयो में मील का पत्थर साबित हुआ। मैं व्यक्तिगतरूप से आज भी आपका आभार मानती हूँ।

सफर यहाँ समाप्त नहीं हुआ और आगे भी चलता रहा और अप्रत्यक्ष रूप से भविष्य में भी जारी रहेगा। सोचा तो था सेवानिवृत्ति के पश्चात् आपकी शिष्य बनुँगी पर...

आपकी प्यारी सी मुस्कान एवं आपकी कला को सत्-सत् प्रमाण। आप जहाँ भी होगें वहाँ भी ऐसे ही खुश होगें यही हम सोचते है।

हृदय से आपका हार्दिक धन्यवाद करते हुए।।

आपकी

ज्योत्स्ना जगादले

■

प्रोफ़ेसर राजाराम : एक स्मरण-संस्मरण

नीता विश्वकर्मा

कला गुरु चित्रकार/आलोचक प्रोफ़ेसर राजाराम जी की कला यात्रा का एक विवेकशील एक विश्लेषक और एक संवेदनशील नज़र से हम आंकलन करें तो उससे न केवल हमारा ज्ञानवर्धन होता है हमें संभव है नई दिशाएँ भी मिले और आप स्वयं उस जीवन के बारे में जिसकी कि नज़दीक से पहचान की गई अन्य लोगों को भी परिचय मिले।

मुझे इस बात का एहसास अब और भी गहराई से होने लगा है जबकि हमारे कला गुरु हमारे बीच नहीं है। अपने कॉलेज के शुरुआत में मैं उन्हें केवल एक कला गुरु के रूप में ही जानती थी। तब मुझे पता नहीं था कि आपका कला अध्यापन तो मेरे सम्पूर्ण जीवन पर गहरी छाप छोड़ जाएगा। बचपन से ही मुझे एक सच्चे कलाकार से मिलने व कला संसार को जानने की चाह रही।अपने अध्ययन काल से ही प्रोफ़ेसर राजारामजी का व्यक्तित्व मुझे अत्यंत प्रभावित करता रहा। उनकी कला यात्रा के विभिन्न बिंदुओं को जानना मेरी पढ़ाई का हिस्सा बन गए। आर्ट फ़ोकस नामक कला पत्रिका में सर्व प्रथण आपका जीवन परिचय पढ़ा तो आपकी उपलब्धियों को जानकर आश्चर्य चकित रह गई।जो निर्भीकता वह सच्चाई आपके व्यक्तित्व में थी वही आपकी कला में भी दिखाई देती है। मेरे लिए जो सबसे बड़ी बात दिखाई दी वह मूल्यों के संघर्ष की है। मूल्य जो एक और दूसरे व्यक्ति को जोड़ते हैं। मूल्य जो कला समाज से संबंध रखते हैं।मूल्य जो कलाकृति और कलाकार को परस्पर जोड़ते हैं।

कला और तकनीक के नए प्रयोगों के अंतरगत शुद्धतावादी पहल के रूप में उन्होंने एन टोन पेंटिंग प्रयोग किया। नृत्य एवं चित्रांकन केंद्रित आर्ट हैपनिंग प्रयोग वनस्थली विद्यापीठ में किया।उन्होंने संगीत चित्रांकन प्रयोग श्रंखला तैयार की जिसमें रागों को सुनने से बने बिम्बों को चित्रांकित किया।ककला और तकनीक के अनेकों विश्लेषणात्मक प्रयोगों द्वारा स्वर और चिंतन पर आधारित कृतियाँ प्रस्तुत की है। पोट्रेट चित्रांकन में उनकी विशेष अभिरूचि रही है। उन्होंने जहाँ भी हाथ रखा ईमानदारी से काम किया।यही उनका जीवन दर्शन है।

सर हमेशा इस बात पर ज़ोर देते थे जो आप है वही कला में प्रस्तुत होना चाहिए। कला और जीवन एक दूसरे के पूरक हैं। महारानी लक्ष्मीबाई कन्या महाविद्यालय में हम छात्राएँ जब कला विभाग की खिड़की से दूर तक फैले तालाब को निहारते हुए लैंडस्केप बनाया करते थे तब सर नेतालाब के सौंदर्य को प्रत्यक्ष तालाब किनारे ले जाकर दृश्य चित्रकला का जो स्वाद चखाया था वो हम सभी छात्राएँ आज तक नहीं भूली है। हम सबकी बंद खिड़कियों को खोलकर प्रकृति का सौंदर्य बोध करवाया।

मुझे कई बार सर के द्वारा चित्रकला कीलाइव प्रस्तुति देखने का सुअवसर मिला है। कलर पैलेट में जो रंग निकलते थे वो भी इतने सुनियोजित होते थे कि सर पहले से ही जानते थे कि चित्र में कहा कितना रंग ख़र्च होगा। विद्यार्थियों से मेहनत करवाने में कोई कसर नहीं छोड़ते थे ।यह बात उनके हर विद्यार्थी को बेहतर तरीक़े से पता ही होगी। उन्होंने विद्यार्थियों पर कभी भी अपने विचार ज़बरदस्ती नहीं थोपें। मॉडर्न आर्ट के बारे में सर हमेशा कहते थे चित्र बनाते समय किसी की नक़ल नहीं होनी चाहिए वह तो आपके अंदर से ही उपजेगा। प्रकृति चित्रण करते रहिए वही से आधुनिक कला का जन्म होगा। कोई भी स्टाइल या शैली आपके व्यक्तित्व का परिचय देती है इसलिए अपनी शैली को स्वयं ही प्रयास से विकसित कीजिए।

सर हमें प्रतिदिन 100 स्केचिंग का टारगेट देते थे।उनके अनुसार स्केचिंग ईश्वर की पूजा करने जैसा था। रोज़ सुबह कॉलेज में सबसे यही पूछते थे आज स्केचिंग की या नहीं।और इस तरह निरंतर अभ्यास करवाते हुए सर ने सच में मेरे अंदर एक ऐसा आत्मविश्वास भर दिया था कि मुझे लगता था अब मेरे जीवन का एक उद्देश्य मिल गया है। सर ने अपने विद्यार्थियों को कभी भी कूप मेंढक बनने नहीं दिया। बल्कि कला जगत की गतिविधियों को जानने, कलाकारों से मिलने के लिए हमेशा प्रोत्माहित किया। इसी के

फलस्वरूप मैंने भोपाल स्थित इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय द्वारा आयोजित विभिन्न लोक कला शिविरों मेंभागीदारी की।इससे मुझे लोक कला वलोक कलाकारों को समझने का अवसर मिला। वर्ष 1995 में पचमढ़ी में कला वसुधा संस्था द्वारा आयोजित भारतीय कला एवं संस्कृति पर आधारित अंतरराष्ट्रीय कार्यशाला में हिस्सेदारी का सुअवसर भी मिला जहाँ मुझे विभिन्न कला रूपों के परिचय के साथ प्रोफ़ेसर राजाराम जी की कला व शोध कार्यों को जानने का अवसर मिला।

सर कॉलेज में भी विभिन्न कलात्मक गतिविधियों से हम विद्यार्थियों में उत्साह बनाए रखते थे। 15अगस्त 1995 में गांधीजी के 125 वे जन्म वर्ष के उपलक्ष्य में गांधी आत्मकथा शिविर का आयोजन करवाया गया । इस शिविर में 5 फुट चौड़े व 40 फुट लंबे ज़मीन पर बिछे पेपर रोल पर हम छात्राओं के साथ कॉलेज के विभिन्न अध्यापकों ने अपनी अभिव्यक्ति दी। सभी ने अपने अपने दृष्टिकोण सेगांधीदर्शन कोदर्शाया। स्क्रॉल पर रंगों का खेल देखते ही बनता था।

1999 में हम आठ छात्राओं ने दृश्य चित्रकला प्रदर्शनी का आयोजन किया था इस प्रदर्शनी के माध्यम से मैंने सर से बहुत कुछ सीखा। अपने कॉलेज अध्ययन पूर्ण होने के बाद अगले वर्ष ही मुझे उस विभाग में अध्यापन का मौक़ा भी मिला। तब मैंने स्वयं को बड़ा ही धन्य माना कि मुझे सर से सीखने का और भी समय मिला। सर और बिनय मैडम के सानिध्य में मैंने कई कला व साहित्य के कार्यक्रमों को देखा सुना वह समझा। उनकी शिक्षा के फलस्वरूप मुझे एक नया आत्मविश्वास प्राप्त हुआ जिसका उदाहरण मैं स्वयं अपने पैरों पर खड़ी हो पाई। आज मैं जवाहर नवोदय विद्यालय शाजापुर मध्य प्रदेश में एक कला शिक्षिका के रूप में कार्यरत हूँ। उन्होंने मुझे एक बार लिख कर दिया था कि प्रकृति से गुफ़्तगू जारी रखे और वही सौंदर्यबोध फैलाएं भी।

मैं जब भी सर के घर जाती थी हमेशा लेखन सृजन कार्य में व्यस्त ही देखा। सर के घर पहुँचते ही एक अलग ही कला साहित्य का वातावरण नज़र आता था। हमेशा व्यस्त रहने के बाद भी सर इतनी आत्मीयता से हम सभी से मिलते बातें करते पारिवारिक समस्याएं भी सुनते और कला सृजन की तरफ़ प्रोत्साहित करते थे। उन्होंने अपने जीवन में कुछ कठिन निर्णय भी लिए चाहे वो पारिवारिक हो या कला जगत के।और उनके किसी भी निर्णय का प्रभाव अपने लेखन सृजन पर पढ़ने नहीं दिया। अपने दुख को सहन कर के सृजन लेखन कार्यों में सक्रिय रहकर अपने आदर्शों को चरितार्थ किया।

प्रोफ़ेसर राजाराम जी कीकला यात्रा का बहुत बड़ा हिस्सा मध्य प्रदेश के कला जगत के लिए समर्पित है। देश विदेश से हासिल ज्ञान का सदुपयोग उन्होंने मुख्य रूप से मध्य प्रदेश के रुपँकर कला क्षेत्र के लिए ही करना चाहा। इस क्षेत्र के विपरीत परिस्थितियों से सृजन धर्मियों को उबारने की कोशिश की।

वे जिस स्थान से भी जुड़े वहीं कला के प्रति प्रतिबद्धता को ही सर्वोपरि रखना चाहा। चाहे वह अंतरराष्ट्रीय कला मंच भारत भवन से जुड़े हों संस्कृति विभाग से जुड़े हों या कला शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े हो हर जगह कला के प्रति प्रतिबद्धता से ही प्रयत्न किए। उन्होंने मध्य प्रदेश के कला हस्तियों को उनके आसान पर आसीन देखना चाहा जिन्हें यहाँ की ज़मीन ने दरकिनार किया।जो स्थान उन हस्तियों को मिलना चाहिए उसके लिए उन्होंने संघर्ष किया चाहे उसकी कोई भी कीमत चुकानी पड़ी हो।

प्रोफ़ेसर राजाराम में न केवल कला के इतिहास के प्रति सच्ची संवेदना थी गहरी समझ भी थी और इसी के चलते उन्हें भारत भवन में रहने और बाहर निकल आने के बाद भी ईमानदारी से अपने पुरखों की संपदा को अबेरने का काम किया ।

मैं सोचती हूँ आख़िर कला के प्रति एसी कौन से प्रतिबद्धता है जो कला क्षेत्र में उन्हें औरों से भिन्न एक कठिन राह चुनने के लिए प्रेरित करती रही। जबकि सामान्यत: सभी अपना हित साधने हैं हेतू अपना कार्य करते हैं और अपने आस पास से आँखें मूँद कर तथा कथित उपलब्धियां बटोरते रहते हैं। अन्याय के प्रति चुप्पी साधे रहते हैं। क्योंकि बोलेंगे तो उनका नुक़सान होगा। मैं महसूस करती हूँ कि मध्यप्रदेश में उनकी कला यात्रा का समीक्षात्मक अध्ययन आज के समय में होना आवश्यक है। उनके चिंतन सृजन योगदान और उपलब्धियों का यदि मध्य प्रदेश में ही उचित आकलन नहीं हो पाया तो यह उपलब्धियां समय की परतों में छुपी रह जाएंगी।

प्रोफ़ेसर राजाराम ने कभी भी कला के फ़ैशन में बहना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने जो भी सृजन किया उसके पीछे उनका बौद्धिक चिंतन रहा है। आज अधिकांश कलाकार एक नक़लची मानसिकता को लिए चिंतन और कला मर्म की अवहेलना कर रहे हैं। वे ना तो आधुनिक कलाकारों जैसे पिकासो, मातिस आदि के नव सृजन के पीछे की मानसिकता को समझ पाते हैं और न ही स्वयं भारतीय प्राचीन या मध्यकालीन कलाकारों के सृजन की मानसिकता को समझते हैं जहाँ वे कला शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता रहे।

मैंने अपने अध्ययन काल से ही प्रोफ़ेसर राजाराम के

कलाकार व्यक्तित्व व कला शिक्षक व्यक्तित्व दोनों रूपों में निष्पक्षता देखी है। कला के मामले में कभी भी उन्होंने भेदभाव नहीं किया। वे प्रत्येक विषय का विश्लेषणात्मक अध्ययन करके ही किसी निर्णय पर पहुँचते।

वर्ष 1992 से आज वर्ष 2021 तक 29 वर्षो से मैं अपने गुरु प्रोफ़ेसर राजाराम जी एवं उनके परिवार से जुड़ी रही हूँ। हर सदस्य से मुझे बहूत ही स्नेह मिला है। मैडम बिनय राजाराम हमेशा एक माँ की तरह स्नेह देती रही, कभी सहेली बनकर तो कभी गुरु के रूप में मार्ग दिखाती रही ।सर और मैडम के साथ जब भी बैठक होती तो अक्सर उनकी बातें, नोक झोंक, कला साहित्य की बातें सुनकर लगता कि इस दुनिया में जोड़ी हो तो आप दोनों जैसी। मैंने इतने सालों में कभी भी थका हुआ नहीं देखा। मैडम का साहित्य क्षेत्र में भी सक्रिय रहते हुए परिवार को सँभालना मुझे अधिक प्रभावित करता रहा।

अक्सर मैं बिना फ़ोन किए ही सर के घर पहुँच जाती थी,व्यस्त होते हुए भी इतना आत्मिक स्वागत मुझे दोनों से मिलता। आपका घर सच में मुझे एक मंदिर सा अहसास कराता रहा। आज जब कला गुरु हमारे बीच नहीं हैं तब उनकी कही बातें रात दिन याद आती है। कितनी गंभीर बातें वे कह गए और तब मैं इतनी गहराई से समझ नहीं पाई। कला जगत मे उनका उच्च स्थान है, परंतु सही अर्थों में मध्य प्रदेश का समूचा कला जगत प्रोफ़ेसर राजाराम के कला चिंतन और सृजन की लंबी जीवन यात्रा के साथ न्याय कर पाया है या नहीं। उनके कलाजगत को दिए गए योगदान के साथ क्या न्याय करपाया है ? यह गम्भीर चिंतन का विषय है ।एक सच्चे कलाकार व सच्चे आलोचक को कैसा होना चाहिए वह स्वयं अपना जीवन जीकर बताकर चले गए, ।अब उनके दिखाए रास्ते पर चलकर अगर हम अपना शेष जीवन कला जगत को समर्पित करें,तभी सच्चे अर्थों में सर के प्रति हम श्रद्धांजलि दे पाएंगे ।

अभी कई स्मृतियाँ शेष...

– लेखिका कला शिक्षिका हैं।
जवाहर नवोदय विद्यालय, शाजापुर, मध्य प्रदेश

पुण्य-संस्मरण

कला क्षेत्र के नायक – डॉ. राजाराम

डॉ. प्रीति जैन

यह हमारे लिए हर्ष का विषय है कि डॉ. राजाराम के कला के क्षेत्र में कुछ कहने का अवसर मिला है। डॉ. राजाराम, चित्रांकन के क्षेत्र में मध्यप्रदेश में एक जाना-पहचाना नाम है। उनका नाम न केवल सम्पूर्ण भारत में अपितु विश्व में विख्यात है। क्रोएशिया, इटली, वॉशिंगटन, ग्रीस, ग्रीक, जर्मनी, केम्ब्रिज मोनास्ट्रीज में इनकी चित्रांकन की प्रतिभा का डंका बजता रहा है।

कला शिविरों, कला गोष्ठियों, कला संबंधी विपुल लेखन विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन, आकाशवाणी-दूरदर्शन पर कला संबंधी प्रसारण और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, पत्रों के माध्यम से कला संवाद इनकी रचना शैली की पराकाष्ठा थी, जो इनके प्रमुख कार्य थे।

कला संकाय के उत्थान हेतु इन्होंने विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों में परीक्षा पद्धति को पुर्नगठित किया है। मध्यप्रदेश सरकार के संस्कृति विभाग में आप महत्वपूर्ण पद पर रहे हैं। आपके द्वारा ग्रीस के होली मांऊट आथोस की मोनास्ट्रीज की अध्ययन यात्रा सहित कला-गढ़ों के अवलोकनार्थ व्यापक यूरोप भ्रमण भी किया गया है। आपका कला संबंधी विपुल लेखन (हिन्दी, अंग्रेजी) में प्रकाशन हो चुका है।

आप न केवल हिन्दी, अंग्रेजी के ज्ञाता थे, वरन ग्रीक, फ्रेंच, जर्मन भाषाओं पर भी अच्छी पकड़ रखते थे। आपसे जो भी पहली बार ही मिलता, वह प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता। आपके व्यक्तित्व से मैं भी बहुत प्रभावित हुई।

आपके सौम्य, गंभीर व्यक्तित्व में अपनेपन का खास अंदाज मिला। मेरे शोध कार्य का विषय 'हिन्दी के विकास में जैन साहित्य का योगदान' है, इसके तीसरे अध्याय में एक बिन्दु चित्रांकन-जैन ग्रंथ का भी है, इसमें आपके द्वारा अच्छा मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

आपके इस सहयोग के लिए, इस लेख के माध्यम से आपको धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ।

एक कला सोच प्रो. राजाराम

डॉ सुचिता राउत

बात 1989 की है रूद्रहांजी पर शोधकार्य करने के लिये शोध निदेशन के रुप में मेरे एक वरिष्ठ मित्र ने प्रो. राजाराम जी के नाम का सुझाव दिया। पत्राचार द्वारा सब तय हुआ परन्तु कार्य आरम्भ करने के पहले ही मैं कुछ दुविधा में पड़ गई थी। सर ने उस दुविधा को हल निकालकर मेरा आत्म विश्वास बढ़ाया। इसी बीच मुझे यूजी.सी. से शोधवृत्ति प्राप्त होने का समाचार मिला। अल्प समय में मुझे अपने शोध की रुपरेखा विश्वविद्यालय में प्रस्तुत करनी थी। सर के निदेशन में रात-दिन एक करके यह कार्य यथा समय सम्पन्न हो सका। इस लेख की भूमिका में यह उल्लेख इसलिये महत्त्वपूर्ण है क्योंकि मेरे चयनित विषय 'रूद्रहांजी' के प्रति राजाराम सर का लगाव मुझसे कहीं अधिक था। वे अति उत्साहित थे रूद्रहांजी को लेकर। शोध के विषय की रुपरेखा के साथ ही कला के विभिन्न आयामों, पारम्परिक, समकालिन, आधुनिक कला, कला शिक्षा, विद्यार्थियों, पर्यावरण, प्राकृतिक सौंदर्य आदि अनेक विषयों पर चर्चाओं का दौर आरम्भ हुआ।

छोटी-छोटी बातें या घटनायें व्यक्ति के व्यक्तित्व को चित्रांकित करने के लिये पर्याप्त होती है। प्रो. राजाराम जी कला समीक्षक, कलाकार और कला शिक्षक तो थे ही साथ ही उनके व्यक्तित्व में अनेक खूबियाँ थी। सादगीपूर्ण रहन-सहन बच्चों के प्रति प्यार और बड़ों को सम्मान उनके हृदय में बसता था। जितना विनम्र उनका व्यवहार या बातचीत का तरिका था उतने ही वे सिद्धान्तों के पक्के थे। उसूलों के साथ समझौता तो उनके शब्दकोष में ही नहीं था शायद। उसूलों के लिये वे अपना कितना भी बड़ा नुकसान उठाने के लिये तैयार हो जाते थे पर समझौता नहीं करते थे।

कला विषयक चर्चाओं में जहाँ जानी-मानी हस्तियों पर गम्भीरता से बात करते वहीं उन कलाकारों को जो शान्त भाव से कला में मग्न होकर अपना संसार रच रहे हो, को भी वहीं सम्मान देते। ढोलयुग के पैतरों से परे कला के लिये कला कर्म करने वाले कलाकार उनके लिये हमेशा से श्रध्येय रहे। कला गुरु रेगे, दादा कानडे, रूद्रहांजी, डी.जे. जोशी आदि उनके चर्चाओं के विषय में सम्मानित स्थान पर आते थे।

कला और कलाकार विषयक चर्चाओं से समझ में आता था कि वे हर तथ्य का गहराई से निरक्षण करते थे। उसे जाँचते-परखते थे। तभी अपना मत प्रस्तुत करते थे। कला, कलाकार, उसका व्यक्तित्व, समकालीन परिवेश, योगदान, विषय-वस्तु, माध्यम, तकनीक आदि सभी उनके परखने के बिन्दु होते थे, जैसा कि मैंने अपने शोध के दौरान भी अनुभव किया। एक सटीक समीक्षक की तरह लिखे उनके लेख उसके उदाहरण है।

डी. जे. जोशी पर लिखी उनकी ये पंक्तियाँ इसका साक्षात प्रमाण है - 'प्रथम पंक्ति के प्रेशनिस्ट लैण्डस्केप मास्टर।' अपने समय की गाथा के अतिरिक्त डी.जे. जोशी के रंगों में भारत के मध्य क्षेत्रीत्र आदिवासियों, झाबुआ के भीलों का जीवन भी स्पंदित हुआ था। डी.जे. जोशी ने मालवी धूल से भरे रंग और नर्मदा नदी के नीले पानी से चित्राकंन किया था। ..... नयी परम्परा विकसित की जिसमें उन्होंने पाश्चात्य वास्तुपरकता और पौर्वात्य चितंनपरकता को मिला दिया था।....।

वहीं रूद्रहांजी के लिये वे लिखते है - 'उनकी शैली आलंकारिक पद्धति की थी जिसमें भारतीय क्लासिकी अभिप्रायों के प्रति प्यार स्पष्ट दिखता है। आवांगार्द के प्रति उनकी शंकाओं और परम्परा के प्रति स्नेह के बावजूद उनके सभी कामों में उनका व्यक्तित्व बड़ी कोमलता से अभिव्यक्ति पाता रहा।'

कला में खोखलापन उन्हें बर्दाश्त नहीं था बड़ी बेबाकी से उसकी आलोचना करते थे। उनके अनुसार 'आधुनिकता' के विचार को ओढ़ लेना काफी नहीं है उसकी सोच को समझकर अपनाना अहम है। कला सोच की आधुनिक मानसिकता को हम कभी विकसित न करके बस उसका अंधानुकरण करते है।

उनके अनुसार सृजन के साथ चिंतन को भी उतना ही महत्त्व दिया जाना चाहिये। कलाकार को कला सोच के प्रति आस्था

हो, वह स्वतन्त्र चिंतन के लिये तत्पर रहे। तभी मौलिक कीर्तिमानों की श्रृंखला तैयार हो सकेगी।

जहाँ वे कला-चिंतन को महत्त्व देते थे वहीं उन्होंने आधुनिक कला एवं दर्शक के सम्बन्ध का भी गहनतापूर्वक अध्ययन किया। उनके अनुसार आधुनिक कला के नये प्रयोग, नये रूप, दर्शक को आसानी से ग्राहय नहीं होते क्योंकि उसके पूर्वाग्रह, विचार और विश्वास उनके बीच आ जाते है। अमूर्त कला से सामान्यजन की दूरी का प्रमुख कारण बचपन से ही उन रूपों से अनाभिज्ञ होना है। परन्तु प्रयास किया जाय तो इस उलझन को भी सुलझाया जा सकता है। कृतियों की स्पष्ट एवं सटीक व्यख्या जन सामान्य के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। इन व्याख्याओं के माध्यम से श्रेष्ठ कलाकृतियों के निरन्तर सामिप्य के साथ कला के परिष्कृत एवं नये आयामों के विषय में सरलता से समझा जा सकता है। और आनन्द अनुभूमि प्राप्त की जा सकती है।

आधुनिक कला में व्यक्तिवाद के कारण कलाकृतियों में विविधता दिखायी देती है। उसे एक सूत्र में बांधना आसान नहीं होता। अत: शब्दों के माध्यम से इसे समझना आसान होगा। भारतीय पारम्परिक शास्त्रीय एवं लोक कला के प्रति उनके मन में अथाह सम्मान व गर्व की भावना थी जो उनकी चर्चाओं में स्पष्ट झलकती थी। आधुनिक काल में भी उसकी निरन्तरता को प्रवाहित रखने पर वे जोर देते थे। ये कलाएँ नदी की तरह निरन्तर गतिमान होती रहे किसी जलाशय के जल की तरह स्थिर न हो, यह सोच उनके मन-मस्तिष्क में पलती थी।

भीम बैठका से अमृता शेरगिल और पूर्व से पश्चिमी कला के इतिहास को खंगाला था उन्होंने। इतना ही नहीं भारतीय रितीरिवाजों उनमें बसे संदेश, घटनायें, कहानियाँ सुनने सुनाने में बहुत रस आता था उन्हें।

प्रो राजाराम जी आज हमारे बीच नहीं है परन्तु उनके लेख, संग्रह और उनका कलामय संसार हमें हमेशा प्रेरित करता रहेगा कला को समझने में।

- विभागाध्यक्ष, कला विभाग, देहली पब्लिक स्कूल भोपाल
सम्पर्क 8109388648

प्रो. राजाराम के जीवन से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण पल

वनस्थली विद्यापीठ के चित्रकला विभाग में प्रख्यात् वरिष्ठ चित्रकार वाई.के. शुक्ला और श्री देवकी नन्दन शर्मा तथा विद्यार्थियों के साथ

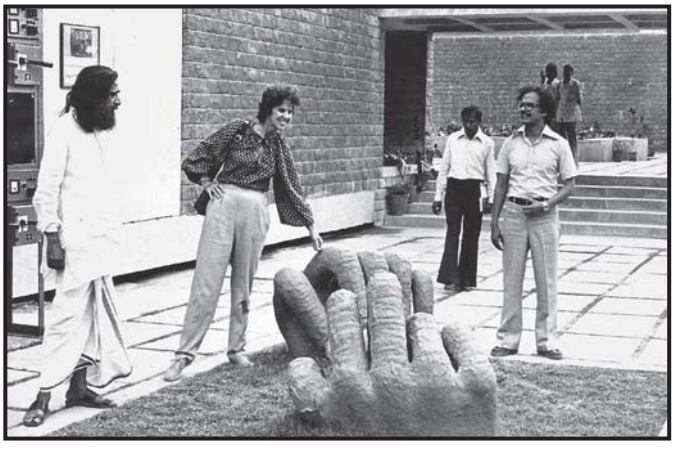

भारत भवन में रूपंकर प्रमुख के रूप में
प्रो. राजाराम

पुस्तक - समीक्षा

'कला समय' पत्रिका में कला, संस्कृति, साहित्य, इतिहास पुरातत्व, लोक साहित्य, पर्यटन, गीत, ग़ज़ल, कविता इत्यादि विषयों पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित की जाती है। प्रकाशनार्थ समीक्षा के साथ पुस्तक की एक प्रति भेजना आवश्यक है।

- संपादक

पुण्य-संस्मरण

राजाराम सर - एक अविस्मरणीय व्यक्तित्व

विनोद श्रीवास्तव

राजाराम सर से पहली बार मिलना उनके नार्थ टी.टी. नगर स्थित शासकीय आवास में हुआ था, सन् अट्ठासी में । बारिश के दिन थे, पत्नी का स्थानांतरण भोपाल हुआ था, मेरी पत्नी, उनकी शिष्या - हम दोनों मिलने गए थे। मेरे अंदर झिझक थी - पत्नी से उनके बारे में तमाम सारी खूबियां, उनकी विद्वता, उनके स्वभाव से जुड़ी बातें सुनी थीं। यूँ भी मैं अपने स्कूल-कॉलेज की पढ़ाई के दौरान सदैव औसत दर्ज का विद्यार्थी रहा, सो किसी भी शिक्षक की नजरों में कभी न चढ़ सका और न कभी नजदीक रहा। इसलिए सर से मिलने जाते वक्त एक संकोच था मन में - क्या बात करूँगा, बात कर भी सकूंगा या नहीं, कहीं वे मेरी कालेज की पढ़ाई-लिखाई के बारे में सवाल न कर लें।

लेकिन ऐसा कुछ न हुआ। उनकी छोटी सी बैठक, केन का सोफा, सामने भारतीय पद्धति की (जमीन पर) बैठक व्यवस्था। दीवारों पर लगी उनकी पेटिंग्स - गहरे काले रंग की फ्रेमिंग और पृष्ठभूति वाली माखनलाल चतुर्वेदी की पोट्रेट, ढेर सारे अखबार, किताबें। सर ने उन्हें व्यवस्थित कर हमें बिठाने का स्थान बनाया। उनका स्मित हास्य, आत्मीयतापूर्ण बातचीत का अंदाज और हल्की-फुल्की बातें - मेरे अंदर का संकोच और झिझक न जाने कब तिरोहित हो गया। मैं बेतकुल्फ्होकर उनसे बातें करने लगा। उन्होंने एक पेटिंग जो हाल ही में बनाई थी, मुझे दिखाई। उसमें पीले, लाल और हरे रंग के ढेर सारे बड़े-बड़े बिम्ब नजर आ रहे थे और नेपथ्य में काला धुंधला रंग। मुझसे उन्होंने पूछा कि इस चित्र में क्या बनाया है - आप समझे ? मैं भला क्या समझता ! मैंने कहा मैं चित्रकार तो हूं नहीं, मैं क्या बता सकता हूं ? उन्होने कहा अनुमान लगाइये - मैंने अपने दो-तीन अनुमान बताए। वे बोले - ये मैंने इंदौर में रात को जब ऑटो किसी रेडलाइट सिग्नल पर खड़े होते हैं-उस दृश्य को पेटिंग के जरिये दिखाया है। टेढ़े-मेढ़े-सीधे खड़े ऑटों की कतारें, उनकी हैडलाइट्स और सिग्नल की लाइटें और पृष्ठभूमि में रात का अंधेरा। उनकी दृष्टि पाकर जब मैंने पुन: उसी पेंटिंग को देखा तो मेरे सामने वह चित्र जैसे सजीव हो उठा।

वार्तालाप के बीच में उनकी प्रिय ''रूला'' आ गयी। उसका आकार देखकर मैं मन ही मन सहम गया, वे संभवत: मेरे भय का समझ गये और निश्चल भाव से मुझे आश्वस्त किया - चिंता नहीं कीजिए, ये कुछ नहीं करेगी। पल भर बाद ही ''रूला'' मेरे बगल वाली कुर्सी पर विराजमान थी। उनके निवास पर हमेशा डॉग रहे, उनसे सर को बड़ा स्नेह था, वे उन्हें ''स्वान्'' कहकर पुकारते।

एक बार हमारे घर, जब हमने नया घर लिया था, उनका आना हुआ। बातें हो रहीं थीं - एकाएक बोले - विनोद जी आपको ये स्विचबोर्ड कुछ अखर नहीं रहा ? मैंने गौर से देखा हमारे डाइनिंग हॉल में लगा स्विचबोर्ड टेढ़ा है। मैंने सफाई दी - सर, ये तो बिल्डर का काम है, वे लोग ध्यान थोड़े ही देते हैं ? वे बोले-पर रहते तो आप लोग हैं घर में, रोजाना इसे देखते होंगे। मैंने महसूस किया कि सर ने इशारों में ही बहुत बड़ी सीख हमें दे दी है - ठीक तो कहा था उन्होंने - किसी ने अगर कोई गलत चीज कर दी है तो ठीक तो उसे हम कर ही सकते हैं।

मुझे याद है जब उन्होंने अपने निवास ''सप्तवर्णी'' का निर्माण कराया। जब भी मुलाकात होती सर ठेकेदार के प्रति नाराजगी जाहिर करते। उन्होंने भवन के प्रथम तल पर जाने वाली सीढ़ियों को अपेक्षानुरूप न पाकर उन्हें एक से अधिक बार तुड़वाया। भवन निर्माण पूर्ण होने पर जब हमें सर ने दिखाया तो हमारे लिए अनेक चीजें कौतूहल का विषय थीं - उसकी डिजाइन, खिड़कियों की ग्रिल्स, सीढ़ियों के पत्थर, उनका लॉन, छोटा-सा मत्स्य कुण्ड, अनेक वृक्ष, बेलें - घर जैसे उपवन।

भवन में उनके निवास प्रारंभ करने के कुछ समय पश्चात् जाना हुआ तो देखा उनके बैठक हॉल के एक स्तंभ पर जिसकी ऊँचाई करीब 15-16 फट होगी- तत्समय भारत के प्रधानमंत्री माननीय श्री अटलबिहारी बाजपेयी की पेटिंग बनाई गयी है। वह पेंटिंग इतनी सजीव थी कि उसके बारे में यही कहना काफी है कि ऐसा लगता था मानों अटलजी उस बैठक कक्ष में सशरीर मौजूद हैं।

सर ने एक किस्सा मुझे सुनाया। सेवानिवृत्ति के बाद उनकी पेंशन का कुछ मसला था । बाबू काम के लिए कुछ रिश्वत चाहता था लेकिन सर के व्यक्तित्व को देखते हुए उनसे स्पष्ट कुछ मांग नहीं कर पा रहा था और इधर-उधर की बातें करके उन्हें इशारे से कुछ देने के लिए प्रयासरत था। सर, उससे मिलते, पूछते - मेरे कार्य का क्या हुआ ? वो बहाने बनाता, मगर उसकी सर से कभी सीधे मांगने की हिम्मत नहीं हुई। अंतत: उसने कार्य कर दिया। सर, बिना लागलपेट अपनी बात कहते थे, वे जैसे थे - वैसे नजर आते थे और जैसे नजर आते थे -वैसे ही थे।

उन्होंने अपने सुपुत्र कौस्तुभ को अपनी राह चुनने की पूरी स्वतंत्रता दी। वे अक्सर कहते - अगर सभी बच्चे सिर्फ डॉक्टर-इंजीनियर बन जाएँगें तो बाकी काम कौन करेगा। पर्यावरण के प्रति बहुत संवेदनशीलता उनके मन में थी। कौस्तुभ की पक्षियों में , तितलियों में रूचि देखकर बड़े प्रसन्न होते। जब कौस्तुभ ने अपने क्षेत्र में प्रवीणता और सफलता अर्जित की, उनके लिए वह अत्यन्त गर्व के क्षण थे। मेरी पुत्री की नृत्य में रूचि देखकर कहते - इसे तो नृत्य के क्षेत्र में जाना चाहिए, कहाँ आईआईटी की तैयारी में लगा दिया है इसे ?

सर की यादें, बातें हमेशा याद आती है और आती रहेंगी, बातें और यादें अविस्मरणीय हैं और सदैव रहेंगी।

- लेखक प्रबंधक, अपेक्स बैंक हैं।

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

के सदस्य बने

मैं ..... कला समय पत्रिका का ..... एक वर्ष : 300/- रूपये, दो वर्ष : 600/- रूपये, चार वर्ष : 1000/- रूपये, आजीवन : 10000/- रूपये का सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। पत्रिका का शुल्क रूपये .....

ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर ..... दिनांक ..... संलग्न है।

नाम : .....

पता : .....

.....

पिन : ..... मो.: .....

हस्ताक्षर

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)

(15 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग

जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :

'कला समय' का बैंक खाता विवरण

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

- कृपया सदस्यता शुल्क 'कला समय' के नाम भेजें।
- सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद अगले अंक से पत्रिका भेजना प्रारम्भ की जावेगी।
- सदस्यता शुल्क निम्न पते पर भेजे:- जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016

-प्रबंध संपादक

काकली सम्मान 2019,
ग्रहण करते हुए

दो विभूति आमने-सामने
डॉ. धनंजय वर्मा और प्रो. राजाराम

(1857 का पुण्य स्मरण)
'झाँसी की रानी' और 'ट्विन टावर' चित्रों की
प्रतिकृति-फोल्डर का लोकार्पण
तत्कालीन संस्कृति मंत्री श्री लक्ष्मीकांत शर्मा तथा
श्री रामेश्वर मिश्र 'पंकज' के साथ

प्रभुदयालु अग्निहोत्री एवं ज्ञान पीठ पुरस्कृत
श्री नरेश मेहता से मधुवन संस्था का
'श्रेष्ठ कला आचार्य' अलंकरण
ग्रहण करते हुए

सम्माननीय श्री कैलाश नारायण सारंग को गांधी चित्र प्रतिकृति भेंट करते हुए

हिन्दी भवन, भोपाल में श्री प्रभाकर श्रोत्रिय से सम्मान ग्रहण

कलाकार श्री चिंचवड़कर जी से उज्जैन में सम्मानित होते

'निरंतर' में श्री नीरज जी को पुष्प गुच्छ भेंट करते हुए

ब.वि.वि. के पूर्व कुलपति को 'रक्तकुंड' चित्र भेंट करते हुए

खंगाल कार्यक्रम में अतिथियों के साथ

'कलावर्त' कार्यक्रम, उज्जैन

उज्जैन में स्व. रामकुमार स्मृति सम्मान के अवसर पर कला-चर्चा

श्रेष्ठ पत्र-लेखन पुरस्कार ग्रहण करते हुए

मीरा कला न्यास, इंदौर में स्वागत

के.के. मूस संग्रहालय, महाराष्ट्र में

डॉ. देवेन्द्र दीपक का निदेशक, साहित्य अकादमी के रूप में पदग्रहण पर स्वागत करते हुए

व्यंग्यकार श्री कृष्ण चराटे के साथ

हिन्दी भवन में पंत जी का आशु-चित्र बनाते हुए

म.ल.बा. कन्या महाविद्यालय, भोपाल में तत्कालीन महामहिम श्री शंकर दयाल शर्मा की अगवानी

म.ल.बा. कन्या महाविद्यालय के कला-विभाग में विविध आयोजन

महारानी लक्ष्मीबाई कन्या महाविद्यालय कला विभाग का 'नेक' टीम के द्वारा निरीक्षण

श्री उमावल्लभ षडंगी साहित्यालोचना सम्मान कार्यक्रम में अतिथियों एवं प्रतिभागियों के साथ

स्वदेश समूह द्वारा आयोजित विशेष कार्यक्रम में सम्माननीया वसुंधरा राजे सिंधिया जी को
राजमाता सिंधिया जी का पोट्रेट भेंट करते हुए

सत्य साई महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव में श्रीमती कृष्णा गौर
एवं सत्य साई महाविद्यालय के अतिथियों के साथ

सत्य साई महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव में तत्कालीन संस्कृति मंत्री
श्री लक्ष्मीकांत शर्मा, डॉ. धनंजय वर्मा व श्री विजय संपत के साथ

श्रीमती मृदुला सिन्हा तथा अ. भा. साहित्य परिषद् के अन्य पदाधिकारियों के साथ

माता-पिता एवं बड़े भाई के साथ

'सप्तवर्णी' में कलाकारों का स्वागत

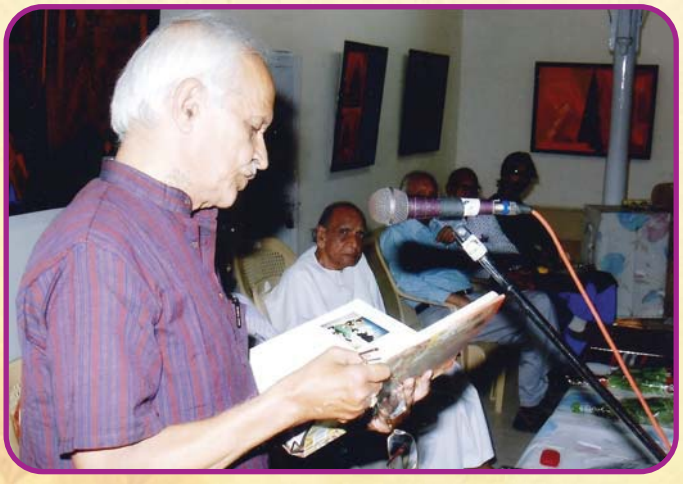

आलेख वाचन

अंतरराष्ट्रीय बौद्ध-संगोष्ठी, भोपाल में पत्र वाचन

एथेंस में दिवाली ➡

ग्रीस के एक गाँव में ➡

ऑर्थोडॉक्स इसाई संत के साथ चर्चा ➡

⬅ एथेंस की गलियों में

⬅ ग्रीस के एक गाँव में 'पास्खा'

⬅ एक ग्रीक चित्रकार के आवास पर

भारतीय राज दूतावास एथेंस में प्रथम सेक्रेटरी श्री रविन्द्रनाथन को कोणार्क-रेखाचित्र भेंट करते हुए

'भारतीय ज्ञान-अध्येता' ग्रीक विद्वान के साथ एथेंस में अपने आवास पर चर्चा करते हुए

प्रसिद्ध लोक कलाविद् श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय के साथ एथेंस में अपने आवास पर

भारतीय राज दूतावास एथेंस, ग्रीस में राजदूत श्री रंगराजन को गांधी का पोट्रेट भेंट करते हुए

नोबेल पुरस्कार प्राप्त ग्रीक कवि एलितिस के साथ उनकी चित्र प्रदर्शनी के अवसर पर

एथेंस के अपने आवास पर विदुषी डॉ. कपिला वात्स्यायन के साथ

मांडू में पतझड़

ऋतु-नर्तकी

कित्तुर की रानी चेन्नमा

खूनी स्वतंत्रता

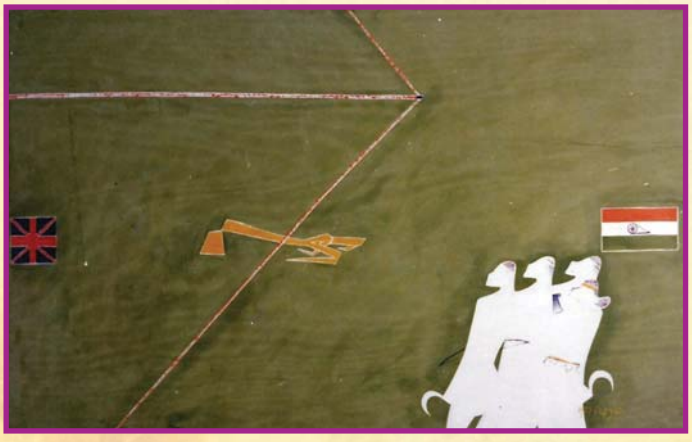

आदिवासी विद्रोह

अयोध्या का रक्तकुंड

रंगीन रेखाचित्र

व्यक्ति चित्र संयोजन

व्यक्ति चित्र

झरोखे में स्त्री

सूखे पेड़ पर तोते (इंस्टॉलेशन)

पोट्रेट

पुण्य-संस्मरण

राजाराम, प्रो. राजाराम, राजाराम सर

प्रीति निगोस्कर

एक ही व्यक्ति का इन नामों से परिचय होता था। एक अत्यंत सीधा सरल और सहज व्यक्तित्व, उतने ही गंभीर विद्वान। कला-क्षेत्र के ज्ञान का भण्डार... जो छवि उनसे मिलते ही परिचित होती थी। बहुत ही सभ्य इंसान, आदर्श गुरु, कला वैज्ञानिक और कला समीक्षक। एक ही व्यक्तित्व के बहुआयामी रूप। समग्र-सम्पूर्ण एक 'उम्दा' उत्कृष्ट कलाकार।

उनकी सादगी, सच्चापन उनके रंगो और स्ट्रोक्स से कैनवास पर अनायास उतर आता था। गुरु-शिष्य के रिश्ते की अनुभूति हमें सर से सन् 1977 में ग्वालियर के मुरार गर्ल्स कॉलेज में हुई। सिर्फ एक वर्ष मैं वहाँ थी। उत्तम शिक्षण पद्धति, आसानी से अपनी भाषा विवेक से सहज तनाव रहित, कला-कक्ष में उपयुक्त वातावरण बना कर चित्रकला में रूचि पैदा कराने वाले थे, हमारे सर 'राजाराम'।

ड्राइंग क्लास से बाहर घूमती लड़कियाँ यह कहते हुए दौड़ कर अंदर आईं कि - नये सर आ गये...पेंसिल, ब्रश पकड़ना, रंग घोलना, सूखे रंगों को कैसे वर्षों सहेजना। बातों-बातों में बताते जाते हम अपना-अपना चित्र बनाते रहते। लड़कियों से (हम इतने छोटे थे पर) बहुत अदब और सौम्य भाषा में वे बात करते थे। बात करते-करते बीच में ही अपनी विशिष्ट बोलचाल के लहजे में हल्का-सा हम लड़कियों की रंग-संगति, विचित्र बनती ड्राइंग पर हंसते हुए कमेंट करते कि सारा क्लास थोड़ा हंस लेता। एक-आध शैतान तो क्लास में होती ही हैं, वो चाहे जो प्रश्न करतीं पर सर मुस्कुरा कर रह जाते। और कभी मौका मिलता तो हल्के से हँसते-हँसते उसे चपत लगा देते। ऐसे थे हमारे सर 'राजाराम।

क्या-क्या लिखूँ, क्या-क्या छोडूँ। हर शब्द के साथ कुछ छूटता-सा लगता है, शब्द कम हैं... सर का सम्मान करने को...विद्यार्थियों के बुद्धि-स्तर को पहचान कर उन्हें सिखाने वाले, कला के प्रति रुझान पैदा करने वाले सफल गुरू ...

उनकी बड़ी इच्छा थी कि मैं बड़ौदा कॉलेज में पढ़ने जाऊँ। उन्होंने और पापा ने सारी औपचारिकताएं पूरी कर प्रवेश के लिए परीक्षा देने मुझे भेजा, बिना किसी तैयारी के...। वहां का महौल देखा, एकदम अलग...। मैंने शायद एक पेपर दिया था फिर गई ही नहीं। मुझे मालूम था सर दूसरे दिन बड़ौदा पहुँचने वाले हैं। सर ने पापा से कहा - मैं कभी वहाँ पढ़ाते हुए भी गर्ल्स कॉलेज-रूम नहीं गया पर प्रीति को देखने गया, कहां चली गई... ! सर ने बिना बताए ही अपने कॉलेज के एक सेमीनार में मुझे मौका दिया...वहां भी मैं ठीक से बोल नहीं पाई पर मन में एक विश्वास जरूर जगा।

उम्र के इस पड़ाव पर आकर समझा कि उनके साथ पापा को भी लगता था कि मैं पहले कलाकार बनूँ पर उन्होंने स्पष्ट ऐसा कहा कभी नहीं। भोपाल में मेरी दूसरी एकल प्रदर्शनी के उद्घाटन पर वे सपरिवार मौजूद होकर मुझे प्रोत्साहित करने को उपस्थित रहे।

वे मेरे परिवार का हिस्सा बन चुके थे। मेरी छोटी बहन से राजनीति पर उनकी जबरदस्त ढिशुम-ढिशुम चलती थी। मेरे पापा से भी उनके काफी घनिष्ठ संबंध थे।

मैं इन दिनों अपने प्रथम गुरू (स्व.) पद्मश्री विष्णु श्रीधर वाकणकर पर एक किताब लिख रही हूं। मैंने सर को मार्गदर्शन के लिए मेसेज किया तो वे बेहद खुश हुए। प्रस्तावना/एडिटिंग के लिए भी कहा तो उनका उत्तर था- बहुत खूब...

मुझे 'ई-मेल और बहुत सामग्री मिली है। क्रमशः चर्चा

करता चलूँगा। खुशी इस बात की है कि समय को सार्थक सिद्ध करने हेतु इतना अच्छा रचनात्मक काम हाथ आ गया। शुभ चिंतन, सृजन की कामना... 22 तारीख का ये उत्तर था और 23 को उन्हें मेरा जवाब था – 'आज के विशेष दिन की हार्दिक बधाई, आप जिए हजारों साल तो हम आपके साए में महफूज़ महसूस कर सकें'।

29 अप्रैल। सर, मैंने सुना कि आप थक कर और हम विद्यार्थियों से परेशान होकर चल पड़े। मुरार कॉलेज के दिन ही अलग थे। पर आप जानते थे पापा के बाद आप ही बड़े थे। आपका मेरा रिश्ता नोंक-झोंक वाला ही था। पर किताब आपके मार्ग-दर्शन में ही पूरी हो मैं ऐसा भरसक प्रयास कर रही थी। ये मेरी इच्छा थी। आपका मुस्कुराना और हंसते-हंसते हमारी गलती और शैतानियां इंगित करना सदा याद रहेगा। आप भी खुश रहें...। सर आपने भी सही दिन चुना 'गरु-वार'।

मेरी किताब की बातचीत के दौरान उन्होंने बताया था कि वे एक बड़े प्रोजेक्ट पर काम कर रहे हैं। मुझे भी शामिल करेंगे। उन्होंने कलाकार 'अमृता शेरगिल' को अपने समय के प्रसिद्ध योरोपियन चित्रकारों के समकक्ष बताते हुए कहा था कि- 'उनकी कला को 'पद्मश्री' दिलाना हैं। उनके कार्य का देश में यही सम्मान हो।' वे उनके रिश्तेदारों के संपर्क में भी थे। इस दिशा में वे काफी सक्रिय थे। मैंने भी कहा था – 'मैं आर्ट ग्रुप्स में पोस्ट कर देखूँगी कि कलाकारों का क्या सहयोग मिलता है?' अब सर के बाद, हम अपने पूर्वजों को कितना सम्मानित कर सकेंगे? पता नहीं।

एक मजेदार बात और बताने वाली है, कि मुरार कॉलेज में सर ने कभी पोस्टर कलर्स को कैसे लम्बे समय तक उपयोगी रखे बताया था – हमने इसे चित्र बनाते-बनाते सुना था। इसीलिए सन् 2002 में खरीदे पोस्टर कलर की बड़ी बॉटल्स का डिब्बा आज भी ताजा है। जैसे कल ही खरीदा हो...उसे हाथ लगाते ही मैं आज भी मुरार कॉलेज पहुँच जाती हूँ। उन्हीं के मार्ग-दर्शन में मेरी छोटी बहन स्मृति भी रही उसने बोल्ड-मोटे ब्रश से शार्प स्ट्रोक्स् और मल्टीकलर के कॉन्ट्रास्ट कॉम्बीनेशन के साथ गज़ब का पोट्रेट बनाना सीखा था। सर वहीं से ग्रीस चले गये थे।

वे अचानक एक दिन भोपाल में पापा को मिल गये। तब पापा भी भोपाल में पोस्टेड थे। सर उन दिनों भारत-भवन में ही थे। भारत- भवन उस समय शहरवासियों के लिये एक बड़ा आकर्षण का केन्द्र था। वहाँ शनिवार को कोई न कोई कार्यक्रम होता रहता था। उसके टिकट सर लेकर रखते थे, और हमारा सारा परिवार समय पर हाज़िर हो जाता था। वह बहुत सुनहरा समय था।

सर का क्वार्टर, दक्षिण तात्या टोपे नगर में था, वहीं से थोड़ी दूरी पर भोपाल का न्यू मार्केट था। एक दिन पापा एक हाफ इम्पिरियल शीट पर चारकोल से बना एक पोट्रेट लेते आए, दिखाते हुए बोले – घूमते-घूमते हम मार्केट से राजाराम जी के यहाँ चले गये थे। वहाँ उन्होंने मुझे यह दिखाया.....मुझे यह बहुत अच्छा लगा। उन्होंने कहा ले जाइये। मेरे पापा एक कल-प्रेमी इंसान थे।

उसे दिखाते हुए बोले – देखो घुंघराले बालों का क्या इफेक्ट है। ऊपर अलग-अलग निकला एक-एक उसका कण देखो कैसे दिया है, चेहरे के ऊपर स्पष्ट दिखता भाव और माथे पर लगा लम्बा तिलक। सारा एक रंग में और रेखाओं से बनाया गया है पर सबका स्वभाव, आकार- प्रकार सिर्फ रेखाओं से कितना स्पष्ट बन पड़ा है। पंडित (पुजारी) जी के कंधे पर सलीके से पड़ा गमछा और कमर से नीचे बंधी धोती, कमर में बँधी गठान और सिलवटों का सही बारीक ऑब्जर्वेशन; अंकन में स्पष्ट दिख रहा है। वाकई एक जीवंत बैठे पंडित जी की हुबहू भावनात्मक रेखाबद्ध प्रतिकृति थी यह। अब इस तरह की ड्राइंग हुबहू लकीरों से जीवंत भाव के साथ उतारने वाले बिरले ही बचे होंगे।

राजाश्रय खत्म होने के बाद अपने देश में परंपरा चली है कि विद्वता का सही सम्मान, सामाजिक तौर पर उपेक्षित होने लगा है। उसके शिकार मेरे सारे गुरुवर रहे हैं, क्योंकि विद्वत्ता सम्मान लेने के पीछे नहीं भागती.....उसे सम्मानित करना होता है। विद्वान व्यक्ति का सही सम्मान अर्थात देश-समाज का अपना गौरवशाली-इतिहास वर्तमान और भविष्य लिखने जैसा ही है।

मेरी इस तरह रुकती-बहती सर के साथ की यात्रा सन् 1976 में ग्वालियर से शुरू हुई थी। मेरी कला-यात्रा के इन पसंदीदा कला-गुरू ने 29 अप्रैल को इसी वर्ष भोपाल में अंतिम सांस ली। अब लोकरंग के मेले में दूर खड़े कभी राजाराम 'सर' दिखाई नहीं देंगे... देखते हुए कहते कि – 'लगती तो ये प्रीति ही है, देखता हूँ मुझे पहचान पाती है या नहीं' और अपनी परीचित हँसी से स्वागत करते। उनके चेहरे की हँसी और वह गुरु-तुल्य स्नेह भरा चेहरा...आदरणीय है, सदैव रहेगा।

मेरी दो दशकों से छूटी कला-यात्रा को लिखने के कार्य का अचानक अवसर मिला है, मैं इसे सर का ही आशीर्वाद मानती हूं मेरे अपने एक पसंदीदा और अनुकरणीय कर्तव्य वाले कलागुरु के श्रीचरणों में ये आदरांजलि...शब्दांजलि।

– 53. एम.आर. – 1, महालक्ष्मी नगर, इंदौर (मध्य प्रदेश) – 452010,
मो.: 9755042296

■

उस मुलाकात की यादें...

धनंजय सिंह

कविता की एक पंक्ति याद आ रही है – 'निद्रा में रचीं कुछ रेखाएं / स्वप्नों में रंग विधान किया / फिर चित्र बनाकर जाग्रत में / स्वप्नों से उनका मिलान किया।'

जिस भी कवि की यह भावाभिव्यक्ति है वह देश के जाने-माने कला लेखक, समीक्षक व चित्रकार प्रो. राजाराम जी के रचनात्मक जीवन का सार है। दुनिया के महान चित्रकारों पिकासों, पॉल कली, जैक्सन पैलोक व अमृता शेरगिल के खुले मन से प्रशंसक रहे राजाराम जी अपने समय के अनेक कलाकारों, कला- समीक्षकों, कला संस्थाओं के मध्य जाने जाते थे। अतिप्रिय होंने, स्पष्टवादी और विनम्रतापूर्ण व्यवहारिक व्यंग्य-बाण के चलते बड़े-छोटे सभी को अपने विचारों से अवगत कराने की कला की वजह से जो अमिट छाप हृदय पर पड़ती वह 'काटो तो खून नहीं' से बढ़कर होती। यद्यपि उनका एक तकिया-कलाम लगभग जिससे भी मिलते इस्तेमाल कर ही देते जैसे आज मक़बूल फिदा हुसैन को कला-संसार भारत के पिकासो के नाम से संबोधित करता है ठीक उसी प्रकार उनको जिसके भी चित्रों में उत्कृष्ट गुण दिखते वह व्यंगात्मक लहजे मेँ कह उठते अरे तुम तो प्रदेश के पिकासो हो!' बात-बात में ठहाके लेकर वरिष्ठ चित्रकार रमेश आनंद कहते – 'मेरी भारत भवन में लगी कला प्रदर्शनी पर भी उन्होंने मुझसे यही कहा था – 'अरे आनंद तू तो देवास का पिकासो हो गया।' ऐसे थे हमारे राजाराम जी।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक (वर्ष 2000) पूर्ण करने के बाद मेरे अभिभावक व व्यवहारिक गुरु रहे चित्रकार-साहित्यकार जगदीश गुप्त जी ने मुझसे आगे पढ़ाई की योजना जानने की उत्सुकतावश पूछ बैठे – अब बताइए धनंजय आगे पोस्ट ग्रेजुएट किस विषय से करेंगे आपके पास तीन विकल्प है कला, संगीत और हिंदी साहित्य। एक दिन विचारणीय वक़्त दिया, और फिर बोले क्या तय किया आपने मैंने साहित्य से एम.ए. के लिए हांमी भरी तो वे

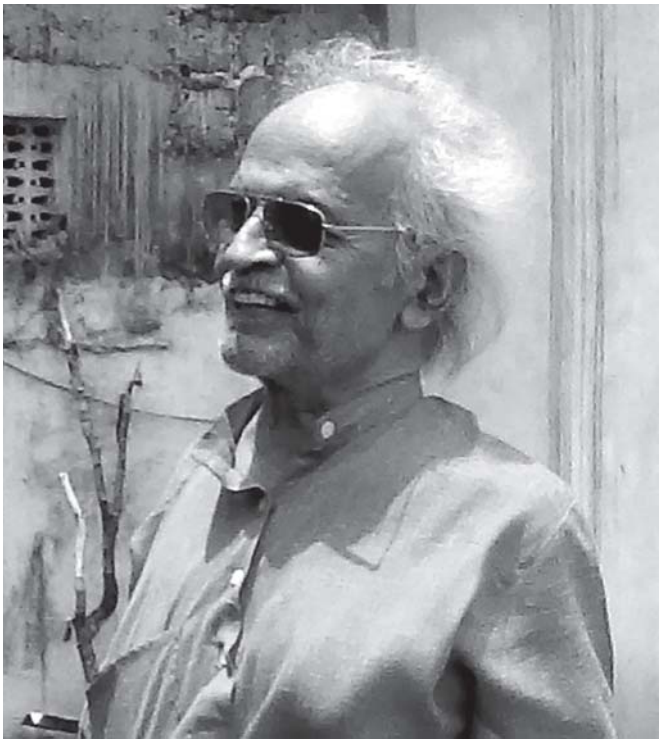

बहुत खुश हुए और तत्काल उन्होंने अपने लेटर पैड पर एक हिंदी विभागाध्यक्ष सत्य प्रकाश मिश्र जी के नाम पत्र के साथ मुझे उनसे तुरंत मिलने को कह दिया और बोले देखो धनंजय मेरे बेटे अभिनव गुप्त मेरी कला के उत्तराधिकारी हैं। मैं चाहता हूँ कि आप मेरे साहित्य के उत्तराधिकारी बनों।

मेरी रुचि साहित्य और कला दोनों में समान रूप से थी – 'मोरे राम भारत दुड़ आँखी' के समान जो आज भी कायम है किंतु कुदरत को तो कुछ और ही मंजूर था। मेरे हिंदी प्रवेश में वेटिंग चल रही थी। तभी इंदौर से प्रतिज्ञा-98 उत्तर- मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केंद्र के कला मेला (1998) में दोस्त बने मेरे कला-मित्र मनोज श. कचंगल अपने कुछ चित्रों को लेकर प्रदर्शनी हेतु वर्ष 2000 में दुबारा आये, और मुझसे कहने लगे कि – आप मेरे साथ इंदौर चलिए और वहीं से चित्रकला की उच्च शिक्षा भी प्राप्त कर लीजिएगा। मैंने उन्हें जगदीश गुप्त जी से हुई बातचीत के संदर्भ को बताया। इस पर उन्होंने उनसे बातचीत कर उन्हें मना लिया, और मुझे इंदौर लेकर आ गए।

मैं जगदीश गुप्त जी के प्रत्येक मनोभाव को पढ़ सकता था क्योंकि उनके जीवन के उत्तरार्ध के कोई 10-12 वर्ष सर्वाधिक मेरे साथ ही बीते थे लेकिन उनके स्वभाव में रचना प्रमुख थी, श्रम नहीं। वे कभी किसी को बाध्य नहीं करते थे और न अपनी इच्छा किसी पर थोपते थे। अंततः माता-पिता, जगदीश गुप्त जी, रामचंद्र शुक्ल जी व प्रोफेसर सुरेंद्र वर्मा आदि का आशीर्वाद लेकर मैं इंदौर पहुँच गया।

समकालीन कला में दो कला समीक्षक एक इंदौर के अनीस नियाजी और दूसरे भोपाल के प्रो. राजाराम को इन दिनों पढ़ा था और सोच लिया था कि शिवमंगल सिह 'सुमन', आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी, चंद्रकांत देवताले, प्रभु जोशी आदि से भी मिलूँगा।

जगदीश गुप्त विशेषांक (अगस्त 200) की कई प्रतियाँ लेकर मैं भोपाल पहुँचा। प्रो. राजाराम जी से फोन पर बातचीत हुई और मैं उनसे मिलने की आतुरता लिए उनके आवास टी. टी नगर पहुंचा । वे स्वयं मुझे रास्ते में लेने आये और अपने साथ अपने निवास ले गए। यह उनसे मेरी पहली मुलाकात थी। जगदीश गुप्त जी का वह विशेषांक उन्हें दिया। वहीं साहित्यकार बिनय राजाराम जी, जो उनकी पत्नी हैं, ने इलाहाबाद, बनारस के कई संदर्भ जगदीश गुप्त जी को लेकर सुनाए। और सुनाना चाहती थीं परंतु उन्हें विश्वविद्यालय भी जाना था। खैर, मेरा ध्येय राजाराम जी से मिलकर कला-संबंधी चर्चा व कुछ जिज्ञासाओं को शांत करना था। समकालीन आधुनिक चित्रकारों में सिर्फ भारत ही नहीं वरन् पश्चिमी कलाकारों के प्रति उनकी गहरी अध्यनशीलता व परख थी। उन्होंने काफी वक्त दिया। अपनी कुछ कलाकृतियों को दिखाते हुए धीरे-धीरे मेरी रचनात्मकता पर भी सवाल पूछते, तो मैं कहता - सर, मैं अतियथार्थवादी चित्र बनाना पसंद करता हूँ। उन्होंने सल्वाडोर डाली, एडवर्ड मोने आदि चित्रकारों के साथ-साथ कला समीक्षक चार्ल्स फाबरी, हारवर्ट रीड आदि का जिक्र करते हुए देवास के चित्रकार अफ़ज़ल, भोपाल के स्वामीनाथन, आदि के साथ-साथ जगदीश गुप्त की प्रागैत्तिहासिक चित्रकला का इतिहास व कला के पदचिह्न ग्रंथों की प्रशंसा करते हुए उनके चित्रों की भी तारीफें की।

अमूर्त पेंटिंग को आधुनिक कला की एक महान उपलब्धि बताते हुए वे बोले - रूप-शुद्धता के अलावा अन्य रूपंकर कलाकृतियों की अतिरिक्त गुणवत्ता और लाक्षणिकता उसकी भाँति-भाँति तत्वों के धारण कर पाने की सामर्थ्यताभिबेक पर निर्भरता है। कवि कालिदास का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा था कि - कवि अपने शब्द-संकेतों की मदद से रसिक को भी सौंदर्यबोध की ऊंचाइयों तक खींच लाता है। यह प्रक्रिया नवसृजन प्रतीक होता है, जिसमें चित्रकार सूक्ष्म अभिव्यक्ति को एक स्थूल या आविष्कृत सृजनात्मक तीसरा ही रूप दे देता है। कुछ किताबें वगैरह दिखाते हुए वे कुछ कहना चाहते थे कि तभी फोन की घंटी बजी, उन्हें विश्वविद्यालय पहुंचना था किंतु वे मेरी आवभगत व जिज्ञासा को समझते हुए देर तक फोन वालों को टालते रहे थे। वे देवास के चित्रकार अफ़ज़ल पठान के कार्यों को हुसैन, रज़ा आदि से अधिक उत्कृष्ट बताते हुए उनके चित्रों में मौजूद रिद्म से खेलने की उनकी प्रवृत्ति पर, अफ़ज़ल साहब की प्रदर्शनी के कैटलॉग निकालते हुए, कहते है कि - यह प्रवृत्ति उनके हर तरह के काम में मौजूद रहती है। किसी स्तर पर अफ़ज़ल के चित्रों में अमूर्तन के बीच झांकते जैविक तत्व भी उजागर हुए हैं। चर्चाओं के बाद वे अपने साथ मुझे लेकर विश्वविद्यालय-परिसर में किसी से मुलाक़ात करने गए और मुझसे बोले धनंजय कुछ देर में हम मार्केट चलेंगे। कुछ खायेंगे-पियेंगे। आप मेरा इंतज़ार करो। मुझे वे काफी देर के बाद दिखे तो मैंने उनसे जल्द जाने का आग्रह लेकर जाना उचित समझा क्योंकि वे अपने साथी अध्यापको एवं विद्यार्थियों के बीच घिरे हुए थे। वे मुझे गेट तक छोड़ने आये। और मैं इंदौर को निकल पड़ा।

इसके कई वर्षों बाद भोपाल में अंतर्राष्ट्रीय टैगोर फेस्टिवल, विश्वरंग-2019 में जब मैं चित्रकार प्रभाकर कोलते जी के साथ बातचीत कर रहा था तभी वे आये। इस बार उन्हें मैं पहचान ही नहीं पाया। देवास के जय प्रकाश चौहान ने बताया कि ये राजाराम जी हैं। बहुत दुबले हो चुके थे वे।

उनकी पत्नी बिनय जी बताती हैं कि वे एक बीमारी से जूझ रहे थे। बमुश्किल बीमारी पर विजय पा चुके थे लेकिन अचानक करोना-काल का संकट उनके परलोकगमन का कारण बन बैठा। किसी के न होने के बाद उसके अभाव के महत्व का एहसास होता है। टी टी नगर का आवास छोड़कर भोपाल के कोलार रोड में एक अनूठा आलीशान निजी आवास बनाकर बेफिक्र की नींद सो गए। उनका जाना कला-जगत में एक पैनी दृष्टि रखने वाले कला लेखक, समीक्षक के साथ-साथ एक प्रबुद्ध चित्रकार को खो दिया है।

अंत में, महाकवि निराला की एक पंक्ति में शब्द इति करना चाहूँगा -

हो चुकीं अब हो चुकीं सब यातनाएँ मुक्त,
रम्य सुरसरि तीर तन-मन मुक्त जीवन मुक्त।

- द्वारा श्री एस.बी.सिंह, अधिवक्ता
132/117, बक्सी कलां, नागवासुकि मंदिर मार्ग,
दारागंज, प्रयागराज (उ.प्र.) - 211006, मो.- 7999413073

■

यूरोपी बिज़ान्तिनी कला की पोषक बौद्ध कला

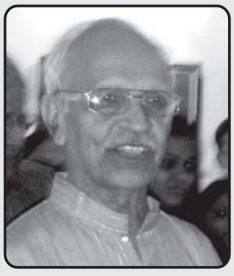

प्रो. राजाराम

1980 में समाप्त होते दशक के अंतिम वर्षों में ग्रीस और उसके उत्तरी क्षेत्र में विद्यमान 'पवित्र आथोस पर्वत' के अपने शोधाध्ययन अभियान में मैंने पाया कि यूरोप के मध्ययुगीन बिज़ान्तिनी आर्थोडॉक्स ईसाई संसार में धर्म, दर्शन, साहित्य, कला आदि सभी क्षेत्रों में 80 प्रतिशत तक भारत, प्रमुख रूप से बौद्ध भारत मौजूद है। बड़े व्यापक पैमाने पर दोनों में कला तत्वों की परस्पर समानताएँ चौंकने वाली हैं। अपने पश्चिम से भारत के सम्पर्क की प्राचीन पूर्व-पृष्ठभूमि, परोक्ष-अपरोक्ष सम्बन्धों की तात्कालिक समकालीन परिस्थितियाँ, व्यापार, यायावरों द्वारा लिखे गए देशाटन वर्णन, राजनयिक व दार्शनिक दूतों की आवाजाही तथा प्रचुरता से उपलब्ध समान, समानान्तर और समानधर्मी विविध सामग्री जिसमें से कुछ के तो अब शोध आधारित निष्कर्ष भी प्राप्त हो चुके, मसलन प्रथम शताब्दी के संस्कृत कवि अश्वघोष रचित 'बुद्धचरितम' की उसके ईसाईकृत धर्मग्रंथ 'वारलाम और योआसफ' तक की यात्रा इस स्थापना को पूरी ताकत से पुष्ट करते हैं कि पूर्व और पश्चिम के इन दो भूभागों, यूरोपी बिज़ान्तिनी और भारतीय के बीच सम्बन्ध सुनिश्चित और प्रगाढ़ थे। यह आज एक सर्वस्वीकृत स्थापित सत्य है कि 'वारलाम और योआसफ' निर्विवाद 'बुद्धचरितम' का ईसाईकरण है। इस दिशा में पिछले वर्षों बौद्ध ईसाई तुलनात्मक साहित्य की अध्येता भोपाल की डॉ. विनय षडंगी द्वारा 5 वर्ष यूनान में रह कर ग्रीक और संस्कृत भाषाओं पर अधिकार सहित 'बुद्धचरितम' और 'वारलाम और योआसफ' ग्रंथों को खंगालते हुए अंग्रेजी में आलेखित 'बुद्धचरितम' एण्ड 'वारलाम एण्ड योआसफ'--ए कंपेरेटिव लिटेररी स्टडी' इस विषय का पहला, व्यापक और एक अत्यन्त महत्वपूर्ण शोधकार्य सम्पन्न हुआ है।

विश्व के विद्वद्जनों की बिज़ान्तिनी कला के अध्ययन और अनुसंधान में रूचि भी गत दो सौ वर्षों से अधिक की नहीं है और ऐसे में उसके भारत से सम्बन्धों की खोजबीन अति उत्साह के प्रदर्शन जैसी लगती रही। इधर विश्व के प्रमुख मतों के वैश्विक स्रोत बौद्ध धर्म के एशिया और सुदूर पूर्व तक प्रसार के अध्ययन विपुल हैं। प्राचीन क्लासिकी यूनान से भारत के सम्बन्धों विषयक अध्ययनों के भी भण्डार भरे पड़े हैं। किन्तु बौद्ध धर्म के मध्ययुगीन बिजान्तिनी साम्राज्य (330-1453) और उससे आगे सम्पूर्ण यूरोप तक प्रवास की चर्चाएँ नगण्य हैं। इसका मुख्य कारण यह था कि पूर्व-आधुनिक पाश्चात्य इतिहासकारों ने बिज़ान्तिनी युग को 'अन्धकार युग' घोषित कर रखा था।

अ. चाक्षुष रूपाकारों के सृजन का आधार शब्द -

ऐसे संदर्भ पर्याप्त उपलब्ध हैं कि यूनानी यायावर पश्चिम भारतीय तट पर हमेशा पहुँचते रहे। पहली सदी में त्याना के विद्वान यात्रिक आपोलोनियस ने पश्चिम भारत में बारिगाजा की यात्रा की थी और वहाँ के मंदिर देखे जहाँ 600 वर्ष पूर्व स्वयं भगवान बुद्ध ने आकर धम्मोपदेश दिया था। बार्देसाने (154-222) और अन्य कईयों से बौद्ध मठों में जीवनचर्या और पश्चिम भारत स्थित एक गुफा मंदिर में अर्द्धनारीश्वर शिव की प्रतिमा होने की जानकारियाँ मिलती हैं। यह उल्लेख भी मिला है कि जुम्नार की बौद्ध गुफाएँ 100 ई. पू. से 50 ई. सन् के बीच के काल की हैं और यह स्थान तब एक एम्पोरियम रहा होगा। कल्याण पहुंचने वाले यात्रियों को कान्हेरी की प्रसिद्ध बौद्ध गुफाओं की जानकारी भी अवश्य रही होगी। कान्हेरी के एक शिलालेख में कल्याण का नामोल्लेख है।

छठी शताब्दी में भारत भ्रमण के लिए पहुँचे विख्यात बिजान्तिनी विद्वान कोस्मास इंदिकोप्लेउस्तेस ने अपने मूल्यवान यात्रा विवरण 'द क्रिश्चियन टोपोग्राफी ऑफ़ कोस्मास' में श्रीलंका के मंदिर, वहाँ के विशाल धार्मिक जुलूस और पश्चिम भारत के कल्याण, जो मुंबई के समीप स्थित वर्तमान कल्याण स्थल ही है, के दृश्यों का विस्तार से वर्णन किया है। उपलब्ध अन्य यात्रा विवरणों में भारतीय राजदूतों द्वारा मेजबान बिज़ान्तिनी सम्राटों के लिए भेंट वस्तुओं में कलाकृतियाँ ले जाने, अरबों द्वारा भारत में ईसाई आइकीन बेचने और कलाकृतियों के आदान-प्रदान के लिए बाजार

होने तक के उल्लेख मिलते हैं। बिज़ान्तिनी सिक्के भारतीय व्यवहार में चलते थे यह दक्षिण भारत में किये गए उत्खननों में मिले बिज़ान्तिनी सिक्कों से पुष्ट होता है।

भारत विषयी संदर्भो के प्रमाण स्वरुप मध्ययुगीन अनेक कलाकृतियों और प्रचलित कथाओं का यहां उल्लेख किया जा सकता है। 'वारलाम-योआसफ रोमान्स' की तो अलग-अलग सदियों में तैयार कई चित्रांकित प्रतिलिपियाँ उपलब्ध हैं। चित्रांकित 'दियोनीसियाका पोएम' और 'द किंग प्रीस्ट प्रिस्टर जॉन' शीर्षक कविता भी ऐसी सामग्री में प्रमुख है। बुद्ध-कथा के समान 'ए रिप्रेजेंटेशन ऑफ़ लॉफुल लाइफ' भी बिज़ान्तिनी कला में प्रचलित भारतीय मूल के कथानकों में से एक है। 'द ट्री एण्ड द टू माइस' कथा का मूल भी पौर्वात्य है, संभवत: भारतीय ही है जिसका मध्ययुगीन उभरे शिल्पों, विलायती एक उदाहरण समान धार्मिक पोथियों ('प्साल्टर') और चित्रांकित 'वारलाम-योआसफ रोमांस' प्रतिलिपियों आदि में बहुतायत से अंकन हुआ है। 'सर्बियन प्साल्टर' के लघुचित्रों में भी भारतीय कथानकों की भरमार है।

ईसाई कला में कुछ स्त्री-संतों को सर्वशक्तिमान 'जीसस क्राइस्ट' की प्रिय सखियों के रूप में प्रदर्शित किया गया है। ये स्त्री-संत भारतीय कृष्ण-कथा की गोपियों समान हैं। कृष्ण-द्रौपदी प्रसंग की भांति सेंट इनेस (आग्नेस) को यीशु ने भी निर्वस्त्र किये जाने से बचाने का प्रयत्न किया था।

सुप्रसिद्ध 'बार्बेरिनी आइवरी' और 'द पर्सोनिफिकेशन ऑफ़ इंडिया' नामक रजत तश्तरी आदि सभी भारतीय विषय अंकित कलात्मक वस्तुएं हैं।

द्वितीय शताब्दी ईसवी पूर्व से ही ऐतिहासिक विषय अभिव्यक्त करने की प्रवृत्ति गांधार बौद्ध कला में मौजूद है। ईसाई कला में भी यह बड़ी आम प्रवृत्ति है। यशोधरा द्वारा अपना एकमात्र पुत्र राहुल भगवान बुद्ध को भेंट करने का इतिहास-प्रसिद्ध प्रसंग भारतीय कला के अलग-अलग काल-खण्डों में अनेक चित्रों और उभरे शिल्पों में अभिव्यक्त हुआ है। क्रम 17 की अजंता गुफा में इस विषय का भित्ति-चित्र भव्यतम है।

5वीं शताब्दी की क्लासिकी बौद्ध कला का प्रतिनिधि यह चित्र अत्यंत सुन्दर और मार्मिक है। इस चित्र का लगभग समकालीन विशिष्ट बिज़ान्तिनी मोज़ेक तकनीक में बना हुआ एक भित्ति-चित्र ग्रीस के थेसालोनिकी स्थान पर गिरजाघर में बना है जिसमें एक माँ अपना पुत्र सेंट दिमित्रियस को भेंट करती दिखाई गई है। पार्श्व में इस भित्ति-चित्र में तीन स्तरों वाला एक वृक्ष बना है जो भारतीय परंपरा के 'जीवन-वृक्ष' का स्मरण कराता है। साँची स्तूप के शीर्ष पर एक शिल्पित 'त्रिछत्र' स्थापित है जो 'जीवन-वृक्ष' का ही प्रतीकात्मक स्वरूप है। पूर्व और पश्चिम की सृजनात्मक दृष्टियों में बुनियादी भिन्नता का यह बहुत ही स्पष्ट और श्रेष्ठ उदाहरण है। सेंट दिमित्रियस गिरजाघर में 'जीवन-वृक्ष' शब्दों के स्थूल अर्थ के रूप में हूबहू एक वृक्ष ही बनाया गया है, जबकि साँची के 'त्रिछत्र' में 'जीवन-वृक्ष' के आन्तरिक रहस्यवादी अर्थ की रूपध्वनि अभिव्यक्त है। ईसाई कलाकार ने शाब्दिक सूचनाओं को आकार देने निजी समझ और शैली का प्रयोग किया।

एक जैन धार्मिक प्रथा के रूप में दान के लिए कुछ धार्मिक चित्रांकित पोथियों की चित्रकारों द्वारा प्रतिलिपियाँ तैयार की जाती रही हैं। 'वारलाम-योआसफ रोमांस' की उपलब्ध अनेक चित्रांकित प्रतिलिपियों के पीछे संभव है ऐसा ही कोई विचार रहा हो। साथ में याद रखने की बात यह है कि 'वारलाम और योआसफ ईसाई धार्मिक ग्रंथ वस्तुत: अपने मूल रूप में इतिहास-प्रसिद्ध गौतम बुद्ध की जीवन-गाथा ही तो है।

ब. चाक्षुष कला तत्वों, कलाभिप्रायों आदि का शैलीगत प्रवाह

मठ व्यवस्था एक भारतीय, मूलत: बौद्ध विचार है। बौद्ध और ईसाई दोनों ही धार्मिक परंपराओं में मठ व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। दोनों में अद्‌भुत समानताएं हैं। समान रूप से भिक्षुओं और सामान्य श्रद्धालु आम जनों के हितार्थ बड़े भक्तिभाव से मठों को घनी कलात्मक साज-सज्जा और उपास्य से जुड़ी चित्र-कथाओं से सुशोभित अलंकृत किया जाता था। स्मरणीय है कि भूमध्य सागर के दक्षिण तटीय मिश्र से प्रारम्भ भूभाग पर हज़ारों बौद्ध मठ होना बताया गया है। कालांतर में इस तटीय प्रान्त में ही बिज़ान्तिनी युग में आर्थोडॉक्स ईसाई 'कॉप्टिक' संस्कृति और कला फली-फूली।

बिज़ान्तिनी कला विश्व में 'प्रभा मण्डल' (निम्बस), 'फ्लोरल स्क्रॉल', 'क्यूब पेटर्न' आदि कला-कर्म देख कर एक बारगी ठेठ भारतीय बौद्ध कला और उसकी अनूठी, परिपक्व शैली का स्मरण हो आता है। मथुरा और सारनाथ बुद्ध प्रतिमाओं में उत्कीर्ण आलंकारिक सुन्दर प्रभा मण्डलों के बिलकुल सरीखे प्रभा मण्डल कई ईसाई आइकॉन में बने हैं जो महीन बुनावट के फ्लोरल स्क्रॉल से सुसज्जित हैं। इटली के रवैना संग्रहालय में प्रदर्शित हाथी-दांत से निर्मित 5वीं शताब्दी की 'मेक्सिमियानस चेअर' घनी अंगूरी बेलों और अकांथस स्क्रॉल की तराश से लदी हुई है। अजंता और बौद्ध गुफाओं में आलंकारिकता की प्राण चौड़े पट्टों में कमल दलों की

सघन बेलें जिनमें 'कलहंस' सहित अन्य पक्षी, मानवकृतियां व पशु आकृतियां गुथी हुई हैं, बिज़ान्तिनी साम्राज्य की राजधानी कोस्तान्तिनोपल में लगता है वहां निर्मित विशाल भूमि मोज़ेक में जा उतरी। 'कलहंस' जो शुद्ध भारतीय पक्षी है, 'मेक्सिमियानस' और 'रोबुला गॉस्पेल' का भी महत्वपूर्ण सजावटी कलाभिप्राय है। साँची स्तूप पर सज्जित भारतीय कलाभिप्राय पंखनुमा पुष्प-चक्र को बिज़ान्तिनी राजा जस्टिन के 'स्वर्ण क्रॉस' के अलंकरण के समतुल्य माना जाता है।

बिज़ान्तिनी लघुचित्रों, भित्ति-चित्रों और मोज़ेक में अंकित 'बिज़ान्तिनी रॉक्स' के नाम से सुपरिचित 'क्यूब पैटर्न' अजंता चित्रों के 'कन्सेप्चुअल रॉक्स' के समतुल्य हैं। भारतीय कला में अलग-अलग काल के कई चित्रों अथवा शिल्पों में 'कन्सेप्चुअल रॉक्स' नाम का यह सजावटी कलाभिप्राय प्रयुक्त हुआ है। अजंता और 'आथोस पर्वत' के मठों में भित्तियों पर चित्रित विशेष वॉल्ट, चंदवा, स्तंभ-शीर्ष, कंगूरे आदि कई वास्तु-अभिप्राय दोनों स्थानों पर एक दूसरे से बिलकुल अभिन्न हैं।

इनके अतिरिक्त भारत में बौद्ध चित्रों-शिल्पों व आर्थोडॉक्स ईसाई कृतियों में मानवाकृतियाँ, उनकी भाव भंगिमाएं और उनके अनेक सूक्ष्म तत्व एक दूसरे के बिल्कुल निकट हैं। अजंता की विश्व प्रसिद्ध चित्राकृति 'अवलोकितेश्वर पद्मपाणी' की भंगिमा और मुख के रहस्यमय भाव को ईसाई आइकॉन 'अवर लेडी ऑफ़ व्लादीमीर' में मानो हम प्रवाहित होता हुआ पाते हैं। भारतीय और बिज़ान्तिनी ऐसी अनगिनत आकृतियों में समानताएँ हैं। अजंता के एक भित्ति-चित्र में अभिव्यक्त ''सर्वनाश' की पीड़ा का भाव बिज़ान्तिनी एक लघुचित्र में अंकित किसी चेहरे के भाव से बड़ी निकटता से मेल खाता है। बहु-शीश और बहुभुजाधारी देवी-देवताओं के अंकन भी दोनों कला परंपराओं में विद्यमान हैं।

हस्त-मुद्राओं की अर्थपूर्ण प्रस्तुति दोनों कला परंपराओं की खास पहचान है। भारत में हिन्दू, जैन या बौद्ध धार्मिक अनुष्ठानों, शास्त्रीय पारंपरिक नृत्य, शिल्प-चित्र कलाओं में हस्त-मुद्राएं अभिव्यक्ति की अत्यंत गंभीर और महत्वपूर्ण साधन हैं। ईसाई धर्म और कला में 'रिएश्युरेस', 'बेनेदीक्तो लेतीना' और 'बेनेदीक्तो ग्रीका' जैसी कुछ विशिष्ठ हस्त मुद्राएं आनुष्ठानिक अर्थ की वाहक हैं। किन्तु बिज़ान्तिनी कला में कई प्रकार की हस्तमुद्राएं अंकित देखने को मिलती हैं जिनकी कई स्थापित भारतीय हस्त-मुद्राओं से समानता है।

'प्रतिमालक्षण', 'चित्रसूत्र' आदि प्राचीन भारतीय कलाग्रंथों की तर्ज पर किन्तु आज भी 'आथोस पर्वत' आदि अनेक स्थानों पर सक्रिय कला कार्यशालाओं में ईसाई भिक्षु कलाकारों द्वारा संदर्भ के लिए छोटी 'आर्टिस्ट मेन्युअल' नाम की पोथियाँ उपयोग में ली जाती हैं। इनमें रचना प्रक्रिया, कला सिद्धांत, कला तकनीक, कला शैली आदि के वर्णन और व्याख्याएँ हैं। इनमें कई विचार भारतीय कला चिंतन से निकटता रखते हैं।

भारतीय और बिज़ान्तिनी चित्र-शिल्प शैलियों में इतनी अधिक समानता देखने से प्रतीत होता है कि भारतीय, प्रमुख रूप से बौद्ध चाक्षुष कला तत्वों, कलाभिप्रायों आदि का बिज़ान्तिनी युग में एक सम्पूर्ण शैलीगत प्रवाह आर्थोडॉक्स ईसाई जगत की ओर प्रवाहित हुआ था। इतना कि मानों तत्कालीन कला-परियोजनाओं में आमंत्रित भारतीय कलाकारों ने स्वयं ही सीधे सक्रिय सहयोग दिया हो। बिज़ान्तिनी अध्ययनों के विश्वप्रसिद्ध विद्वान् राइस दंपत्ति में सुश्री तमारा ताल्बोट राइस ने तो यह दावा किया कि एक बिज़ान्तिनी समाट ने राजधानी कोन्स्तान्तिनोपल के भव्य राजप्रासाद में अपने लिए एक कक्ष सम्पूर्ण शुद्ध भारतीय शैली में सुसज्जित कराया।

मध्ययुगीन बिज़ान्तिनी ईसाइयत की इस पहचान को नकारा नहीं जा सकता कि अपनी ही प्राचीन भौतिकवादी क्लासिकी यूनानी परंपरा के देवी-देवताओं और उनके मंदिरों से अपने पौर्वात्य रहस्यवादी विरोध के बावजूद ईसाइयत ने उन 'देवी-देवताओं की शक्तियों' को ईसाई संतों के व्यक्तित्व सँवारने में तथा उनके मंदिरों को आर्थोडॉक्स गिरजाघरों में तब्दील करने मूर्तिभंजन के स्तर तक उपयोग किया।

ठीक उसी तरह बिज़ान्तिनी साम्राज्य में बौद्ध धर्म, दर्शन और कला का उपयोग एक व्यापक मूल आधार के रूप में हुआ। बौद्ध धर्म, दर्शन और कला का बिज़ान्तिनी ईसाइयत चोला बन गई। किन्तु यहाँ बौद्ध संस्कृति अपने रहस्यवाद के साथ बिज़ान्तिनी संस्कृति की प्रतिद्वन्दी नहीं, पोषक बनी। इसीलिए विषय के विद्वानों द्वारा लक्षित बौद्ध कलात्मक समानताओं से बिज़ान्तिनी आर्थोडॉक्स ईसाइयत का खजाना भर गया। बौद्ध 'सत्य' अन्दर छुपा होने से अदृश्य है, जो सतही दिखाई देती है वह बिज़ान्तिनी 'माया' है।

आज बिज़ान्तिनी कला के भारतीय/बौद्ध कला से संबंध विषयक भारी तादाद में सामग्री और जानकारियाँ प्रकाश में आ चुकी हैं जिसे शोध आधारित वास्तविकता में बदलने के लिए इस विषय में भारतीय दृष्टिकोण से एक व्यापक एवं सघन अनुसंधान योजना की आवश्यकता है।

■

आलेख

'आधुनिक कला' और भारतीय समकालीन संदर्भ

प्रो. राजाराम

कला सृजन है। सृजन शक्ति है। सृजन की प्रेरणा शक्ति है। विचार शक्ति है। कला शक्ति है। कलाकृति शक्ति है। चित्र शक्ति है। मूर्ति शक्ति है। सृजक शक्ति है। सृजक और सहृदय, सामाजिक, सुसंस्कृत, रसिक अथवा गुणीजन पाठक, श्रोता और दर्शक की चेतना शक्ति है। 'रस' शक्ति है। सर्वत्र शक्ति ही की महिमा है। मेरे आलेख में 'शक्ति' और 'विचार' दोनों शब्द संदर्भित चर्चा के अनुरूप विशेषार्थी प्रयुक्त हुए हैं।

मेरी मान्यता है कि आधुनिक कला अपने मूल अर्थ में एक उर्ध्वगामी विचार है जो इसके इतिहास और दर्शन के क्रमिक विकास का सूक्ष्म अध्ययन करने से स्वत: स्पष्ट हो जाता है। आधुनिक कला का स्वभाव 'इक्लेक्टिक' है। इसके अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलनों से को विज्ञान सम्मत आधुनिक बोध के जरिये रूप-विश्व का बुद्धिग्राह्य सौन्दर्यात्मक साक्षात्कार हुआ। विभिन्न आन्दोलनों की गति तेज अथवा धीमी रही हो, एकल अथवा सामूहिक मिलकर प्रयोग किये गए हों, उर्ध्वगामी विचार की उपस्थिति प्रयोगों में हमेशा बनी रही। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश में फ्रांस में आधुनिक कला आंदोलन की शुरूआत होने के साथ विभिन्न कला विधाओं के रचनाकार, आलोचक साथ मिल बैठकर प्रयोगों संबंधी गंभीर विचार किया करते थे।

आज हम जिस मुकाम पर हैं वहाँ आधुनिक कला आन्दोलन समाप्त-सा है। वह अपनी शक्ति और तीव्रता खो चुका है। यहाँ तक कि विश्व में बाद के कला प्रयत्नों को विद्वानों ने उत्तर 'आधुनिक' का नाम दिया जो भी अब विगत बन चुके। तात्पर्य यह कि आज सम्पूर्ण कला जगत के खाके पर एक प्रकार की विचारशून्यता छाई हुई है।

अन्तर्राष्ट्रीय आधुनिक कला के उर्ध्वगामी विचार के विकास में विश्व के अनेक देशों की सम्मिलित सहभागिता रही है। किन्तु कला इतिहास की यह कड़वी सचाई है कि इसमें भारत की कोई स्पष्ट या महती भूमिका नहीं रही। मतलब भारत में ऐसा कोई 'आधुनिक कलाकार' प्रत्यक्ष नहीं हुआ। इसमें एम.एफ. हुसैन जैसे प्रसिद्ध बड़े नामों का भी किसी प्रकार का कोई योगदान नहीं। भारतीय आधुनिक कलाकार आधुनिक कला के उर्ध्वगामी विचार से निर्लिप्त रहे। भारत में आधुनिक कला का केवल क्षेतिजीय विस्तार हुआ। आधुनिक कला के अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलनों के भाँति-भाँति के कला-कर्म को भारतीय आधुनिक कलाकारों ने विविध शैलियों के रूप में ग्रहण करके निजी मुहावरा विकसित करते हुए उसे क्षेतिजीय विस्तार दिया। हालाँकि युग-चिंतन कभी वातावरण में व्याप्त होता है। कहीं कोई 'अज्ञात कुल-शील' साधक भारत में ऐसे उर्द्धगामी विचार के सृजनात्मक प्रयोग कर भी रहे हों जो अज्ञात हैं।

कई बार भारत में आधुनिक कला आन्दोलन 'फूंकने' की हवस जरूर दिखाई दी। लेकिन ऐसे यत्न अर्थहीन सिद्ध हुए। क्योंकि यहाँ आधुनिक बोध ही लुप्त है। कुछ समय पूर्व 50-50 की युवा 'भीड़' को, पहले एक नामी चित्रकार के जरिये 'भोपाल स्कूल ऑफ एब्स्ट्रेक्शन' वह भी विश्व-कला के इतिहास में 100-50 बरस देर से, दुबारा कला के एक नामी खबरनवीस के जरिये 'भारत भवन स्कूल' 'क्यूरेट' होकर दिल्ली में प्रदर्शित किया गया। कला आन्दोलन स्थापना की ये और ऐसी अन्यत्र अन्य कोशिशें हवस बन कर ही रह गई। आंदोलन ऐसे नहीं खड़े हुआ करते, वे जमीन में से ऊगते हैं। बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में बड़ौदा में जो अमूर्त काम हुआ, एक अनुशासित प्रयत्न, वह वैश्विक मान्यता और प्रसिद्धि पाकर 'एन्सायक्लोपिडिया ऑफ वर्ल्ड आर्ट' में भी 'बड़ौदा स्कूल ऑफ एब्स्ट्रेक्शन' के नाम से दर्ज हुआ। कालान्तर में इस पहचान को तोड़ने के लिए खुद बड़ौदा की ललित कला संकाय में प्रयत्न पूर्वक विरोधी शैली थोपने की घटनाएँ हुईं। अभी तक हो रही हैं। किन्तु ऐसा करना आधुनिक बोध और आधुनिक कला के उर्ध्वगामी वैचारिक विकास को नजरअंदाज करना ही हुआ। यह विरोध के लिए विरोध करने की मनोवृत्ति से अधिक कुछ नहीं। भारत के लिए वह दिन शुभ होगा जब कोई अज्ञात आधुनिक कला प्रयोग जानकारी में आएगा और आधुनिक कला के अन्तरराष्ट्रीय आन्दोलन में भारत का उल्लेखनीय योगदान दर्ज होगा।

भारत में आधुनिक कला के उर्ध्वगामी विचार की शून्यता के बीच 20 वीं शताब्दी के तीसरे दशक की समापन अवधि में

इन्दौर, या कि भारतीय मध्यप्रांत, या कहें सम्पूर्ण भारतीय पटल पर ही एक बिल्कुल विलक्षण और अभूतपूर्व घटना घट रही थी। जब आधुनिक कला आन्दोलन पचास-पचपन वर्ष की यात्रा पूरी करके पश्चिम में अमूर्तन से भी आगे 'शुद्धतावादी' अपने चरम 'शून्यवाद' तक जा पहुँचा था, उस समय इन्दौर के जरिये भारतीय मध्यप्रांत में 1930 तक पँहुचते। पेरिस में 1874 में जन्में 'प्रभाववाद' का श्रीगणेश हो रहा था। बौद्ध दर्शन से गहरे प्रभावित रूमानिया के 'शुद्धतावादी' शिल्पी दिग्गज कॉन्स्टन्टाइन ब्रांकुसी और इन्दौर के महाराजा तुकोजीराव होलकर द्वितीय के बीच उन्हीं दिनों सम्पन्न मुलाकात के मुताबिक इन्दौर में बनाये जाने वाले एक स्मारक-मंदिर (जो प्रस्ताव फलीभूत न हो सका) के लिए 'बर्ड इन स्पेस' शीर्षक के तीन बेशकीमती 'शुद्धतावादी' आधुनिक शिल्प इन्दौर पहुँच भी चुके थे (आज जो अब भारत में ही नहीं रहे)। हालाँकि भारत में घटी यह ऐतिहासिक बिरली घटना संभवत: इन्दौर या अन्यत्र भारतीय कलाकार तबकों की जानकारी में न रही हो।

इन्दौर में यह समय भारतीय मध्यप्रांत में 'प्रभाववाद' के झंडाबरदार कलागुरू दत्तात्रय दामोदर देवलालीकर और उनके नारायण श्रीधर बेन्द्रे, मक़बूल फ़िदा हुसैन, देवकृष्ण जटाशंकर जोशी, मनोहर जोशी आदि के प्रथम मेधावी कला-छात्र समूह की रचनात्मक ऊर्जा से आन्दोलित था। यदि उक्त घटना इनकी जानकारी में आई होती तो आधुनिक कला के उर्ध्वगामी विचार के दो छोरों के बीच की पचास-पचपन वर्षों की दूरी शायद सिकुड़ सकती थी। इन्दौर की यह कड़ी भारत में अन्तर्राष्ट्रीय आधुनिक कला इतिहास की शायद किसी नई सृजनात्मक शक्ति के विस्फोट का भी संकेत सिद्ध हो सकती थी।

समय-समय पर मिले अवसरों की संगत का अपनी तरह से लाभ उठाकर स्कूली शिक्षा से हमेशा दूर भागने वाले हरफनमौला स्वभाव के डी.जे.जोशी ने अपने वरिष्ठ साथी कला मर्मज्ञ प्रो.एन.एस.बेन्द्रे से मिले ज्ञान से जो धुआँधार श्रेष्ठ आधुनिक सृजन कार्य किया, वह मालवा में बिरला और अनूठा कला कर्म था। भारत में 'प्रभाववाद' के महारथी, डी.जे.जोशी ने देश और काल के आर-पार जाकर अपने समय में, राजस्थानी लघुचित्रों की 'परिप्रेक्ष्य-बहुलता' को मालवा की मिट्टी और 'प्रभाववाद' से जोड़कर एक नया आयाम दे दिया। ऐसे सृजकों के पुनर्मूल्यांकन, आकलन, और इतिहास में नये सिरे से उनके स्थानन से उनका महत्वपूर्ण अवदान प्रकाश में आ सकता है। शुद्धतावादी 'एन-टोन पेंटिंग' प्रयोग (नई दिल्ली), कलाओं के परस्पर अन्योन्याश्रय को लेकर चित्र और नृत्य केन्द्रित 'आर्ट हेप्पनिंग' (वनस्थली विद्यापीठ), तथा चित्रांकन-संगीत केन्द्रित प्रयोग (ग्वालियर) भी एक नये नजरिये से आकलन की माँग करते हैं।

'इक्लेक्टिक' आधुनिक कला के स्रोत दुनिया भर में फैले हुए हैं। आधुनिक बोध का तकाजा था कि सृजनकर्ता पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर खुले दिमाग से रूप-विश्व को ग्रहण करें और सृजन कार्य करें। देश और काल की सीमाओं से मुक्त इस नई दुनिया को वे संवेदनशील मन और खुली नजरों से ग्रहण करें। विश्व की आदिम, आदिवासी, लोक, या पौर्वात्य सहित शेष दुनिया की अन्य परंपराओं के साक्षात्कार से प्रथम तो उन यूरोपी कलाकारों जो रूढ़ीवादियों से हटकर विमुक्त आधुनिक विचार रखते थे, के सामने नये क्षितिज खुलते चले गये। एक के बाद एक आवाँगार्द आधुनिक कलावादों का सिलसिला बनता चला गया। भौतिक विज्ञान के प्रकाश विषयक आधुनिक सिद्धांत व जापान के रंगीन काष्ठ-छापों ने 'प्रभाववाद' की जमीन तैयार की। अफ्रिकी आदिम शिल्प ने पाब्लो पिकासो के 'घनवाद' को दिशा दी। मध्येशियाई चित्रों की एरेबस्क रंगों की झिलमिल से 'फाववादी' मार्ग प्रशस्त हुआ। बौद्ध दर्शन ने 'शुद्धतावाद'/ 'शून्यवाद' की, तो चीनी दर्शन ने 'अमूर्त अभिव्यंजनावाद' (एक्शन पेंटिंग) की नई रोशनी दी। इन कलावादों में किसी का प्रयोगधर्मी एक कलाकार रहा तो किसी में प्रयोगवादियों का एक समूह सक्रिय रहा, जिसके प्रत्येक सदस्य ने उस वाद विशेष के विचार को अपने तईं नई .. व्याख्या दी।

ये प्रयोगवादी सारे रचनाकार, माने, मोने, मातीस, पिकासो, ब्रांकुसी, जेक्सन पोलॉक या और कोई भी, प्रखर बौद्धिक थे। जहाँ आवश्यक हुआ, आधुनिक प्रयोगवादी रचनाकारों ने अपनी निजी यूरोपी क्लासिकी कला परंपरा, धर्म गुरूओं, या मार्ग की अवरोधक अन्य रूढ़ियों से लोहा लिया इनके द्वारा इस रूप में हुआ परंपरा का विरोध।

केण्डेन्स्की और मालेविच को विमुक्त आधुनिक कला प्रयोग करने रूस से फ्रांस, जर्मनी आदि पश्चिमी देशों की ओर भागना पड़ा। पेवनेर और गाबो को भी अपने आधुनिक शिल्पों संबंधी प्रयोगों के लिए ऐसा ही कदम उठाना पड़ा था। रूमानिया के ब्रांकुसी ने शिल्प में, तो हॉलैण्ड के मोन्द्रिआँ और रूसी मालेविच ने चित्रों में शुद्धतावादी प्रयोग किये। शून्यवादी अमेरिकी दार्शनिक चित्रकार रेनहार्ड ने अपने श्वेत या श्याम कोरी सतहों के केन्वासों को उन पर आरोपित होने वाले एक बिन्दु तक से 'शुद्धता' हेतु मुक्त कर दिया। प्रसिद्ध विलायती आधुनिक शिल्पी महारथी हेनरी मूर ने अपने शिल्पों पर प्राकृतिक 'पेटर्न' की रंगत व सतह की खास छटा का प्रभाव उत्पन्न करने लंबे समय तक उन्हें समुद्र के खारे पानी में रासायनिक प्राकृतिक क्रिया के लिए पड़ा रहने दिया। भीमकाय आकृतियों, आकारों वाली चट्टानों के बीच अपने विशाल शिल्पों की

स्थापना और दोनों के परस्पर बड़ी निर्वैयक्तिकता से घुलमिल जाने का मूर ने सम्प्रेषण में मानवी सृजन को भी सृजक के संदर्भ तक से मुक्त कर देने का अभूतपूर्व प्रयोग कर डाला। पेंटिंग इन द ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी' पुस्तक में दी गई जर्मन विद्वान लेखक बेर्नर हाफमैन की यह स्थापना यहाँ अक्षरश: सटीक बैठती है कि अभी तक रूपंकर कलाकार पुष्प का हूबहू आभास अंकित करता था। उस कौशल से आगे बढ़कर अब उस पुष्प-रूप के रूपायित-पुष्पित होने की छन्द प्रक्रिया उस आन्तरिक शक्ति की समझ विकसित करके सही मायने में प्रकृति की सृजन शक्ति अर्जित कर लेने की दिशा में वह आगे बढ़ा। अब वह विद्यमान सौ रूपों की छायाभर चित्रित करने से आगे ब्रह्मा की भाँति एक सौ एकवाँ नया रूप निर्माण करने में सफल हुआ।

आधुनिक कला को अपने मूल अर्थ में जाने बिना आंग्लयुगीन गुलाम मानसिकता के वशीभूत भारतीय आधुनिकों को विरोध के लिए अन्ध विरोध की मानसिकता के चलते उस भारतीय क्लासिकी परंपरा का भी दुश्मन बना दिया गया जो , दरअसल आधुनिक वीज़न के लिए शक्ति की स्रोत सिद्ध हो सकती थी। मसलन आज भारत के शीर्षस्थ माने जाने वाले कलाकार अजंता के नाम से ही नाक-भौंह सिकोड़ने लगते हैं। जबकि, अजंता के क्लासिकी कला मूल्यों में आधुनिक नई वीज़न के लिए अपार सृजनात्मक विस्फोट की संभावनाएँ छुपी हुई हैं। इसका कारण यह भी रहा कि बंगाल के पुनर्जागरण कला आंदोलन के केन्द्र में अजंता की कला थी। इस आन्दोलन में 'स्वदेशी' की ऐतिहासिक महत्ता को समझे बिना भारतीय 'सूडो'-आधुनिकों ने चूंकि इसे खारिज किया तो साथ में अजंता कला जैसी विश्व शक्ति को भी अब तक नकारे हुए हैं। विडंबना यह है कि जो पौर्वात्य तत्व पश्चिम में आवाँगार्द के जनक बन सकते हैं, वे आधुनिक बोध के अभाव में भारतीयों को खुद अपनी परंपराओं में परिलक्षित नहीं होते। ताज्जुब यह है कि आधुनिक बोध से अध्ययन-विश्लेषण और मनन चिंतन के अभाव में विश्व भर की नजरों से भी अजंता अब तक दूर ही है।

पश्चिमपरस्ती की गुलाम मानसिकता के चलते, जो भारत में मैकाले का दिया एक दीर्घावधि 'वरदान' है, कभी भारतीय जमीन पर पश्चिम से भिन्न ऐतिहासिक पृष्ठभूमि होने के बावजूद पश्चिमी बदलाव को बंद आँखों से जैसा का तैसा सतही तौर पर भारतीयों ने स्वीकार कर लिया। बिना आधुनिक बोध विकसित किये और आधुनिक कला के उर्ध्वगामी विचार की पहचान और पड़ताल किये बगैर 'सूडो'-आधुनिकों ने हर पुरातन के विरोध को आधुनिकता का पर्याय बना लिया। कई भारतीयों द्वारा भारतीय संस्कृति के विरोध के लिए भी पुरातन के विरोध के स्वर को हथियार की तरह इस्तेमाल किया गया। इसलिए मेरा मानना है कि कला क्षेत्र में भारत में प्रचलित अर्वाचीन समस्त स्थापनाओं का भारतीय परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में पुनर्मूल्यांकन होना चाहिये। यहाँ तक कि इसी परिप्रेक्ष्य में भारतीय अर्वाचीन साहित्य क्षेत्र में विकसित विगत समस्त प्रवाहों, वादों, आंदोलनों के औचित्य को भी एक बार जाँच लेने की आवश्यकता है।

मध्यप्रदेश में तो हाल के वर्षों में वास्तविकता से दूर कला संबंधी अनेकों मनगढंत भ्रांतियाँ कलाकारों और सामान्य समाज पर थोपने के अपराध हुए। मसलन 'आधुनिकता नागरों की बपौती नहीं है,' 'हमारे आदिवासी कलाकार या अन्य कोई पारंपरिक कलाकार ही किन्हीं खास पश्चिमी आधुनिक कला दिग्गजों के जैसे हैं,' 'ऐसा नहीं है कि पुस्तकें पढ़-लिख कर ही कलाकार दुनिया की श्रेष्ठ कलाकृतियों का निर्माण कर सके,' इत्यादि। इस प्रकार के विचार सामान्य समाज अथवा युवा कलाकार पीढ़ी को गुमराह करने वाले हैं। ऐसे विचार भ्रामक भी हैं और घातक भी। इस प्रकार की भ्रांतियाँ फैलाने वाले तथाकथित बुद्धिजीवियों को कला इतिहास की इतनी सामान्य जानकारी तो होना चाहिये कि इक्लेक्टिक अन्तर्राष्ट्रीय आधुनिक कला के अधिकांश आंदोलन निसर्गवादी पश्चिमी परंपरा से इतर विश्व की अन्य कला परंपराओं से ही अभिप्रेरित हैं। अर्थात, आदिम, आदिवासी, लोक और पश्चिमेतर अन्य कला परंपराएँ आवाँगार्द कला की प्रेरक हैं, न कि वे इनके जैसी लगती हैं। इनके कलाकारों को आधुनिक कला दिग्गजों के जैसा लगना बताना तो पूरी इबारत को ही पलट कर उल्टा कर देना हुआ। जबकि वास्तविकता यह नहीं है।

भारतीय आदिवासी या लोक कलाओं या अन्य पारंपरिक कलाओं की यदि आधुनिक कला से निकटता लगती है तो वह इसलिए चूँकि ये दुनिया की आदिम, आदिवासी या लोक कलाओं की उस श्रेणी की हैं जो आधुनिकों के प्रयोगों की प्रेरणा बनी। भारत भवन में आमने-सामने स्थित आदिवासी-लोक व नागर (आधुनिक) दोनों कला दीर्घाओं में साथ-साथ आते-जाते दोनों ही तबकों के दर्शकों को मैंने 'पढ़ा है'। नागर सामान्य दर्शक, सामान्यत:, दोनों ही दीर्घाओं में स्वयं को असहज महसूस करते, जबकि आदिवासी दर्शक दोनों दीर्घाओं में कृति-साम्य देखते और प्रतिक्रिया में असहज नहीं होते। एक कदम आगे बढ़कर वे दीर्घा में प्रदर्शित अपनी देवाकृति के सामने तो दण्डवत की मुद्रा में पूरी आस्था से लेट अवश्य जाते। इस कृति-साम्य का स्पष्टीकरण यह है कि नागर सृजक ने आधुनिक प्रयोगों में आदिम, आदिवासियों के कलाभिप्रायों (मोटिफ) को अपने शोध, विश्लेषण और सृजन का विषय बनाया। इसलिए 'बपौती' की नारेबाजी ही अनावश्यक है। इसीलिए राजस्थानी लघुचित्र चितेरों की चित्रकृति और पिकासो की

चित्रकृति में यदि 'परिप्रेक्ष्य-बहुलता' का साम्य देखने को मिलता है तो दोनों के बीच श्रेष्ठता की प्रतिद्वन्दिता का विचार पालना भी निरी मूर्खता है। कुछेक सरीखे कलाभिप्रायों के प्रयोग को देखकर पिकासो और हुसैन को भी समान कलाधर्मी आधुनिक कलाकार मान लेना हद दर्जे की बेवकूफी है।

एक तरफ भारतीय आधुनिकों में आधुनिक बोध का अभाव और आधुनिक कला के उर्ध्वगामी वैचारिक स्वभाव से अपरिचय, दूसरी तरफ अमूर्तन की शुद्धता को अंतिम लक्ष्य बना लेने की नादानी से कला की दुनिया की क्षण-क्षण की हलचल से बेखबर वे एक सीमित दायरे में बँध गये। अमूर्तन के ये अभ्यासी अपनी शिखरस्थ श्रेष्ठता का सपना और अहसास लेकर दलील रूप में रूप के केवल 'अशुद्धतावादी झटकों' के अलावा कुछ नहीं सोच पाते। उनके चिंतन की चेतना दूर पलायन कर चुकी है। वैचारिक ठहराव से एक प्रकार से वे ग्रस्त हो चुके हैं। उन्हें यह याद करने की जरूरत सालती नहीं कि आधुनिक कला के पच्चीसियों में से अमूर्त्तवादी कला आन्दोलन अब से ठीक सौ बरस पुराना, और एक आन्दोलन भर है। उन्हें यह समझना चाहिये कि अमूर्त्तन का विचार, कला के चिरंतन प्रवाह में कोई अंतिम पड़ाव नहीं है। परंतु अमूर्त्तन की अपनी शिखरस्थ काल्पनिक स्वप्निल आसंदी से उन्होंने विश्व में भूत और भविष्य में सामान्य भाँति-भाँति की। कलाकृतियों के विविधता भरे समस्त अस्तित्व को ही रूढ़ दलिलों से नकार रखा है। जैसे रूपकरं कलाकृति में कथा का अंश होना अशुद्धि के रूप में उसमें साहित्यिक दखल है। रूपंकर कलाकृति स्वयं में पूर्ण मात्र आँखों की भाषा है। अमूर्त कृति स्वयं में सम्पूर्ण एक वस्तु, एक स्वनिर्भर चाक्षुष 'विचार' (सिग्निफिकेंट फॉर्म/कन्सेप्ट) है। अध्ययन, पठन-पाठन, शब्द-भाषा सब उसके लिए निरर्थक हैं। यह कहना बेमानी है कि अक्षर और शब्द-भाषा ही 'विचार' के होने का प्रमाण हैं। इनके बिना भी 'विचार' का अस्तित्व है और विचार प्रक्रिया, मनन-चिंतन शब्द-भाषा के अतिरिक्त भी संभव हैं। स्वयं कलाकृति का अमूर्त रूप और उसका सृजन इसका एक प्रमाण है। इत्यादि।

केवल इस प्रकार से ही विचार करने में दोष है। देश-काल से परे विश्व की अस्तित्वमान समस्त कलाकृतियाँ दो भागों में विभाज्य हैं। सज्जामूलक कलाकृति वर्ग और अभिव्यंजनामूलक कलाकृति वर्ग। सज्जामूलक वर्ग के अनेक कृतियों के एक बड़े वर्ग और प्रकारों की अवहेलना होने से वह दोषपूर्ण है। यह चिंतन अधूरा है। विचार-चिंतन की एक सतत सम्पूर्ण प्रक्रिया में यह व्यवधान है।

प्रकारों में से भी अमूर्त्तव केवल एक प्रकार था किन्तु बड़ा बुनियादी प्रतिनिधित्व है जबकि दूसरा तो सम्पूर्ण अभिव्यंजनामूलक कलाकृति वर्ग ही इससे छूटा हुआ है। अत: उपरोक्त अर्जित अमूर्त्तन मात्र के एकाकी चिंतन में है।

इससे भी आगे कम से कम आज कलाकर्म 'विचार' और 'सृजन-आवेग' की बनिस्बत 'अर्थ' (धन) के प्रभाव में अधिक उलझा हुआ है और सृजन की श्रेष्ठता के मूल्यांकन का पैमाना भी मानो 'अर्थ' ही बन गया है। अन्य शब्दों में यही है कला का वर्तमान बाजारवाद'। धनाढ्यों के भव्य भवनों की सज्जा के लिए वास्तुविद और आन्तरिक सज्जाकार खिड़की और द्वारों के लिए कलात्मक 'परदों' और ड्राइंग रूम के लिए 'पात्रों' (पॉट्स) की ही पंक्ति में मेचिंग अधिकांश अमूर्त कलाकृतियों का भी सुझाव दे देते हैं। इस खपत के लिये धुआँधार कलाकृतियों का उत्पादन हो रहा है। इनका ऊँची कीमतों का व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खूब फल-फूल रहा है। अमूर्त चित्रों की घर के परदों समान आज औकात तय हो चुकी है। इस कला बाजार के उत्पादनकर्ता कलाकारों द्वारा कलाकृति को अभिव्यक्ति का साधन, या ध्यान-समाधि की केन्द्रीय वस्तु समझना, अथवा कलाक्षेत्र के अनछुए नये क्षितिजों को छूने की उनकी बैचेनी सब समाप्त हो गई है। यद्यपि 'सरस्वती' और 'लक्ष्मी' की इस गलबँहियाई मित्रता से अर्थ लाभ के कारण कलाकारों को आत्मसंतोष तो मिल ही रहा है। इसलिए अमूर्त कृतियों के रूप में भव्य भवनों के 'परदे' और 'पात्र' मात्र तैयार करने में वे संतुष्ट हैं।

इन परिस्थितियों के बीच न केवल आम लोगों में किंतु कलाकार समूहों में, मध्यप्रदेश के भी, मीडिया के प्रति एक भ्रामक आकर्षण घर किये हुए है। मीडिया में छपी हुई कला संबंधी ऊलजलूल खबरें और अधिकांश चलताऊ व्याख्याएँ होती हैं। किंतु स्वयं के बारे में छपा खबरों का यह संसार नवोदित कलाकारों को संतोष तो देता ही है, क्योंकि वे स्वयं भी तो नहीं जानते कि वे पत्थर तोड़ रहे हैं, केन्वास की पुताई कर रहे हैं, या कोई कलाकृति बना रहे हैं। समाज और कलाकार इससे गुमराह भले होते हों, किन्तु प्रचार, तालियों और पैसों का जो भी पक्ष यहाँ जैसा लाभ ले सकता है, ले लेता है। यों भी मध्यप्रदेश में तो आज कला की 'परख' ही लुप्त हो चुकी है। इसकी किसी को चिंता नहीं है। न जनजातीय न नागर युवाओं के लिए यहाँ कोई सुचिंतित मार्ग है, न इसकी आवश्यकता किसी को पीड़ित करती है। उन्हें भी कला के बाजारवाद में उलझा लिया गया है। कहीं किसी को इस परिस्थिति का लाभ-हानि हो या न हो, कला के प्रति समाज के संस्कारित न होने और युवा पीढ़ी के गुमराह होने की कलाक्षेत्र को तो भारी हानि उठानी पड़ रही है। सच्ची 'कला आलोचना' की अपेक्षा करना तो इस समय दूर की कौड़ी है। कला आलोचना बाजारवाद की भांडगिरी कर रही है। आज कहाँ हैं प्रयोगवादी आधुनिक कला आन्दोलनों के प्रणेता प्रखर बौद्धिक आवाँगार्द कलाकारों के साथ बैठकर उनसे संवाद और विमर्श कर

सकने वाले समर्थ प्रबुद्ध कला आलोचक ?

इक्लेक्टिक अन्तर्राष्ट्रीय आधुनिक कला आन्दोलनों के प्रणेता ख्यातनाम कलाकार प्रखर बौद्धिक चिंतक होते थे। आधुनिक ही नहीं, वस्तुत: विश्व की सभी नागर संभ्रान्त स्वस्थ कला परंपराओं के कला मनीषी बड़े प्रबुद्ध हुए हैं। प्राचीन काल से अब तक भारत में भी कलाकार चित्र और शिल्प शास्त्रों के गंभीर ज्ञाता होते रहे। आज भी दक्षिण भारत में शास्त्रों के ज्ञाता ऐसे स्थपति-शिल्पी 'विचार' और 'सृजन' में पूर्ण सक्रिय हैं। उनमें 'विचार' और 'कला सृजन' एकाकार हैं। मध्यप्रदेश में ही लें, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की निपुणता वाले निसर्गवादी शिल्पकार धार के स्व. डॉ. रघुनाथ कृष्ण फड़के पद्मश्री हुए हैं। वे अपनी विधा के अलावा अन्य कला विधाओं में भी पारंगत और स्वयं एक विद्वान ग्रंथकार थे। कर्नाटक में जन्में, शांतिनिकेतन में दीक्षित हुए तथा ग्वालियर में सक्रिय रहे नवजागरणवादी महान शिल्पी स्व. रूद्रहँजी अपनी विद्वत्ता, चिंतनशीलता और संवेदनशील कलात्मक लेखन में बंगाल के अबनीन्द्रनाथ ठाकुर और नन्दलाल बसु से भी बढ़कर इक्कीस प्रतीत होते हैं। रीवा में700 वर्ष प्राचीन लघुचित्रों के बघेलखंडी घराने के राजदरबारी और आखिरी मुसव्विर स्व. अवधशरणसिंह बावनी न केवल देसी-विदेशी सात कला विद्याओं में माहिर थे, वे अनेक संस्कृत ग्रंथों के ज्ञाता भी थे। अर्वाचीन म.प्र. में अलग-अलग कला प्रवाहों के प्रतिनिधि विगत सदी के अग्रणी कला सप्तर्षियों में ये तीनों कलावंत अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

आलेख

मणीपुरी नर्तक के पदचाप से अंकित रूपाकार

– प्रो. राजाराम

विश्व की हरेक विविधता एक तात्विक सूत्र में बंधी है। कलाओं का तात्विक एक्य नई बात नहीं। परंतु इस एक्य का प्रायोगिक प्रदर्शन अपने आपमें मौलिक विचार अवश्य है। प्रस्तुत प्रयोग में चित्रकला एवं नृत्यकला में व्याप्त तात्विक समानता स्पष्ट होती है। प्राचीन भारतीय कलाविदों ने भावाभिव्यक्ति के लिए चित्रकला एवं नृत्यकला में समान आंशिक मुद्राओं एवं भंगिमाओं के कारण परस्पर संबंध बताया था। लेकिन इस प्रयोग द्वारा दोनों कलाओं में व्याप्त अत्यंत ही सूक्ष्म तत्व की ओर संकेत किया जा सकता है।

नर्तक के पाँव ताल के साथ जमीन पर थाप देते जाते हैं। वे कभी आधे कभी पूरे; कभी तिरछे कभी सीधे, कभी आगे और कभी पीछे जमीन पर पड़ते रहते हैं। पांवों की इस छन्दमय गति को हम देखते हैं और थापों को सुनते हैं। लेकिन इस ओर कदाचित् ही ध्यान गया हो कि पदचाप जमीन पर एक छन्दमय रूपाकार बनाते से भी प्रतीत होते हैं। नर्तक के इन्ही पदचापों को यदि जमीन पर अंकित होने दिया गया तो यह विचार प्रायोगिक सत्य बन जाता है।

इसी विचार को लेकर मैने यह प्रयोग किया। चित्रकार की रंग योजना व आकार दृष्टि की सहायता से नर्तक बारी बारी से अलग-अलग रंगों में सिर्फ अपने पाँवों के चिह्न छोड़ता चलता है। पाँवों में रंग लगाकर नर्तक पूरी स्वच्छन्दता से नृत्य करता है। परिणाम एक अत्यंत ही सुन्दर छन्दमय रूपाकार के रूप में सामने

आता है। संलग्न चित्रों में चित्रकला और नृत्यकला के इसी समागम का उदाहरण दर्शाया गया है।

एक है 10 फुट व्यास का वृत्त और दूसरा 20 फुट व्यास का अर्धवृत्त, जिनमें प्रसिद्ध मणीपुरी नर्तक नवचन्द्रसिंह ने बुरूश संघातों के समान रंग-सिक्त पदचापों के साथ मुक्त नृत्य किया। नृत्य के बाद यहाँ-वहाँ कुछ चित्रांकन करके उस अंकन को सुन्दर कल्पना का रूप दे दिया गया। इस प्रयोग का दुहरा महत्व है। एक तो सुन्दर कल्पना का चित्रण और दूसरा जो यह सिद्ध करता है कि चित्रकला व नृत्यकला में छन्दात्मकता का एक ही सूत्र तात्विक सत्य के रूप में विद्यमान है।

(वनस्थली विद्यापीठ में चित्रकर्मी-आलोचक राजाराम ने मणीपुरी नर्तक नवचन्द्रसिंह, एवं अन्य सहयोगियों के साथ 1970 में यह प्रयोग सम्पन्न किया।)

राष्ट्रवादी प्रेरणा के स्त्रोत श्रद्धेय श्री कैलाश नारायण सारंग

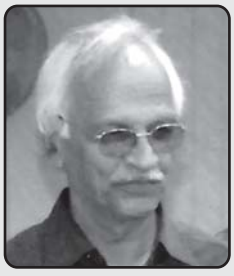

प्रो. राजाराम

नवलोक भारत जिसके संस्थापक सम्पादक हैं श्रद्धेय श्री कैलाश नारायण सारंग का नया अंक हाथ में आते ही मैं सर्वप्रथम इस पाक्षिक का सबसे अंतिम पृष्ठ 'विचार अनुभूति' देखता हूँ, फिर प्रारंभिक पन्नों में 'सचित्र दुनिया को जानें' नाम का पृष्ठ और अंत में शेष पृष्ठों को पलटता हूँ। विचार अनुभूति स्तंभ श्री सारंग का स्वयं का लिखा होता है। इसमें प्रमुख रूप से वे भारत राष्ट्र की समसामयिक राजनीति पर अपनी बड़ी तीखी और बेबाक कलम चलाते हैं। दृष्टांतों से नीर-क्षीर की तरह साफ, राष्ट्रवाद से ओत-प्रोत, कभी उर्दू शायरी से सजी हुई, चुनिन्दा शब्दों से सम्पन्न, श्रेष्ठ साहित्यिक भाषा में राजनीति के पितामह के जैसे ऋषि तुल्य उनके विचार सीधे मन और मस्तिष्क को छूते हैं। एक बार अपनी छोटी सी नातिन अनुभूति की पढ़ाई से जुड़े प्रशासन संबंधी एक मुद्दे से ही वे इसी पृष्ठ पर अपना गंभीर संवाद छेड़ बैठे जो उनके बड़प्पन का साक्षी है और जिसका सामान्य पाठकों तक मार्गदर्शन और लाभ पहुँचा।

साहित्य सेवी मेरी प्राध्यापक पत्नी प्रो. डॉ. श्रीमती बिनय षडंगी राजाराम और मैं उनके खरी राजनीति और भारतीय संस्कृति सम्पुष्ट मनन चिंतनशील साहित्यकार व्यक्तित्व के कायल हैं। जब

विनय उनके श्रेष्ठ रचनाकार इस साहित्यकार पक्ष की दाद देती हैं तो वे बड़ी विनम्रता से अपना राष्ट्रवादी कार्यकर्ता पक्ष आगे कर देते हैं और पलट कर बिनय की ही कविता, निबन्ध, कहानी और अन्य पुस्तकों में उभरी राष्ट्रवाद और चिंतनशीलता की ध्वनि की प्रशंसा के पुल बाँध देते हैं। वे हम दोनों ही की, उन्हीं के अनुसार समर्पित प्राध्यापकी के भी प्रशंसक हैं।

पाक्षिक का दुनिया को जानें पृष्ठ हमें एक बारगी ही श्री सारंग और हमारे कनिष्ठ पुत्र डॉ. कौस्तुभ शर्मा, जो यूरेशियाई क्षेत्रीय वन्य जीव वैज्ञानिक हैं, की याद करा देता है। फौरन उस पृष्ठ की छायाप्रति हम कौस्तुभ को भेज देते हैं जो वन्य जीवों के प्रति श्री सारंग की संवेदनशीलता पर गद्‌गद् ले उठता है। श्री सारंग हमेशा से कौस्तुभ की विस्तार से पूछताछ रखते रहे हैं जिसे उन्होंने बचपन से अपने स्नेह की छाया में विकसित होते देखा है। श्री सारंग हर अंक में इस पृष्ठ पर किसी एक वन्य पशु या पक्षी का लुभावना सुंदर चित्र छापते हैं और साथ में उसके विषय में संक्षिप्त किन्तु बड़ी कौतूहल और जिज्ञासाभरी आकर्षक, अधिकृत जानकारियाँ दी जाती हैं। संकटग्रस्त एवं लुप्तप्राय घोषित प्राणियों के प्रति जन-चेतना जागृत करने की और इस तरह पर्यावरण संरक्षण की श्री सारंग की यह बड़ी स्तुत्य पहल है।

भोपाल में नाइंथ माइल टी.वी. चेनल के शुभारंभ अवसर पर तब इसके डायरेक्टर-टेक्निकल हमारे बड़े पुत्र सौमित्र शर्मा जिन्होंने चेनल हेतु शहर के सम्पूर्ण केबलिंग एवं स्टूडियों निर्माण सहित पूरी यांत्रिक परियोजना को संस्थापित किया, को भी श्री सारंग से आशीर्वाद व सम्मान प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

भारत भवन के अनेकों कार्यक्रमों में श्री सारंग की उपस्थिति यादगार बनी जो मैंने वहाँ रूपंकर निदेशक रहते और श्रीमती बिनय ने भा.भ.न्यासी रहते रूबरू देखी है। एक बार श्रद्धांजलि की पंखुरियाँ नाम से दिवंगत वरिष्ठ कलाकार स्व. भाबेश सान्याल की बड़ी कला प्रदर्शनी का रूपंकर प्रभाग ने आयोजन किया था। श्री सारंग के हाथों प्रदर्शनी उद्घाटन की रस्म अदायगी में उन्होंने एक बड़े थाल में रखी गुलाब की पंखुरियों को अंजुली भर कर प्रदर्शनी दीर्घा के प्रवेश द्वार की ओर उड़ा दिया था। उद्घाटन की यह प्रतीकात्मक रस्म बड़ी अनोखी रही।

रूपंकर प्रभाग ने श्री सारंग की उपस्थिति में, 1857 के भारतीय स्वाधीनता संग्राम के 150वें वर्ष की आयोजन श्रृंखला में बच्चों के लिए एक अनोखी दो दिवसीय चित्रांकन, लेखन कार्यशाला का भारत भवन में आयोजन किया था। बच्चों की समझ लायक संग्राम का परिचय स्वयं श्री सारंग ने दिया। बच्चों ने 150 फुट लंबे जमीन पर फैलाये गए ड्राइंग शीट रोल पर, कल्पनापूर्ण व सुसंयोजित, किसी ने चित्र बनाया तो किसी ने कविता, कहानी लिखी बाद में भारत भवन में प्रदर्शित सम्मिलित सामूहिक अभिव्यक्ति के इस विशाल चित्र को दर्शकों की भरपूर सराहना मिली।

चित्र-शिल्प आदि रूपंकर कलाओं पर श्री सारंग की गहरी पकड़ मुझे हमेशा आश्चर्यचकित कर देती है। मैं अपनी बनाई किसी भी कृति में, शबीहों तक में, किसी खास विचार का पुट जरूर देता हूँ। मेरी बनाई ऐसी कोई कृति यदि श्री सारंग को देखने में आती है और विषय स्पष्ट करने मैं आगे बढ़ता हूँ तो वे मुझे ऐसा करने से रोक देते हैं। गौर से मेरी कृति देखने के बाद वे जो अपनी प्रतिक्रिया बताते हैं तो मैं ताज्जुब कर जाता हूँ कि उस कृति के मर्म तक वे बिना चूक सौ टका सही पहुंच जाते हैं।

1990 में श्री सारंग से हमारे पारिवारिक संबंध बने। परिचय का निमित्त बना भारत भर में तब बहुचर्चित बारा की टोली नाम से महाविद्यालयीन मेरे विभाग की श्रमशील, मेधावी बारह स्नातकोत्तर ललित कला छात्राओं की सृजनात्मक चित्र प्रदर्शनी का स्थानीय कला दीर्घा में महाविद्यालय द्वारा आयोजन जिसमें श्री सारंग की सुपुत्री सुश्री उपासना की भी सहभागिता थी और जो अब भोपाल दूरदर्शन में विजुअल आर्टिस्ट के रूप में कार्यरत हैं।

यह जानकर बड़ा सुखकर प्रतीत होता है कि समय-समय पर श्री सारंग की निजी संस्थाओं के अनेकों सांस्कृतिक, बौद्धिक आयोजनों में उनका भरा-पूरा परिवार जिसमें भाई, दो पुत्र, तीन

पुत्रियाँ, बहुएं दामाद आदि शामिल होते और सब मिलकर बड़ी तेजी से उन्हीं की भाँति समर्पित सेवाभाव से कामयाब हो रहे हैं।

स्नेह से सबके प्रति हमेशा स्वागतातुर श्रद्धेय स्व. श्रीमती प्रसून सारंग के रहते उनके संग कदम से कदम मिलाकर और अब उनकी स्मृति और प्रेरणा से श्री सारंग अपने राजनैतिक और सामाजिक सक्रिय जीवन के 75 वर्ष की वय पर आ पहुँचे हैं। एक कुशल माली की कल्पना से संवारी और विकसित की गई बगिया की भाँति प्रसून जी सारंग ने अपने इस भरे-पूरे परिवार को सँवारा और उसे चौकस संरक्षण प्रदान किया। श्री सारंग के अमृत महोत्सव के इस पावन पर्व के अवसर पर हम प्रभु से यही प्रार्थना करते हैं कि एक सफल और सार्थक जीवन की मिसाल के रूप में वे हमेशा की तरह सबके पथ प्रदर्शक और राष्ट्रवादी चिंतन के प्रेरणा स्त्रोत बने रहें। मेरे साथ श्रीमती बिनय, श्री सौमित्र शर्मा, डॉ. कौस्तुभ शर्मा हम समस्त परिवारजन इस मौके पर श्रद्धेय श्री कैलाश नारायण सारंग के स्वस्थ एवं सक्रिय दीर्घायु जीवन की मंगल कामना करते हैं - जीवेत शरद: शतम् की हार्दिक कामना करते हैं।

इस प्रेरणादायी प्रसंग के बहाने से आदरणीय श्री कैलाश नारायण सारंग जी एवं प्रतिभा सम्पन्न लेखक प्रो. राजाराम की स्मृतियों को कला समय परिवार की भावपूर्ण श्रद्धांजलि!

आलेख

कला आलोचना और 'कला प्रसंग'

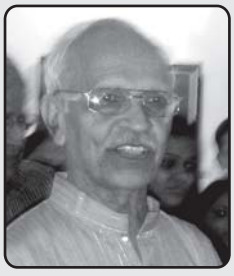

प्रो. राजाराम

(भारत भवन भोपाल में कला आलोचना के तीन दशक सेमिनार में 'कला आलोचना बनाम खबरनवीसी' शीर्षक से 15-2-87 को पढ़ा गया आलेख।)

देश में कला आलोचना की स्थिति इतनी बद्तर है कि क्षेत्रीय स्तर पर तो खबरनवीसी ही उसका आसन ले बैठी। कला प्रसंग पर जिसने खबर लिख दी वही कला आलोचक बन गया। पाठक को खबर मिली, कलाकार को अखबार, पत्रिका में छपा अपना नाम, और बस कला आलोचना का काम पूरा हुआ।

बेहतर होगा मैं इसे काम तमाम होना कहूँ। पुस्तक रूप में प्रकाशित 1977 में बड़ौदा के एक सेमिनार की सामग्री में शामिल मेरे अंग्रेजी आलेख 'दी हिस्ट्री ऑफ आर्ट एण्ड दी रोल ऑफ आर्ट क्रिटिसिज्म' में मैंने रपट, समीक्षा और कला आलोचना को विस्तार से स्पष्ट किया है। आज कला आलोचना प्रचार का माध्यम बन कर रह गई है। कलाकार खुश है कि उसका नाम छपा। संयोजक खुश है कि उसकी दुकानदारी का विज्ञापन हुआ, और खबरनवीस खुश है कि उसने कला आलोचना लिखी।

विगत वर्ष में कला आलोचना की कोई स्पष्ट स्वरूप विकसित हो कर पाठक के सामने नहीं आया। उसकी कोई पहचान नहीं बन पाई जिससे प्रेक्षक समाज परिचित हो पाता। क्या कला आलोचना को उतनी गंभीरता से लिया गया जितना साहित्य आलोचना को? और जब कला आलोचना को ही हल्केपन से लिया गया तो उत्तम प्रचलित किन्ही धाराओं की बात करना कम से कम हमारे भारत देश में तो अभी दूर की कौड़ी लाने जैसा है। हमेशा यही शिकायत की गई है कि आधुनिक भारत में सार्थक कला आलोचना का जन्म होना अभी प्रतीक्षित है।

विगत दशकों में कला आलोचना के सम्मुख प्रस्तुत अन्दरूनी और बाहरी खबरों का मैं यहाँ विचार कर रहा हूँ ताकि आज देश में प्रचलित कला आलोचना का जायजा लिया जा सके। विचारधारा, प्रकाशन, भाषा आदि के इतने और भी कई अहम सवाल हैं जिन पर अलग से विचार किया जा सकता है।

कला आलोचना के कोण से कला क्षेत्र की ऐसी अपंग स्थिति को भाँप कर खबरनवीस और लफ्फाज कला आलोचक की हैसियत से इस क्षेत्र पर टूट पड़े हैं। पत्र, पत्रिका, रेडियो, दूरदर्शन से जुड़ा आदमी स्वाभाविक ही शब्द क्षेत्र का आदमी होता है। इस एकाधिकार से वह हर कला विधा पर कलम चलाने का दुस्साहस करता है। यदि साहित्य को जानता है तो हर कला विधा को जानने का भ्रम पालता है। रूपंकर कलाओं के बारे में अपनी शून्यता में से खूब भभकता है। खूब लिखता है और खूब बोलता है। रूपंकर कलाओं पर कहर बरसाता है। प्रेक्षक-समाज को गुमराह करता है।

कलाकार कहता है कि वह बोलता नहीं। न लिखता ही है। शब्द उसका माध्यम नहीं। उसकी भाषा है रंग। पत्थर। उसे जो कहना था वह अपने शिल्पांकन या चित्रांकन में उसने कह दिया। शब्द में कुछ कहने की उसे जरूरत नहीं। और फिर भी शब्द में वह फँसता है। शब्द से उसको प्रचार मिलता है। उसकी कलाकृति का बाजार बनता है। विज्ञापन का जमाना है। कैसे इस प्रचार माध्यम को वह अनदेखा कर दे। शब्द से उसकी मदद करने वाला यदि कोई है तो कलाकार कला के प्रति कैसी ही भ्रामक बाते नजर अंदाज करके उसका मुहताज बन बैठता है।

यह कलाकार की कमजोरी है। यदि यही सब कुछ वह चलते रहने देता है तो कला के अहित और समाज में रूपंकर कलाओं के प्रति भ्रान्तियाँ फैलाये जाने का वह जिम्मेदार है। कब टूटेगी कलाकार की चुप्पी? कब फूटेगा उसके विरोध का स्वर? इस पीढ़ी के बारे में उपरोक्त संदर्भित आलेख में मैंने लिखा है : It is discouraging that it is lacking the enthusiasm for a genuine Art Criticism. It is tragic to note that the need to remedy all these diseases is not being felt.

बहुत हुआ शब्द से कलाकार का कतरना। समय की

जरूरत को देखते हुए अपनी पारंपरिक चुप्पी तोड़कर उसे बोलना और लिखना चाहिये। क्यों नहीं निभा सकता कलाकार दोनों दायित्व ? कुछ साहित्यकार आलोचक भी तो होते हैं।

मैं चाहूँगा कि कलाकार कला और अपनी रचना के बारे मैं खुद बोले और लिखे। वही तथ्यात्मक होगा। न हो भले ऊँची साहित्यिक भाषा। बोल-चाल की अपनी टूटी-फूटी भाषा में लिखें। आलोचना के नाम पर प्रचलित उस साहित्यिक लफ्फाजी से यह भाषा बेहतर होगी जो प्रेक्षक में भ्रान्तियाँ भर रही है। यह उस शब्दजाल है बेहतर होगी जो कला जगत की जानकारी के बिना लिखा जा रहा है। जो रूपंकर कला की निजी पहचान से बहुत दूर है। जो इन कलाओं के निजी सोच से, सिद्धान्तों से अनभिज्ञ है। उन हवाई विवरणों से यह टूटी-फूटी भाषा निश्चित रूप से कहीं अधिक अर्थपूर्ण होगी जो रूपंकर संवेदना से शून्य है।

शब्द क्षेत्र के लोग रूपंकर कलाओं के गंभीर से गंभीर प्रश्नों को व्याख्या में ऐसी काल्पनिक उड़ाने भरते हैं जिनका तथ्यों से दूर का भी रिश्ता नहीं। इन लोगों को न आधुनिक कला के सैद्धान्तिक विवेचन की जानकारी है न कला इतिहास की। ऊँचे मंच से बोलते हैं। जानेमाने नाम होते हैं। आम पाठक उनके कथन को स्वीकार कर लेता है। वह दिग्भ्रमित होता है।

उदाहरण के लिए अमूर्त्तन का ऐसा मुद्दा है जिसे ये साहित्यकार आधुनिक कला का पर्याय मान बैठे हैं। फिर ये अमूर्त्तन की ऐसी बेसिर पैर की व्याख्याएं देते हैं जिनका आधुनिक कला के अन्तर्गत अमूर्त्तन के घटनाक्रम से कोई वास्ता नहीं। एक दशक पूर्व म.प्र. कला परिषद के प्रकाशन पूर्वग्रह में, जो अब भारत भवन से प्रकाशित होता है, असद जैदी को एब्स्ट्रैक्ट कला की दिशा में ले जाने के लिए मुझे लंबी बहस छेड़नी पड़ी थी।

ताजा उदाहरण 4 से 10 जनवरी 1987 के दिनमान अंक मैं विष्णु नागर की कलम से 'लोगों को संस्कृति से बचाओ' शीर्षक आलेख में देखने को मिला, जिसमें है आधुनिक नागर, लोक, आदिवासी अमूर्त्त कला आदि पर दुधारी चलाते हैं। रूपंकर कलाओं से जुड़े ऐसे ही प्रश्नों पर आए दिन इस प्रकार के भ्रामक विवेचन प्रकाशित और प्रसारित होते रहते हैं। कला आलोचना को 'पास्टाइम' समझ लिया गया है।

साहित्यकारों का यह समुदाय रूपंकर कलाओं के प्रति समाज को गुमराह करने वाला है। दूसरा वह साहित्यकार समुदाय है जिसने रूपंकर के लिए सार्थक और संवेदनशील लेखन कर्म किया। कलाकर्म अथवा कला इतिहास के लेखन और साथ-साथ में कला आलोचना भी लिखने वाले लोग कम ही हैं। कला आलोचना की विशेषज्ञ शिक्षा का विकास भी बहुत पुराना नहीं है जिसे प्राप्त करके डॉ. एल. पी. तिहार, गीता कपूर आदि जैसे इनै गिनै प्रतिष्ठित नाम उभरे। शेष तो सारी जिम्मेदारी साहित्यकार ही झेलते रहे। पिछले तीन दशकों में इनमें से कुछ का योगदान बहुत ही सराहनीय रहा। उदाहरण के लिए चार्ल्स फाब्री, निसीम पज़किस, रिचर्ड बार्थोलोम्यु आदि का नाम लिया जा सकता है जो संभवत: मूल रूप में साहित्य से जुड़े थे। उनका कला लेखन जाहिर करता है कि वे रूपंकर कलाओं को समर्पित थे। उनका लेखन रूपंकर तत्वों के प्रति पूर्ण सजग और संवेदनशील था। न वह लेखन कला जगत की जानकारियों से दूर है। न उसमें कला इतिहास की भूले हैं। उत्समें कलादर्शन का अपरिचय भी परिलक्षित नहीं होता।

साहित्य से रूपंकर कलाओं का कोई बैर नहीं है। अलबत्ता तो दोनों अपने सैद्धान्तिक अध्ययन के लिए सरीखे साहित्य का अनुसरण करते हैं। जिन सौन्दर्य शास्त्रीय सिद्धान्त की साहित्य का विद्यार्थी शिक्षा लेता है उनमें से अधिकांश रूपंकर कला के अध्यवसायी द्वारा भी पढ़े जाते हैं। संगीत, नृत्य, नाट्य के विद्यार्थी भी वही पढ़ते हैं।

कला आलोचना के विशेषज्ञ अध्ययन में और साहित्य आलोचना में पढ़ा जाने वाला सैद्धांतिक साहित्य अधिकांश एक समान है। आधुनिक कला के आरंभिक चरण में विभिन्न कला विधाओं के रचनाकारों, सिद्धान्तवादियों के साथ एमिल जौला, विलियम अपोलिनैर, आन्द्रे ब्रेतौं, तोमासो मारीनेली, त्रिस्ताँ जारा आदि जैसे प्रखर साहित्यालोचक कवि भी बहुत करीब से सक्रिय है। यह सानिध्य सौजन्यतावश नहीं था। कलाओं से जुड़ी गंभीर चिंताएँ उनके सामने थी जिन पर वे विचार करते थे। इस सानिध्य के परिणाम आवांगार्द कला आन्दोलनों के रूप में हमारे सामने है।

कलाओं में परस्पर अन्तर्निर्भरता तो है लेकिन उनकी अपनी निजी पहचान भी है। हर स्तर पर एक डण्डे से सबको नहीं हाँका जा सकता। साहित्य के सारे मूल्य रूपंकर कलाओं पर नहीं थोपे जा सकते। जो साहित्यकार इन कलाओं पर कलम चलाने का दुस्साहस करते हैं वे रूपाकारों में केवल साहित्य टटोलते हैं। वे अपनी समझ से वैसा कुछ ढूँढ भी लेते हैं और लिख डालते हैं। हर किसी अमूर्त काम में वे लहू देख सकते हैं, पसीना देख सकते हैं, आम आदमी की कशमकश ताड़ सकते हैं और चाहें तो बसंत की छटा या कोई और साहित्यिक काव्यात्मक अनुभूति वे उस कलाकृति पर आरोपित कर सकते हैं। पाठक भी उस साहित्यिक अनुभूति में

डुबकी लगाकर चित्र या शिल्प के रूपाकार को आत्मसात कर चुकने का झूठा संतोष पा जाता है। रूपंकर संवदनाएँ जहाँ की तहाँ धरी रह जाती हैं। उनके प्रति प्रेक्षक की नजर तैयार नहीं हो पाती। कलाकृति और सामाजिक के बीच आलोचक रूपी सेतु की बात कर्णप्रिय मुहावरा बन कर समाप्त हो जाती है।

इसलिए जरूरी है कि रूपंकर कलाओं पर लिखने वाले में रूपंकर तत्वों के प्रति संवेदनशीलता हो। इन कलाओं की निजी पहचान, उनके सोच, सिद्धान्तों, कला इतिहास और कला जगत की पर्याप्त जानकारी होना उसमें जरूरी है।

इन बाहरी खतरों के अलावा कई आन्तरिक खतरे भी पिछले दशकों में बड़ी विकरालता के साथ उभर कर कला आलोचना के सामने आयें हैं। ये खतरे तरह-तरह की दलबन्दियों के हैं जो कलाक्षेत्र में सड़ाध भर रहे हैं। दलों के सदस्य परस्पर संबंधों की राजनीति के आधार पर कलाकृतियों को स्वीकार या अस्वीकार करते हैं। कला आलोचना भाण्ड मनोवृत्ति में सीमित होकर एक या दूसरे दल को शिकार बन जाती है। दलों के इन हथकण्डों को बेनकाब करने में वह कमजोर पड़ गई है।

इस दलबन्दी में सबसे खतरनाक है राजनीतिक खेमापरस्ती, जो भयानक प्लेग की तरह तेजी से फैलती जा रही है। कला आलोचक भी इन खेमापरस्तों के बन्धु-बाँधव बन गए हैं और हवा भरी जाने पर चाहा गया स्वर छेड़ने लगते हैं। किन्हीं खास राजनीतिक झुकाव के कला सक्रिय लोग गैंग बनाकर योजनाबद्ध तरीके से बड़ी नैनी नजर के साथ लेकिन बड़े धैर्य से कला की आड़ में दूरगामी राजनीतिक हित साधने में एजेन्ट की तरह काम कर रहे हैं। कला मूल्यों की जगह उन्हें अपने राजनीतिक भाई-चारे की अधिक चिंता रहती है।

बड़ी सूझबूझ से ये नये-नये पैंतरे निशिचत कर के आगे बढ़ते हैं। ये दूसरे कलाकारों के बीच परस्पर टकराव पैदा करेंगे। दो जगहों के कलाकार समुदायों के बीच जहर भरेंगे। और तो और ये दो पीढ़ियों को एक दूसरे से काट देने की हिमाकत करने में भी पीछे नहीं रहेंगे। ताकि केवल इनका हस्तक्षेप फलफूल सके। अवसर उन्हीं के, सारी रियायतें उन्हीं की। उनकी नजर में जो श्रेष्ठ है उसका मानक भी स्वयं उन्हीं की सर्जनात्मकता होती है। प्रजातंत्र और विचार तथा संरचना स्वातन्त्र्य की बात करके भी इन को न दूसरे का अस्तित्व स्वीकार्य है, न विचार, न रचना। दूसरों के प्रदर्शन, प्रकाशन पर इनकी सामंती शर्तें होंगी। उनकी रचना को तोड़ा-मरोड़ा जाएगा। उसमें काट-छाँट की जाएगी। उसको विरूप किया जाएगा, छवि बिगाड़ कर पेश की जाएगी। या उन हस्तक्षेप को इन सामन्त हस्तक्षेप के सामने किसी और प्रकार का वैचारिक हस्तक्षेप स्वीकारना पड़ेगा। क्या यही है आलोचना की स्वतन्त्रता ?

सारी सार्थक रचनाशीलता और श्रेष्ठता के अधिकारी ये स्वयं कहलाना चाहते हैं ताकि भविष्य की नई व्यवस्था का पूर्ण श्रेय वे हड़प सके। भले इस उपलब्धि में उन्हें शोषण, दमन, चोरी, सत्ता का दबाव, प्रतिभा हनन किसी भी हथियार का उपयोग क्यों न करना पड़े। पाँव में हॉकी मार कर खेल जीतने का करिश्मा कोई इनसे सीखे। छापामारों की तरह किसी भी हथियार का उपयोग करने में कलाक्षेत्र में ये नहीं चूकते। स्वयं को स्थापित करने और अपना बाजार बनाने के लिए ये आसानी से कला आलोचना को ठग लेते हैं। कलाक्षेत्र के लिए यह घातक है। यह कला आलोचना के सामने एक बड़ी चुनौती है। ऐसे दलगत प्रदूषणों से उसे बचाया जाय।

विज्ञान तो चाह मुताबिक मनुष्य-नस्ल तैयार करने में सक्षम होकर भी अभी तक विवाद के घेरे में है। परन्तु इन हस्तक्षेप ने तो अपनी विचारधारा के जीन्स डालकर नयी व्यवस्था के अनुरूप मनुष्य-नस्ल बनाना प्रारम्भ भी कर दिया, जो भविष्य की हर तरह की जिम्मेदारी अपनी स्वयंसिद्ध और स्वघोषित श्रेष्ठता के आधार पर सम्हाल सके।

भावी व्यवस्था की तरफ ही देख रहे हो ऐसा नहीं है। ये इतिहास में हेराफेरी भी करते हैं। फ्रांस में आयोजित भारत महोत्सव के लिए भारतीय आधुनिक चित्रकला पर बनी लंबी फिल्म का स्क्रिप्ट लिखते वक्त शांतो दत्त, जो बैन्द्रे को प्रदत्त कालिदास सम्मान जूरी के एक सदस्य भी है, बड़ौदा स्कूल को भूल गए। प्रोफेसर नारायण श्रीधर बैन्द्रे को भूल गए। उस बैन्द्रे को भूल गए जिसने इस अन्तरराष्ट्रीय कला शिक्षा केन्द्र को बनाया। बड़ौदा स्कूल और बेन्द्रे की जड़े खोदने की नाकामयाब कोशिश में यह चूका नहीं। इस भूल को अनायास हुई त्रुटि मान लिया जाय ? अपनी छवि उभारने के लिए इनको जो थर्ड ग्रेड प्रवृत्तियाँ अपनानी पड़ रही है, क्या बड़ौदा, शांति निकेतन आदि संस्था को भी वही करना पड़ा था ? इन केन्द्रों की छवि अपनी स्वच्छ उपलब्धियों से अपने आप बनी। रातोंरात वे महान नहीं बन गई। क्रमशः बनी। उन्हें न प्रचार माध्यमों की बैसाखियों लेनी पड़ी, न अपनी छवि बचाने के लिए प्रेस की नाकेबन्दी करनी पड़ी। ऐसा सब कुछ करना पड़ रहा है।

अलग-अलग राजनीतिक व्यवस्थाओं से प्रेरित सौन्दर्य शास्त्र हो सकते हैं, जैसे कि हैं भी। समाजवादी रूस में समाजवादी सौन्दर्यशास्त्र है। लेकिन कलाकृति की श्रेष्ठता का निर्धारण इस प्रकार

के राजनीतिक विचारधारा से प्रेरित सौन्दर्यशास्त्र के आधार पर नहीं हो सकता। किसी कलाकृति में कोई राजनीतिक विचारधारा अभिव्यक्ति का विषय तो बन सकती है परन्तु वह मूल्यांकन का मापदण्ड नहीं बन सकती।

इसलिए यह मुझे हास्यास्पद लगता है यदि अमूर्त्तन को पूंजीवाद कला कहा जाय, और आधुनिक कला के सारे आवांगार्द प्रयोगों से किसी समुदाय को वंचित रखा जाय। मनुष्य जाति की रचना क्षमता पर यह अत्याचार है। दूसरी तरफ यह भी न्याय संगत नहीं है कि विश्व की आधुनिक कला इतिहास पुस्तकों में रूस केआधुनिक इंप्रेशनिस्ट शैली के या अन्य वृहदाकार भव्य स्मारकों को कोई स्थान न मिले। मुझे यह निर्विवाद लगता है कि रूस के अर्वाचीन स्मारकों में वही भव्यता, सौन्दर्य, विशालता और स्मारक तत्व विद्यमान है जिसके लिए मिश्र के पाँच हजार साल प्राचीन शिल्प और स्मारक सुविख्यात हैं। कला निर्माण में स्मारक तत्व और उसमें आकार की विशालता विश्व कला को आधुनिक रूस की बेजोड़ देन हैं।

अत: कला के मूल्यांकन में किसी भी प्रकार का राजनीतिक विचारधारा प्रेरित रवैया आड़े नहीं आना चाहिये। हर प्रकार की विचारधारा को सह-अस्तित्व के साथ रहने का पूरा अधिकार है। कला आलोचना की संतुलित रहकर कला के आन्तरिक मूल्यों की रक्षा करनी चाहिये। संदर्भित आलेख में मैंने लिखा है :

The art critic has to depend on facts. He has to familiarise himself with various art-doctrines. He has to search the truth and pass a real judgement, Primarily he should care for the intrinsic values of art. Only then he is faithful to his jobs.

कला आलोचना की अनेक समस्याएँ हमारे सामने हैं। प्रदर्शनी आयोजन के, प्रतियोगिताओं के, कलाकृति मूल्यांकन के, संप्रेषण और सर्जन के, और भी कई विचारणीय मुद्दे बिना सुलझी पहेली की तरह हरदम हमारे सामने हैं। कला प्रदर्शनियाँ और प्रतियोगिताएं इस समय एक बहुत ही गन्दा खेल बनी हुई हैं।

बाल कला, नागर, आदिवासी लोककलाओं के आमजन रोज ही हमारे आसपास होते रहते हैं। परन्तु इनसे जुड़े बड़े टेढ़े और संवेदनशील प्रश्नों की हम लगातार अनदेखी कर रहे हैं। अभी के वर्षों में देश-विदेश में भारतीय आदिवासी लोक रूपंकर कलाओं को खूब उछाला गया है। विदेश में बड़े-बड़े उत्सव आयोजित हुए। पश्चिम के लिए आदिवासी, लोककलाओं का मानक सौ साल पुराना पड़ चुका भले इसे हम नया कर रहे हों। क्योंकि आधुनिक कला की शुरूआत में ऐसे गैर-पश्चिमी कला मानक ही आये थे। इन आदिवासी लोककलाओं से जुड़ी ज्वलंत समस्याओं पर बहस करने के लिए मुझे याद नहीं पड़ता यदि इन दिनों मैं एक भी गभीर संवाद हुआ हो।

अलबत्ता तो आधुनिक भारतीय कला में उस तरह के प्रयोग ही नहीं हुए जिन्हें अन्तराष्ट्रीय आधुनिक कला आन्दोलनों में भारत का योगदान कहा जा सके। पिछले दिनों प्रतिष्ठित चित्रकार रामकुमार के इससे मिलते-जुलते विचार को पढ़ा मुझे पढ़कर खुशी हुई।

आयातित विचार और सुझाव ही हमें स्वीकार्य होते हैं। हेवैल ने कहा तो अजन्ता की नकल उतारने लगे। समकालीन पश्चिमी कलाविदों ने चाहा तो हम अन्तर्राष्ट्रीय कला की बात छोड़कर भारतीय जड़ों से जुड़ने की बात करने लगे। कला आलोचना को चाहिए कि वह स्वतन्त्र चिंतन पर केन्द्रित हो।

विडंबना है कि हमारे देश में कला आलोचकों और कलाकारों के बीच कोई सक्रिय संवाद नहीं है। खुद आलोचकों का कोई सामूहिक मंच नहीं है, कोई प्रकाशन नहीं है। कलाकारों और कला आलोचकों के बीच कहीं-कही पारम्परिक वैमनस्य भी है। कलाकार कला आलोचक के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिन्ह लगता है जबकि खुद उस कलाकार में कला आलोचक व्यक्तित्व उपस्थित रहता है। कहा जाता है कि कलाकार स्वयं अपनी कृति का प्रथम और सबसे बेहतरीन आलोचक होता है। तब ही तो वह एक के बाद दूसरी ऊँची छलांग लगाता चलता है।

मैं समझता हूँ आदिम युग में चट्टान पर पहली खरोंच लगाते ही आदमी के मन में आलोचक व्यक्तित्व जन्म ले चुका होगा। जाहिर है कि इसीलिए सदियों से सृजनात्मकता के क्षेत्र में आलोचक का रचनात्मक योगदान सराहा गया है। यह बात दूसरी है कि कुछ आलोचक मार्ग के रोड़े भी सिद्ध हुए। लेकिन इन अपवादों सै कला आलोचक महत्वहीन नहीं हो जाता।

जरूरी है कि भारतीय कलाकार कला आलोचकों के प्रति अपनी मनोवृत्ति बदले। उनके महत्व को स्वीकारें। कलाकारों और कला आलोचकों के बीच अधिक से अधिक परस्पर संवाद के अवसर बनना जरूरी हैं जो परस्पर विश्वास से संभव है। इससे सृजनात्मकता को नये और बेहतर मोड़ मिल सकेंगे। वर्तमान दिशाशून्यता की सी स्थिति समाप्त होकर रचनाशीलता को तब शायद कोई नयी गति मिले।

■

आलेख

सर्जन और अभिव्यंजना

प्रो. राजाराम

क्या है सर्जन (क्रिएशन) और क्या है अभिव्यंजना (एक्सप्रेशन)? यह स्वीकार लेने पर भी कि सर्जन में अभिव्यंजना है और अभिव्यंजना में सर्जन, सर्जन और अभिव्यंजना के फर्क को विगत दिनों भोपाल में कार्यरत 'कलाकार शिविर' के चित्रकारों की रचना-प्रक्रिया को देखकर भी विचारा जा सकता है।

शांति दवे नरीननाथ (दोनों दिल्ली से) और वसन्त आगाशे (इन्दौर) शुद्ध सर्जन में संलग्न थे। सुरेमा चौधरी (भोपाल) का भी वही लहजा था। श्रेणिक जैन, हरि भटनागर (दोनों जबलपुर से), सचिदा जागदेव (भोपाल), चन्द्रशेखर काले (उज्जैन), यूसुफ (ग्वालियर), करणसिंग (इन्दौर) और शिविर में आकस्मिक चित्रकार मंजूषा नीलेकर किसी विषयवस्तु से प्रारंभ करके भी अंततः सर्जन को ही अपना ध्येय बनाते। इनके द्वारा प्रयुक्त अभिप्राय (मोटिक्स) सज्जात्मक होते जो नए रंगाकारों के सर्जन में काम आते।

शुद्ध सर्जन के पक्षधर में चित्रकार उस पुराकथा की याद दिलाते कि आदि सृजन के समय ब्रह्मा मिट्टी से नित-नूतन, रूपाकार घड़ता रहा था। शांति दवे रचित केन्वास-समूह सप्तक प्रवाह की रचना प्रक्रिया में क्रमशः प्रगति देखकर यही प्रतीत होता जैसे धरती में पड़े बीज से अंकुर फूटा, कोपले बनी, बढ़ी, सुर्ख हुई, शाखाएं फूटी, पत्तियां और कली निकली और अंततः वे सातों लघुआकारी केन्वास सुन्दर, पुष्पित पौधों की तरह लहलहा उठे। रंगों की ताजगी और मोटे पोत (टेक्श्चर) के इन केन्वासों में अद्‌भुत जैविक अभिवृद्धि (ऑर्गेनिक ग्रोथ) और जैविक एक्य (ऑर्गेनिक युनीटी) दिखाई दिया। इस प्रकार इन नए रंगाकारों का सर्जन हुआ। प्रकृति की रचना, प्रक्रिया की समानान्तर प्रक्रिया से नए रूपाकार गढ़े गए।

दवे, नाथ, आगाशे और चौधरी ने अंकन के पूर्व अपने और केन्वास के बीच मोटे रूप में किसी तीसरी चीज की अवधारणा नहीं की। केन्वास रूपी शान्त जल में प्रथम रंगाघात की कंकरी फेंक कर हलचल पैदा कर दी गई या कहिए पहले रंगाघात के द्वारा केन्वास रूपी स्थिर तराजू को डुला दिया गया। पहले रंगाघात से केन्वास की निस्पन्दना भंग करके फिर ये चित्रकार सज्जात्मक ध्येयों (डेकोरेटिव्ह एण्डस्) के साथ, अपने व्यक्तित्व के अनुरूप सर्जन की दिशा में आगे बढ़े।

श्रेणिक जैन, हरि भटनागर, नामदेव, काले यूसुफ, करणसिंग और नीलेकर के काम में विषयवस्तु जैसा कुछ होकर भी वह निमित्त मात्र से अधिक कुछ नहीं होता। विषयवस्तु से शुरू करके या तो चित्रकार अमूर्त्तन (एब्स्ट्रेक्ट) की ओर बढ़ गया और यदि अंत तक 'परिचित' कुछ आभासित भी हुआ तो वह बहुत अर्थ नहीं रखता। उस विषय का संदर्भ आवश्यक नहीं होता। वह बात बहुत अर्थ नहीं रखती कि शांति दवे अपने उत्कृष्ट अमूर्त्तनों से एक कथानक और संगीत को जोड़ें या न जोड़ें। क्योंकि शांति दवे ने अपने अमूर्त्तनों से बाद में एक कथ्य और संगीत को भी जोड़ दिया था।

सर्जन की भी कलाकार में एक तड़प होती है। कलाकार के भीतर की उस तड़प की ही सर्जन अभिव्यक्ति है। सृजनात्मक आवेग को कलाकार अपने भीतर से बाहर उड़ेलना चाहता है। सर्जन की पुलक से विभोर होकर वह रचनात्मक प्रक्रिया में संलग्न होता है। वह कुछ रचना चाहता है और नए रूपाकारों का अन्वेषण करता है।

इन रूपाकारों के संप्रेषण में कलाकार का ऐसा कोई आग्रह नहीं होता कि उनमें यह या यह वस्तु देखी जाए। ये रूपाकार स्वयं वस्तूवत् (आब्जेक्ट इन देमसेल्व्ज) बनकर अपने सौन्दर्यपान किए जाने के लिए दर्शक को आमंत्रित करते हैं। जैसे कि एक सुन्दर पुष्प या दृश्य दर्शक को आमंत्रित करता है। इसके बाद स्वरूप का सौन्दर्यपान ही इनके अस्तित्व की कुल सार्थकता होती है। इनकी विषयवस्तु जैसी कोई अलग चीज से होकर स्वयं वह रूपाकार ही विषयवस्तु होता है। ये कृतियां वस्तुपरक (ऑब्जेक्टिव्ह) दृष्टिकोण की होती है। ये कहती हैं वस्तुवत् हम सामने हैं और चक्षुओं से हमारा

भोग करो। हमारा आनन्द लो। हमसे परे कोई और अर्थ ढूंढने या किसी अदृश्य कल्पनालोक में जाने की कोई जरूरत नहीं।

धरती में से सरसों फूटती है, बहाव में पेबल बनते हैं और ये कलाकार कलावस्तु बनाते रहते हैं। इनके द्वारा दृष्टिरंजक रूपाकारों का सर्जन होता है।

इन रूपाकारों से भिन्न कुछ ऐसे रूपाकार रखे जाते हैं जो अपने से परे एक अर्थ ध्वनित करते हैं। यहां एक खास विषयवस्तु की स्वीकृति होती है जिसका चाक्षुष रुपान्तरण (विजुअल ट्रान्सफॉर्मेशन) किया जाता है। कथा कवित्त, स्वर लहरी जिन्दगी का दौर, कुर्सी, जूता, फूलदान, कोई रूप, कोई विचार, भावना ऐसा कुछ भी हो सकता है जिसके प्रति कलाकार प्रतिक्रिया करता है। इस प्रतिक्रिया की कृति में अभिव्यक्ति को ही अभिव्यंजना कहते हैं। ऐसे में रूपाकार का हर हिस्सा उस विषय वस्तु को ध्वनित या अभिव्यक्त कर रहा होता है। यहाँ विषयनस्तु ही रूपाकार की संरचना का कारण है।

अभिव्यंजना के भी पचासों तरीके कलाकार द्वारा खोजे जाते हैं किन्तु ऐसी रचना की सफलता इस बात में हैं कि उसका कथ्य कितना रचनात्मक और कितना चाक्षुष स्वावलम्ब धारण कर पाता है। प्राचीन भारतीय रूपादर्श में भृकुटि के सौंदर्य का धनुष से साम्य दिखा कर चित्रों और मूर्तियों में उसकी अनूठी अभिव्यंजना प्रस्तुत की गई है।

राजाराम (ग्वालियर) कल्याणप्रसाद शर्मा (रायपुर) शिविर में प्रवासी चित्रकार नरेन्द्र नागदेव और आकस्मिक बाल चित्रकार कबीर के केन्वास अभिव्यंजना में ही उदाहरण थे। राजाराम ने किन्हीं खास गायकियों के मूड में जन्में बिम्बों की, कल्याण प्रसाद शर्मा ने कार्यरत मनुष्याकृतियों की, नरेन्द्र नागदेव ने एक विचार की और कबीर ने एक दृश्य की अभिव्यंजना की थी। राजाराम और नरेन्द्र नागदेव के काम अधिक से अधिक चिंतनपरक (सब्जेक्टिव्ह) किस्म के थे जबकि कल्याणप्रसाद शर्मा और कबीर के कामों में स्थूल आकृतियों की सहायता से कृतियों को अधिक से अधिक वर्णनात्मक बताया गया था ।

अभिव्यंजनात्मक कृतियों में कथ्य की अवहेलना उनके सम्पूर्ण सम्प्रेषण के साथ अन्याय बरतना होता है। वह विषयवस्तु ही तो प्रेरक बिन्दु है जहाँ से रचना प्रक्रिया का प्रारम्भ शुद्ध सर्जन से भिन्न यहां प्रेरक विषयवस्तु के इर्द गिर्द ही सृजन क्रिया आगे बढ़ती है और अन्त तक विषय वस्तु का कृति से अलगाव नहीं होता है। ऐसी कृतियों की पूर्ण सार्थकता उस विषयवस्तु को अभिव्यंजना में ही है।

इस अर्थ में निश्चयात्मक रूप से सर्जन अभिव्यंजना से फर्क रखता है। ये दो भिन्न दृष्टिकोण हैं। यद्यपि पहले वाली स्थिति में सर्जना ही अभिव्यंजना है और दूसरी स्थिति में अभिव्यंजना ही सर्जन।

वरिष्ठजनों के लिए देश का पहला समाचार

प्रेरणा सीनियर सिटीजन टाइम्स

वरिष्ठजनों द्वारा, वरिष्ठजनों का, वरिष्ठजनों के लिए मुखपत्र

वरिष्ठजनों द्वारा लिखित रचनाएँ जैसे –
आलेख, कहानी, लघुकथा, कविता, ग़ज़ल, व्यंग्य तथा वरिष्ठजनों से संबंधित समाचार, उनकी समस्या प्रकाशनार्थ आमंत्रित है।

संपादक
अरुण तिवारी

पृष्ठ संख्या
8 (बहुरंगीय पाक्षिक)

कार्यालय :
प्रेरणा सीनियर सिटीजन टाइम्स
26–बी, देशबंधु भवन, प्रेस कॉम्प्लेक्स, एम.पी. नगर, जोन–1, भोपाल–462001
फोन: 0755–4940788, ई–मेल : prernasctimes@gmail.com

डॉ. चेरन रुद्रमूर्ति की कविताएं

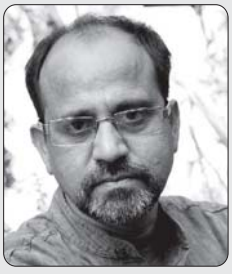

अनुवाद : मणि मोहन

प्रो. मणि मोहन अनुवाद के क्षेत्र में लंबे समय से सक्रिय हैं। अनुवाद के अलावा वे समकालीन हिंदी कविता के समर्थ कवि भी है। अनुवाद के माध्यम से वे हमें विश्व साहित्य की विरासत और हलचल से अवगत कराते रहते हैं।
सम्प्रति: शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय गंज बासौदा में अंग्रेजी के प्राध्यापक। मो.- 09425150346

आर चेरन (डॉ. चेरन रुद्रमूर्ति) तमिल-कैनेडियन शिक्षाशास्त्री, कवि, नाटककार,और पत्रकार हैं। वे विंडसर विश्वविद्यालय कैनेडा में प्रध्यापक हैं । उन्होंने अभी तक तमिल भाषा में पन्द्रह किताबें लिखी हैं और इनका अनुवाद मलयालम , तेलगु , कन्नड़ और बंगाली सहित बीस से अधिक भाषाओं में हो चुका है। उनके काम का एक बड़ा हिस्सा अंग्रेजी भाषा में भी अनुदित हो चुका है ।अभी हाल ही में उनकी किताब 'इन ए टाइम ऑफ बर्निंग' (आर्क पब्लिकेशन, यू के) भी अनुदित हुई है जिसमे आम जन पर हो रहे अत्याचार , उनकी वेदना और आघात की प्रभावी अभिव्यक्ति है।

मिट्टी -1

वह जो निकल गया एक लम्बी यात्रा पर
उसके बच्चे को इसकी खबर नहीं ।

कोई दिशा पकड़ ली , कोई सड़क भी
धुएँ से भरी हुई दूर तक ।

समुद्र यदि जुदा होकर यह राज खोल दे
तो आँसुओं से भर जाएगा यह रास्ता ।

उदय होते ये सूर्य किस काम के
जो खो चुके हैं अपनी चमक ।

मैं अपंग की तरह खड़ा था
किसी मैन्ग्रोव दरख़्त के नीचे ।

रेखांकन : रोहित पथिक

सांझ उतरती है ; भोर होती है
रक्त फैल जाता है धरती पर ।

क्या वह शिशु तुम्हारा था
जिसे उठाकर ले गए समुद्री पक्षी ?

स्वप्न की घुलनशील लहरों के किनारे
चाँद दिखता है ?

मिट्टी- 2

खारापन लिए समुद्री हवाएं
जलती झोंपड़ी ,
आवाज़, बेसुरा विलाप ;
हमारी वेदना का आनंद लेते
धप – धप करते जूते ।

भूख से मरता एक मछुआरा

समुद्र की सैर करते हुए
एक दिन
मैंने भूख से मरते एक मछुआरे को
समुद्री खरपतवार के ढेर पर
उकड़ू बैठे हुए देखा ।

एक छोटी सी नौका
किनारे पर औंधी पड़ी हुई थी
वो इसे समुद्र में ले जाना चाहता था
कि तभी खारी हवा का थपेड़ा
उसकी उलझी दाढ़ी वाले चेहरे से टकराता है।

विलाप करती एक कब्र के रास्ते
एक अज़नबी ने वो जगह खोद दी
जहां उसकी झोंपड़ी खड़ी हुई थी
दर्द से कराह उठी धरती।

इतने लंबे समय तक, जिन्दा रहना
लुटेरे नाविकों की जूठन पर।

मैंने भूख से मरते एक मछुआरे को देखा
और उसके पास, मेरा चेहरा, मेरी आवाज़ थी।

सभी कविताएँ चेल्वा कांगनायकम के अंग्रेजी अनुवाद पर आधारित।

■

गीत

लक्ष्मीनारायण पयोधि के गीत

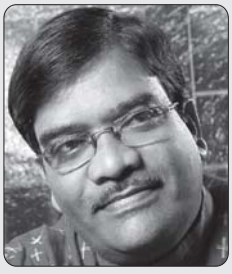

लक्ष्मीनारायण पयोधि

23 मार्च 1957 को महाराष्ट्र में जन्में आदिवासी अंचल बस्तर (छ.ग.) में पले बढ़े। 19 काव्य संकलनों सहित 41 पुस्तकें प्रकाशित। काव्य कृति सोमारन का अंग्रेजी और मराठी में अनुवाद तथा 'लमझना' काव्य कृति का नाट्य रुपांतरण भी। गोण्डी, भीली, कोरकू भाषा के शब्दकोषों के अलावा शोध आलेख प्रकाशित। अनेक पुरस्कार-सम्मानों से अंलकृत

गीतघट छलकायें

हृदय मादल-ढोल
साँसें बाँसुरी
हो जायें।
शब्द
वनवासी युवक-से
बाँधकर
पाँवों में घुँघरू
गीतघट छलकायें।

फुनगियों के कंठ में
यों धूप के
गहने पड़े हैं।
ज्यों नदी की रेत पर
बगुले
कतारों में खड़े हैं।
डूबतीं-तिरतीं
नयन के पोखरों में
स्वप्न बनकर
मछलियाँ बहलायें।
गीतघट छलकायें।

गाँव की
पगडंडियों पर
धूल का
आकाश होता।
फूल महुए के
खिले तो
उम्र का
अहसास होता।
खिलखिलातीं-
गुनगुनातीं
डालकर गलबाँह
सखियाँ
गंध-मधु बिखरायें।
गीतघट छलकायें।
ताम्रवर्णी आम्रतरु में
झूमते हैं
स्वर्ण झूमर।
महकतीं साँसें
हवा में घुल गये
कर्पूर-केसर।
गिलहरी के
चपल मन के घाव
गहरे कौन देखे ?
चलो,हम सहलायें।
गीतघट छलकायें।

रेखांकन : रोहित पथिक

याद आता गाँव

याद आता गाँव।
नदी-तट पर
साधना रत
वृद्ध वट की छाँव।

उनींदे बुझते
अलावों में
जागते थे स्वप्न
उत्सव के।
ढोल मादल बाँसुरी
रेला1
बोल मीठे
उत्स वैभव के।
पूर्णिमा के
चाँद का उल्लास
मन के घाव।
याद आता गाँव।

वन्यफूलों की
सुगंधों में
नहाकर आती
हवा हर दिन।
टोकना भर
धूप लेकर ज्यों
लौटती घर
शाम को माड़िन2।
पसीने के
मोल का
वो साहुकारी भाव।
याद आता गाँव।

1.गोण्ड स्त्रियों के गीत (रेलापाटा...रे-रेला...रेला)
2. माड़िया जनजाति की स्त्री।

■

प्रो.राजाराम की तीन कविताएँ

प्रो.राजाराम

समाधिस्थ

शिव–सी कठिन समाधि में लीन
प्रकाश युक्त मंडलाकार लिए
सुंदर ––
सृष्टि के नाना खेलों के नियंता
अपरिचित वे अक्षर।

****

अपने आसन पर
परिचय की आकांक्षा करता,
एक पैर पर खड़ा
स्माधिस्थ मैं।

××××

अकस्मात ,
शिव की स्फुट मुस्कान का
आभास पा कर
मेरी तंद्रा भंग हुई।
मेरे नेत्र खुले।
शिवों का भाव स्पष्ट होता–सा लगा।
वे कुछ कहते–से प्रतीत हुए।
मेरी आराधना मानो फलित हुई।
मेरा हृदय गद–गद हो गया।

****

मैंने लेकिन,
उपास्य देवों से ही
एक विचित्र प्रश्न कर दिया–
'' हे देवाधिदेवों !
क्या तुम मुझे पहचानते हो ?''
शिव चुप थे।
मैं आसन छोड़कर,
भावातिरेक में उतावला,
परी–पारी से हरेक के
समीप पहुँचा।
हरेक के कान में मैंने
वही प्रश्न दोहरा दिया।

रेखांकन : रोहित पथिक

शिव चुप थे।
अक्षर मौन थे।
वे बहुत पहले ही
अपनी उसी कठिन समाधि में
लीन हो चुके थे।

****

मुझे अपने प्रश्न की उद्दंडता पर
आक्रोश हुआ, फिर भी मैं
अपने आसन पर आ कर
उसी विचित्र प्रश्न को लेकर,
पुन: एक पैर की समाधि में –
ध्यानस्थ हुआ।

समान ध्रुवों का आकर्षण

टूटे हुए से माँगता है,
कोई टूटा हुआ मन–
एक सहारा।
भटके हुए से पूछता है,
कोई भटका हुआ–
एक राह।
नियति का वैचित्र देखो–
टूटा हुआ ही टूटे को
सहारा देते है;
दूसरे में वह ताकत कहाँ ?
भटका हुआ ही
भटके को राह दिखाता है;
दूसरे में वह समझ कहाँ ?

एक अव्यावहारिक कविता

अपने साथ मैं,
अपनी पूँजी का बोझ लिए
जा रहा हूँ।
मेरे महान मित्र,
तेरे अनुग्रह का बोझ लिए
जा रहा हूँ।
तूने मेरी ओर,
एक निर्दोष नजर भरके भी
तो देखा था।
तूने मुझे,
एक निर्दोष मुस्कान भी
तो दी थी।
वही नजर लिए जा रहा हूँ!
वही मुस्कान लिए जा रहा हूँ।
दोस्त, विदा लेता हूँ–
फिर से मिलने के लिए।

ग़ज़ल

बद्र वास्ती की ग़ज़लें

बद्र वास्ती

उर्दू गज़ल तथा रंगमंच पर समान रूप से सक्रिय। नाट्य लेखन व निर्देशन भी किया। गज़ल संग्रह 'तो मैं कहाँ हूँ' शीर्षक से म.प्र. उर्दू अकादमी द्वारा 2010 में प्रकाशित। मुल्ला रमूजी की गुलाबी उर्दू नामक पुस्तकों का अनुवाद तथा उनकी शायरी का लिप्यांतरण म.प्र. उर्दू अकादमी द्वारा 2018 में प्रकाशित।
म.नं. 9, चौकी इमामबाड़ा रोड,
भोपाल - 462001,
मोबाइल : 9977311008

रेखांकन : रोहित पथिक

एक

मुहब्बत से मुहब्बत का तक़ाज़ा क्यों किया तुमने
झुकी पलकों से मिलने का इशारा क्यों किया तुमने
मिरा दिल तो नहीं टूटा मगर जज़्बात टूटे हैं
न आना था नहीं आते बहाना क्यों किया तुमने
तुम्हारे थे तुम्हारे हैं तुम्हारे ही रहेंगे हम
निभाना ही नहीं था तो यह वादा क्यों किया तुमने
जो तुमने हाथ थामा था तो फिर कुछ दूर चलना था
सफ़र आसान हो जाता किनारा क्यों किया तुमने
ज़बाँ पर कुछ हो दिल में कुछ हो ये अच्छा नहीं लगता।
मगर ये भी तो समझाओ के ऐसा क्यों किया तुमने
मिरी मंजिल मुहब्बत है तुम्हारी भूख है दुनिया
मुहब्बत कर नहीं सकते तमाशा क्यों किया तुमने
मिरी तन्हाई मुझसे पूछती रहती है ये अक्सर
बताओ बद्र जी उन पर भरोसा क्यों किया तुमने

दो

हम जान का तोहफा हैं बड़े शौक से जानक तेरे लिए
अंजाम से डरने वाले नहीं मर जाएंगे बस हम तेरे लिए
दीदार की कुछ खैरात मिलें बात को कुछ या ना करे
अब और कहां सब्र करें है आँखों में दम तेरे लिए
फूलों के अरक से लिखा है, इस दिल के वरक पर नाम तेरा
पलकें तो उठा नजरें तो मिला सह लेंगे हर एक गम तेरे लिए
चाहत के सफर की मंजिल तू दुनिया की हमें परवाह ही नहीं
कोई कुछ भी कहे सब सुन लेंगे बस एक प्रीतम तेरे लिए
अरमान फिदा कर देंगे अगर आने का अभी वादा कर ले
हमने तो सजा के रखा है तन्हाई का आलम तेरे लिए
यह रात का आंचल फैला है यह चांद रुका है आँगन में
खुशबू में नहाई बैठी है तेरी राह में पूनम तेरे लिए
आँखों से दुआएं देता है यह बद्र दीवाना है तेरा
अश्कों में भिगों के लाया है जज्बात का रेशम तेरे लिए...

तीन

मिल गई जब नज़र से नज़र दिल गया
ज़िन्दगी के लिये आसरा मिल गया
इस क़दर कौन रोया है कल रात को
मैं तो दिल थाम कर रह गया हिल गया
मैंने कांटों को दिल से लगाकर रखा
हाथ मेरा मगर फूल से छिल गया
ज़िदगी जाग उठी हौंसले बढ़ गये
क्या इधर से अभी कोई क़ातिल गया
उसने डाली खुमार आफरीं इक नज़र
चाक दामन मिरा खुद ब खुद सिल गया
बद्र तुम भी उठो रात ढलने को है
चांद रुख़सत हुआ जाने मेहफ़िल गया

चार

दिल के रिश्ते ख़राब क्या करना
दोस्ती में हिसाब क्या करना
दिल में जो भी हो साफ़ कह डालो
साँस लेना अज़ाब क्या करना
चंद लफ़्ज़ों में कहना जो भी कहो
कोई क़िस्सा किताब क्या करना
बोझ लादा है तुमने बच्चों पर
यार शबनम शराब क्या करना
मेरा सज्दा है तेरी खुशनूदी
फिर अज़ाबो सवाब क्या करना
बद्र चाहो तो हर तरह चाहो
उसको इज़्ज़त-मआब क्या करना

कविता

शेष केनवास के सप्तवर्णी रंग

डॉ. बिनय षडंगी राजाराम

'राम' नाम को सार्थक करते
अजर अमर सार्वभौम
देह से देहातीत बने
आपके शाश्वत स्वरूप का
करती हूँ साक्षात बारंबार
झाँक-झाँक कर
उस शून्य कक्ष के द्वार।

• •

आपके इस गृह मंदिर के
कण-कण में पसरा है
गूंज आपके
श्वास-प्रश्वास का ।
शब्दों अनुशब्दों की लहरें
यहाँ-वहाँ दीवारों से टकराकर
आश्वस्ति का भाव जगा कर
सुषुप्ति से मुझे
ले जाते हैं —
जागृति की ओर।

जागृति में सुषुप्ति —
सुषुप्ति में भी जागृति के भाव
विह्वल करते हैं!
भर देते हैं
अनकही व्याकुलता से

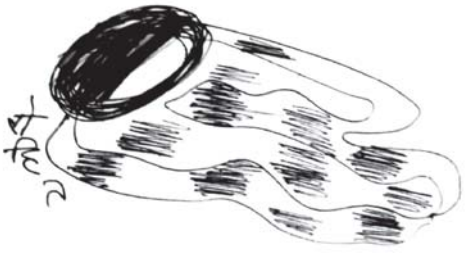

रेखांकन : रोहित पथिक

विविध जीवन रंगों के
आंतरिक अनुभव।

• •

भुवनेश्वर के राजरानी मंदिर की
दीवारों पर उभरे भित्ति शिल्पों की तरह
घर की हर दीवार पर
आपकी कल्पनाओं का रंग
आकार लेता है।

संगेमरमरी फर्श की शीतलता में
बगीचे की हरी दूब पर
आम के चिकने पत्तों में
नीम की झूलती टहनियों में
चंपा की भीनी महक में
हर कहीं फैला है
आपके जीवन का रंग।

• •

गुच्छों में लटकते
मोहित करते
हरे-हरे नारियल के
ललचाते फलों में
ईशान कोण पर बने
नन्हे ताल में खिलते
नील कमल के पीले केशर में
बड़ी-बड़ी खिड़कियों के
काँच से झाँकते
भिनसारे के बाल-सूर्य की
रंगीन रश्मियों में
और तो और
अलमारी में सजी मेरी
साड़ियों की किनारियों में भी
समाए हैं —
आपके ही रंग।

• •

एंथेस के मंदिरों की तरह
त्रिकोणमिति भित्ति पर बने
अर्धचंद्र से
छनकर आती चाँदनी —
अंधेरी रातों में
छत पर बिखरे
तारों के फूलों का
अलौकिक दृश्य
सब कुछ —
मेरे चारों और
आपकी उपस्थिति का
आभास बनाए रखते हैं।

• •

कहते हैं
समय भुला देता है।
किन्तु; यह समय —
संबंध की सघनता का
प्रतीक भी है और
धरोहर को सहेजता
इतिहास भी।
कहाँ-कहाँ भूलूँ
कैसे भूलूँ ?

• •

मेरी कविताओं का सौंदर्यशास्त्र
मेरी कहानियों के पात्र
मेरे समग्र लेखन का चिंतन —
गुजरता है सब कुछ
आपसे ही होकर।
कला-समीक्षा के साथ
मेरी प्रत्येक रचना को
आलोचना की
कठोर-कसौटी में कसकर
मुझमें रचनात्मक सामर्थ्य का
स्थायी भाव जगाते –
आपके विचार बिंदु
घेरे रहेंगे मुझे अब भी
आपके न रहने पर।

• •

वैचारिक यह प्रगाढ़ता
समय के साथ-साथ
उत्तरोत्तर घने होते बादलों जैसे
सघन होते जाएँगे
नव सर्जना की नव वर्षा पर्यंत
प्रकृति के चिरंतन सत्य समान।

• •

अंतिम विदाई के क्षणों में
फूल की कुछ पँखुड़ियों के साथ
किया था समर्पित मैंने
लेखकीय जीवन के अपने
प्रथम पुष्प ''झर... झर... झर...'' को
जीवन के झरने से
झरते हुए आपको।

झरने की बूंदों सी झरती
कविताओं के उस संकलन को
नाम दिया था, रूप दिया था
और दिया था
सम्मान का आधार भी
आपने ही।

• •

अपने इस समर्पण से
प्रण लिया मौन; स्वयं से
सँवारती रहूँगी, लिखती रहूँगी
अपनी ही नहीं
आपकी थाथी को भी
सहेज संभाल कर –
आपकी अंतिम इच्छा को
अपनी अंतिम इच्छा तक
चिर साहचर्य के
अनुभव आनंद के साथ — ।

• •

अपने ही भीतर से
आपकी अनुभूतियों को
आपके ही रंगों से
जीवन के शेष 'केनवास' में
सप्तवर्णी के रंग
भरती रहूँगी
भावों-अनुभावों के
चित्रों का संसार
रचती रहूँगी — ।

आलेख

भारतीय स्वरूप और शिल्प में श्याम

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

हमारे इतिहास के झरोखे से यदि हम हमारे मन में रमी आस्था को देखें तो उसके कई रूप दिखाई पड़ेंगे। श्याम, कृष्ण, कान्हा, माधव, रणछोड़, मुरलीधर ये सिर्फनाम नहीं हैं, संबोधन नहीं हैं, बल्कि विविध रूप हैं आस्था की मूर्ति के। यह आस्था रूपायित होकर, शब्दों में बँधकर और पाषाणों में उकेरी जाकर हर युग में साकार होती रही है। इसलिए विभिन्न युगों में उकेरे गए श्याम से साक्षात करना उनके मानवीय देवत्व को निहारने के साथ-साथ उस आराधना को भी अमर कर देनाहै, जो हमारी आस्था की आत्मा है। जो सिर्फभाव नहीं, रंग भी हैं, शब्द भी और वह पत्थर, लकड़ी या कांस्य भी जो किसी शिल्पी के चमत्कार से हमारी श्रद्धा के चंदनी सौरभ बन गए हैं।

शिल्प में श्याम को देखने का अनुभव एक गंध में डूबकर विभोर हो जाने का अनुभव है। शिल्प में सँवारे श्याम हमारी श्रद्धा की चंदनी गंध के आकार हैं। वे आकार की गंध नहीं, गंध के आकार हैं।

यह जानना बड़ा रोचक है कि कृष्ण का वर्तमान स्वरूप बना कैसे ?

ऋग्वेद में कृष्ण का वह रूप नहीं मिलता, जिस रूप में वे आज पूजे जाते हैं। ऋग्वेद जो विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ माना जाता है, उसमें विष्णु को भी ईश्वर के रूप में मान्य नहीं किया गया है। ऋग्वेद के अनुसार विष्णु का आशय एक अविराम घूमते भाव चक्र के रूप में है। उन्हें उरूक्रमा, उरूग्वा व जिविक्रम के नाम से पुकारा गया है। ऋग्वेद के बाद जो वेद रचे गए, उनमें विष्णु के ईश्वरीय स्वरूप की कल्पना की गई। ऋग्वेद में तो कृष्ण का उल्लेख दो स्थानों पर आया है। एक प्रमुख वैदिक क्षत्रप को कृष्ण कहा गया है, जो अयसुमति नदी के किनारे निवास करता था तथा जिससे युद्ध करने के लिए इंद्र ने ''मारूत'' को आदेश दिया था। ऋग्वेद में एक दूसरे स्थान पर कृष्ण को एक संत के रूप में वर्णित किया गया है, जिन्होंने ऋचाओं का सृजन किया। कृष्ण को विष्णु का अवतार मानने की अवधारणा

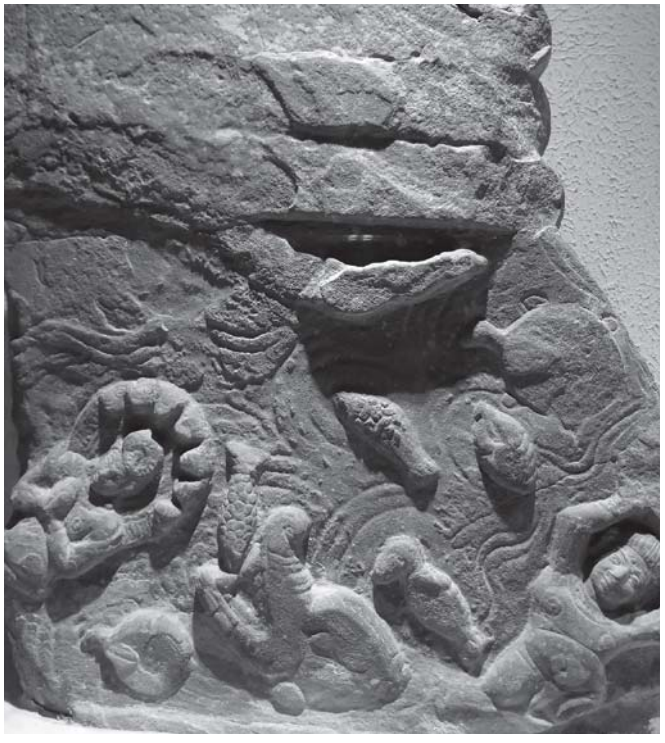

पूर्णत: पौराणिक काल में पुष्ट हुई। ब्रह्मा, विष्णु, महेश की त्रयी का जन्म पौराणिक युग की देन है।

पाणिनी ने ई.पू. 7वीं सदी में कृष्ण और अर्जुन का उल्लेख धार्मिक नेता के रूप में किया है। ''वासुदेवार्जुनाभ्यम् वुन'' (4-3-98) छांदोग्य उपनिषद् जो ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी में रचा गया, उसमें कृष्ण को देवकी पुत्र के रूप में उल्लिखित किया गया है, जो अंगिरास ऋषि से निर्देश प्राप्त किया करते थे तथा जिनकी शिक्षाओं के कारण वे समस्त सांसारिक लिप्साओं से मुक्त हो सके। अथर्ववेद जो ऋग्वेद के काफी बाद में लिखा गया, उसमें केशी विनाशक के रूप में कृष्ण का उल्लेख है।

ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में मेगास्थनीज ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि इस काल में मथुरा और कृष्णपुर में कृष्ण पूजा होती थी। बेसनगर शिलालेख (ईसा पूर्व दूसरी तीसरी सदी) से यह ज्ञात होता है कि भागचंद्र महाराज के समय हेलिमोदोर ने वासुदेव की पूजा के लिए गरूड़ ध्वज के रूप में इस स्तंभ की स्थापना की। इस

शिलालेख में वासुदेव को देवों का देव कहा गया है। यह शिलालेख हेलियोडोरस स्तंभ के रूप में विदिशा में अवस्थित है जिसे खाम बाबा कहकर आज भी पूजा जाता है। यह प्रमाणित हुआ है कि यह स्तंभ एक विष्णु मंदिर के सामने स्थापित था। वर्तमान में यह मंदिर विद्यमान नहीं है।

पतंजलि (ई.पू. 150 लगभग) के भाष्य में वासुदेव का उल्लेख आर्य जाति के देवता के रूप में मिलता है। घोसुन्दी राजस्थान और ननचार की गुफाओं से प्राप्त शिलालेखों में भी वासुदेव व संकर्षण की पूजा का उल्लेख मिलता है। संस्कृत और जैन ग्रंथों में भी कृष्ण के प्राचीन उल्लेख मिलते हैं। कई विद्वान अश्वघोष की निम्न पंक्ति में गोपाल कृष्ण का प्रामाणिक उल्लेख मानते हैं - रूयातानि कर्माणि न यानि सौहेः शूरादय स्तेएव बला वभूवः''। कालिदास ने भी ''गोपवेष राजविष्णोः'' की चर्चा की है।

इस विवरण के परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट है कि पौराणिक युग के आते-आते कृष्ण ईश्वर के अवतार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे और उनकी लीलाएँ भी लोकप्रिय हो चली थीं।

पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कृष्ण के इन दो रूपों के बारे में बड़ी स्पष्ट व्याख्या की है - ''श्रीकृष्णावतार के दो मुख्य रूप हैं। एक में वे यदुकुल के श्रेष्ठ रत्न हैं, वीर हैं, राजा हैं, कंसारि हैं। दूसरे में वे गोपाल हैं, गोपीजन वल्लभ हैं, ''राधाधर सुधापान शालि वनमालि'' हैं। प्रथम रूप का पता बहुत पुराने ग्रंथों से चल पाता है पर दूसरा रूप अपेक्षाकृत नवीन है।''

द्विवेदीजी का यह कथन ऐतिहासिक शिल्प साक्ष्यों से भी प्रमाणित होता है और ग्रंथों से भी। गुप्तकाल तक कृष्ण की जितनी भी लीलाएँ पाषाणों पर उकेरी गईं, वे सब उनके शौर्य और पौरूष की अभिव्यक्ति से परिपूर्ण हैं। मथुरा के उत्खनन में प्राप्त प्रतिमाएँ हों या मांडोर या उसियाँ के मंदिरों के स्तंभों पर उत्कीर्ण लीलाएँ, उन सबमें उनके इसी स्वरूप का प्राधान्य है।

गोवर्धन धारण, नवीनत चौर्य, शकटवध, धेनुकवध, कालियादमन और पूतनावध की लीलाएँ इस काल में प्रमुखता से उकेरी गई हैं। वही स्थिति दक्षिण भारत में भी रही। उत्तर भारत में जिस प्रकार कृष्ण लीला का आधार भागवत पुराण रहा, उसी प्रकार दक्षिण भारत में कृष्ण की लीला ''शिल्पाडी-करम्'' (दूसरी सदी) व अन्य तात्कालिक ग्रंथों में वर्णित की गई। दक्षिण के आलवार संतों ने पूर्ण समर्पण के साथ इसे गाया।

कृष्ण का शिल्पांकन दक्षिण में खूब हुआ। ये लीलाएँ कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल और आंध्र के अनेक मंदिरों पर उत्कीर्ण हैं। छठवीं-सातवीं शताब्दी में निर्मित बदामी स्थित क़िले की उत्तरी प्राचीर के प्रवेश द्वार पर इसी अवधि में निर्मित पहाड़कल, मल्लिकार्जुन मंदिर, होपसलवारा मंदिर, हेलीविद, बारहवीं सदी में निर्मित अमृतेश्वर मंदिर, वेलूर के केशव मंदिर, सोमनाथपुर मंदिर, हम्पी के विट्ठलदेव मंदिर, पल्लव के धर्म राजा राय, महाबली पुरम् नारायण वेनूर विष्णु मंदिर, केरल के केनोर जिले के रमन ताली स्थित केशव स्वामी मंदिर व आंध्र के पुष्पागिरी स्थित मंदिर, इनके अलावा वर्तमान बंगलादेश में स्थित 8वीं सदी में बनाए गए पहाड़पुर के मंदिर में भी बड़े सुंदर कृष्ण लीला के अंकन मौजूद हैं। विशेषकर दक्षिण भारत में कृष्ण की भावमय कांस्य प्रतिमाएँ भी बहुत बनीं। बंगाल में काष्ठ शिल्प में उन्हें उकेरा गया और टेराकोटा में भी।

मध्यकाल और विशेषकर उत्तर मध्यकाल में कृष्ण के व्यक्तित्व और कृतित्व का अतिरंजित आख्यान भी हुआ। संत कवियों ने कृष्ण की गाथा को गाया, आध्यात्मिक संतों ने वैष्णव भक्ति के स्वरूप को विकसित किया। रामानुज का दर्शन जयदेव के ''गीत गोविंद'' में मानो अलंकृत हो उठा। निम्बार्क और माधवाचार्य ने आध्यात्मिक दर्शन को नए आयाम दिए। राधा और कृष्ण का स्वरूप आत्मा और शरीर का स्वरूप बना और गोपियाँ इस अद्भुत संयोग की साक्षी और सूत्र बनीं। आज जो राधा और माधव की छवि हमारे मन मानस में विद्यमान है वह जयदेव के गीतगोविन्द की देन है।

जयदेव की परंपरा में आगे चलकर विद्यापति, उमापति और चंडीदास हुए। बाद के काल में ''सूर'' हुए जिनकी अंधी आँखों से कृष्ण लीला की आलोकमयी निर्झरणी निकली और मीरां, जिसके कंठ से मरूस्थल में कृष्ण समर्पण की मंदाकिनी बही। बंगाल में चैतन्य ने कृष्ण आध्यात्म को नए भक्ति शिखर दिए और पश्चिम भारत में वल्लभाचार्य, जिन्होंने पुष्टिमार्ग की स्थापना कर ''श्रीनाथजी'' में कृष्ण स्वरूप की आराधना कर एक नूतन दार्शनिक भंगिमा से भक्तों को विभोर कर दिया।

कृष्ण का रसिक स्वरूप बड़ा मनोहारी और मोहक है। हमारे हिंदू धर्म के ईश्वरीय अवतारों में यही एक ऐसा चरित्र है, जो भक्ति और श्रृंगार, आध्यात्म और अनुराग तथा कर्म और नेह के मर्म को अपने आप में समेटे हुए है।

वे एक ओर अपने गोप साथियों के साथ गाय चराते ग्वाले हैं, दही मथती यशोदा को चिढ़ाते, माखन चुराते वात्सल्य के साकार स्वरूप में मोहते मोहन हैं, रास मंडल में नृत्य करते रसिक नायक हैं, यमुना के तट पर लजाती राधा के साथ श्रृंगार के साकार स्वरूप

श्याम हैं और दूसरी ओर महाभारत की रणभूमि में अर्जुन के सारथी बने, उन्हें गीता का उपदेश देते सुदर्शन चक्रधारी साक्षात् नायक हैं, पौरूष के, द्वैत और अद्वैत के संगम के। कृष्ण की गाथा को उकेरने वाले साक्ष्यों में प्राचीनतम साक्ष्य के रूप में अफगानिस्तान के आइखानम नामक स्थान पर ईसा से दूसरी सदी पहले के ऐसे चाँदी के सिक्के मिले हैं, जो राजा अगाथो क्लेस के काल के हैं। इन सिक्कों पर कृष्ण और बलराम अंकित किए गए हैं। पटना संग्रहालय में वासुदेव संकर्षण समूह की एकामाला सहित प्रतिमा है। ऐसा प्रतीत होता है कि ईसा पूर्व की व बाद की शताब्दियों में कृष्ण लीला के वे प्रसंग काफी लोकप्रिय हैं, जिनमें वे गोवर्धनधारी हैं, केशी संहारक हैं या कालियादमन करते कृष्ण हैं।

कृष्ण के आरंभिक शिल्पों में कृष्ण को यमुना पार ले जाते वासुदेव की प्रतिमा मथुरा संग्रहालय में है। यह गुप्तकालीन प्रतिमा है। यह प्रतिमा गायत्री टीला मथुरा से प्राप्त हुई है। यह लगभग दूसरी शताब्दी का शिल्प है। इस शिलाखंड में यमुना नदी, दोनों हाथ उठाए वासुदेव और शेषनाग स्पष्ट पहचाने जा सकते हैं। जल का उद्दाम प्रवाह और मुस्कुराते कृष्ण इस अंकन की विशेषता है। राजस्थान के देवगढ़ स्थित मंदिर में जो गुप्तकालीन है, वहाँ भी इस घटना को उकेरा गया है। देवगढ़ मंदिर के पाषाण स्तंभ पर गोवर्धनधारी कृष्ण को दर्शाया गया है। मथुरा संग्रहालय में कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत को उठाने की घटना का गुप्तकालीन शिल्प सुरक्षित है। यह 5 से 6वीं सदी के मध्य का है। यह नारायण मंदिर मथुरा से प्राप्त हुआ है। यह प्रतिमा लाल चित्तेदार पत्थर पर बनी है।

गोवर्धनधारी कृष्ण की एक गुप्तकालीन प्रतिमा (320–550 ई.) भारत कला भवन, बनारस में सुरक्षित है। इस प्रतिमा में कृष्ण के बाहु व कंठ आभूषणों से अलंकृत हैं। उन्होंने अपने बाएँ हाथ पर गोवर्धन पर्वत उठा रखा है। यह प्रतिमा सारनाथ में निर्मित की गई थी। गुप्तकालीन राजस्थान स्थित मांडोर मंदिर के स्तंभ पर भी गोवर्धन लीला उत्कीर्ण की गई है। इस शिल्प की विशेषता यह है कि इसमें गोवर्धन पर्वत उठाते कृष्ण के हाथों में उठाया गया गोवर्धन पर्वत शीर्षयुक्त है, जबकि बाकी की मूर्तियों में उसे समतल दर्शाया गया है। यह शिल्प जोधपुर के सरदार संग्रहालय में सुरक्षित है।

7वीं, 8वीं शताब्दी में निर्मित कर्नाटक के बदामी के मंदिरों पर भी यह घटना उत्कीर्ण है। कुषाणकाल, गुप्तकाल और पश्चातवर्ती स्थापत्य में शनैः शनैः परिष्कार आया। भाव संप्रेषणीय बने और भंगिमाएँ मुखर।

12वीं शताब्दी में निर्मित हेलीविद के मंदिरों पर इसी प्रकार के भावमय अंकन दिखाई देते हैं। गोवर्धनलीला की भाँति कालियादमन की लीला भी शिल्पियों की प्रिय लीला रही, जिसे उन्होंने पाषाणों में, काष्ठ और कांस्य में उत्कीर्ण किया। मथुरा के किले में कालियादमन की घटना को उकेरने वाली एक प्रतिमा जो उत्तर गुप्तकालीन है, इसमें कृष्ण के मुख पर कालियानाग का मर्दन करते उल्लास को देखा जा सकता है। भुवनेश्वर के पुरातत्व संग्रहालय में 6–7वीं शताब्दी में निर्मित कृष्ण की कालियादमन लीला का एक सुंदर शिल्प मौजूद है। उसिया स्थित राजस्थान के हरिहर मंदिर पर परिहार काल में भी यह घटना बड़े मनोहारी ढंग से उकेरी गई है। बदामी के मंदिर (6–7वीं सदी) में भी कालियादमन की घटना का उत्कीर्णन है। इस शिल्प में भी करबद्ध नागपत्नियों को दर्शाया गया है। 12वीं शताब्दी में हेलीविद स्थित मंदिर के पाषाण स्तंभ पर कालियादमन की घटना बड़े प्रभावशाली ढंग से उकेरी गई है।

केशीवध की घटना को उत्कीर्ण करने वाला प्राचीनतम कुषाणकालीन शिल्प मथुरा संग्रहालय में मौजूद है। यह शिल्प भरतपुर दरवाजे के पास उत्खनन में उपलब्ध हुआ है। केशीवध की घटना का उल्लेख विष्णुपुराण के पंचम अंश के 16वें अध्याय में आया है। इसी घटना को प्रतिहार काल में भी उत्कीर्ण किया गया। यह प्रतिमा आठवीं–नवीं शताब्दी में उकेरी गई थी। यह राजस्थान के अबानेरी नामक स्थान से उत्खनन में प्राप्त हुई थी तथा वर्तमान में आमेर संग्रहालय में सुरक्षित है। 13वीं शताब्दी में सोमनाथपुर के मंदिर पर केशीवध की घटना बड़े स्पष्ट रूप में अंकित की गई है। मांडोर के मंदिर के स्तंभ पर भी कृष्ण और केशी के द्वंद्व का सुंदर अंकन है। यह शिल्प गुप्तकालीन है।

पूतनावध की लीला का अंकन भी गुप्तकाल से होता आया है और शिल्पी ने इस लीला को पश्चात्वर्ती काल में अपनी भावनाओं के अनुरूप उकेरा। विशेषकर दक्षिण भारत के 12वीं–13वीं शताब्दी के मंदिरों में कहीं कृष्ण को उसका स्तनपान करते हुए दर्शाया गया है, कहीं कृष्ण केवल खड़े हैं तथा कहीं कृष्ण को पूतना की नीचे पड़ी देह पर उसका वध करते दर्शाया गया है। खजुराहो के लक्ष्मण मंदिर (953, 954 ई.) में भी पूतनावध की घटना का उत्कीर्णन किया गया है। पर्सी ब्राउन ने पापनाथ मंदिर (680 ई.) तथा पहाड़काल व विरूपाक्ष के मंदिरों (740 ई.) में उकेरी गई कृष्ण लीलाओं का वर्णन किया है।

इतिहास के असंख्य अध्यायों में धातुशिल्प की लंबी कहानी समाई हुई है, जो अपने आप में इतनी रोचक और अद्भुत है कि उसकी कोई दूसरी मिसाल विश्व इतिहास में नहीं मिलेगी।

'कान्हा' की झलक काँस्य में देखने का उपक्रम इस कहानी के एक छोर का हल्का स्पर्श भर करना है। ठीक शायद यही हो कि कुछ चुनिंदा काँस्य शिल्पों की झलक से परिचित हुआ जाए जो विभिन्न युगों में निष्णात शिल्पियों ने उकेरे, वे कृष्ण के बाल सुलभ सौन्दर्य और उनकी लीलाओं के माधुर्य में डूबे हुए थे। बालकृष्ण, नवनीत नृत्य कृष्ण, कालिया कृष्ण, राजगोपाल कृष्ण, राधाकृष्ण और वेणु गोपाल के मनोहारी शिल्प बने। उनका मदनगोपाल स्वरूप भी शिल्पित हुआ जिसमें उनकी अनेक भुजाएँ बनाई गई।

राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में कालिया के फन पर नृत्य करते कृष्ण की एक 51 से.मी. ऊँची सुंदर काँस्य प्रतिमा है। आरंभिक चोलकाल (950 ई.) की यह प्रतिमा बड़ी लुभावनी है। कृष्ण एक हाथ से नाग की पूँछ पकड़े हुए हैं और दूसरे हाथ से अभय दे रहे हैं। मुख पर हल्की मुस्कान तैर रही है। इसी प्रसंग को उकेरता एक और अद्भुत शिल्प है। यह भी पश्चातवर्ती चोल शिल्प है तथा वर्तमान में विक्टोरिया एण्ड एल्बर्ट म्यूजियम, लंदन में है। इस प्रतिमा में भी कृष्ण की यही भंगिमा है। आरंभिक चोलकालीन शिल्प में कालिया की हाथ जोड़े मानवीय आकृति भी उकेरी गई है जबकि पश्चातवर्ती शिल्प में केवल फन दर्शाया गया है।

कृष्ण के वेणुगोपाल स्वरूप को उकेरने की शिल्पियों की उत्कट अभिलाषा रही। इसलिए चाहे ग्यारहवीं सदी का कलाकार हो या सत्रहवीं सदी का वह कृष्ण की इस अनूठी भंगिमा को आकार देने के लिए सदैव लालायित रहा। कृष्ण के वेणुगोपाल रूप के अनेकों शिल्प विभिन्न संग्रहालयों में हैं। कुछ विशिष्ट शिल्पों की झाँकी का संक्षेप में विवरण दिया जा रहा है।

ग्यारहवीं सदी का 22.5 से.मी. ऊँचाई का एक भव्य काँस्य शिल्प जो वर्तमान में शासकीय संग्रहालय मद्रास में है वह चालुक्य शिल्प का अनुपम उदाहरण है। इस शिल्प में वेणुगोपाल, रूक्मणी तथा सत्यभामा के साथ खड़े हैं। तीनों प्रतिमाओं ने पत्रकुंडल धारण कर रखे हैं। इस युग में दक्षिण भारत में शिल्पित अन्य काँस्य प्रतिमाओं से इसकी भिन्नता स्पष्ट दीखती है। विजयवाड़ा तथा विक्कावोलु के तत्कालीन प्रस्तर शिल्पों से इसकी तुलना की जा सकती है। इस शिल्प में कृष्ण को बांसुरीवादन करते दर्शाया गया है।

वेणु गोपाल का 13वीं सदी का 13.8 से.मी. का एक मनोहारी काँस्य शिल्प जो तंजौर शैली का है, यह कर्नल आर.के. टंडन के व्यक्तिगत संग्रह में है। इसी तरह 11.5 से.मी. की ऊँचाई का उड़ीसा शैली का एक मनोरम शिल्प जो 17वीं सदी का है, प्रो. सैम्युअल एलनबर्ग के संग्रह में है। इस शिल्प की यह अद्भुत विशेषता है कि इसमें कृष्ण कोई परिधान पहने नहीं हैं।

18.5 से.मी. की ऊँचाई का एक दुर्लभ दक्षिण भारतीय काँस्य शिल्प जो 18वीं सदी का है, ट्रस्टीज़ ऑफब्रिटिश म्यूज़ियम लंदन में है। इस शिल्प के वेणुगोपाल अलंकृत नहीं हैं लेकिन उनकी देहयष्टि बड़ी सुन्दरता के साथ उकेरी गई है। बाँसुरी अदृश्य है लेकिन उनके दोनों हाथों की उँगलियों का उपक्रम इतनी स्वाभाविकता के साथ तराशा गया है कि इस शिल्प को देखते ही मानों कानों में बाँसुरी की मादक तान के स्वर गूँजने लगते हैं।

''बालकृष्ण'' की अनेकों मोहक भंगिमाओं के काँस्य शिल्प हमारे सांस्कृतिक इतिहास की धरोहर हैं। बालकृष्ण को नृत्य करते भी बालसुलभ रूप में उकेरा गया है।

ठुमक कर चलते कृष्ण का एक ''नायक'' युगीन दक्षिण भारतीय शिल्प जो 17वीं सदी का व 11.5 से.मी. ऊँचा है, राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में सुरक्षित है। इसी तरह का 17वीं सदी का 7 से.मी. ऊँचा एक दक्षिण भारतीय काँस्य शिल्प माकोंपोलो गैलरी पेरिस में है।

12वीं सदी का बालकृष्ण का एक दुर्लभ शिल्प जो दक्षिण भारतीय शैली का है वह व्यक्तिगत संग्रह में है। इस शिल्प में कृष्ण को एक हाथ से पाँव का अँगूठा पकड़कर उसे चूसने का उपक्रम करते दिखाया गया है।

राष्ट्रीय कला संग्रहालय नई दिल्ली में 54 ग 21 से.मी. की बालकृष्ण की विजय नगर शैली की एक भव्य काँस्य प्रतिमा है। यह 15वीं सदी का शिल्प है। इसमें बालरूप में कृष्ण को नृत्य करते दर्शाया गया है। इसी तरह का एक और 15वीं सदी का शिल्पांकन ''नवनीत कृष्ण'' का है। यह दक्षिण भारतीय शैली का है तथा वर्तमान में आर्ट गैलरी तंजावुर में सुरक्षित है।

यह केवल जैसा कि उल्लेख किया गया है, कृष्ण के महत्वपूर्ण कांस्य शिल्पों की बानगी भर है जिसमें अधिकतर शिल्प उनके बालरूप के हैं। कृष्ण की युवावस्था के कांस्य शिल्प अत्यल्प हैं तथा वे मुख्यत: आधुनिक काल के हैं। इनमें उनका वेणुवादक स्वरूप दिखाई देता है।

कृष्ण का यह स्वरूप और उनके ये मनोहारी शिल्प हमारी न केवल अनमोल धरोहर हैं बल्कि वे हमारी प्रेरणा भी हैं और इन अनाम शिल्पियों के अद्भुत समर्पण के प्रमाण भी।

– लेखक, प्रख्यात ललित निबंधकार तथा कथाविद है।
85, इन्दिरा गांधी नगर, आर.टी.ओ. कार्यालय के पास, केशरबाग रोड,
इंदौर (म.प्र.) 452001, मो.: 9485992593

■

डॉ. कपिल तिवारी जी से डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा एवं भँवरलाल श्रीवास की बातचीत

अद्वैत बौद्धिक प्रत्यय नहीं, भारत की जीवन दृष्टि है- कपिल तिवारी

जीवन और कला के क्षेत्र में बड़े स्तर पर पश्चिम की नकल की जाती रही है। कला जगत के विविध क्षेत्रों में हमने उसकी राह पकड़ने की कोशिश में न जाने कितने अनमोल धरोहरों को खोया है। बदले में कई दशक की यात्रा के बाद भी भारतीय कलाएँ वैश्विक पहचान पाने की प्रतिस्पद्र्धी मात्र बनकर रह गयी हैं। इस प्रक्रिया में हमारा लोकजीवन पूरी तरह अनदेखा ही रहा। संतोष की बात है कि डॉ. कपिल तिवारी जैसे कुछ लोग ऐसे हुए जिन्होंने उम्मीद का दीया जलाए रखा और अथक परिश्रम व अटूट साधना के साथ भारत की मूल कला दृष्टि तथा उसके विविध रूपों को सँजोने का भगीरथ प्रयास किया साथ ही भारतीय जीवन के साथ चलने वाली बोलियों व कलारूपों की तरफ दुनिया का ध्यान खींचा और अनेक अल्पज्ञात कलाओं तथा उनके कलाकारों से दुनिया का परिचय कराया। अतुलनीय योगदान के लिए भारत सरकार ने उन्हें विगत दिनों पद्मश्री से अलंकृत किया। इसी सन्दर्भ में कलासमय की तरफ से यह साक्षात्कार प्रस्तुत है।

- **जीवन, आध्यामिकता और कला अर्न्तसंबंधों पर आपके क्या विचार है?**

– जीवन और कला का अटूट संबंध होता है। मनुष्य है तो मनुष्य की कल्पनाशीलता है, संवेदना है, बहुत कुछ रचने की क्षमता है, वह अपने छोटे से साधनों में जो बहुत कुछ रच सकता है। चित्र भी रच सकता है, संगीत रच सकता है, गीत रच सकता है, कहावतों–पहेलियों–मुहावरों में अपनी बात रख सकता है, नाट्य रच सकता है, मूर्ति रच सकता है, उसने रचने की कोशिश की। मैं आपको यह बता दूँ कि भारतीय परम्परा में उसने जो कुछ रचा है उसी के कारण दुनिया में भारत की तरह की कला जो है जानी जाती है। पश्चिमी आदमी इसमें बिल्कुल उत्सुक नहीं है कि आधुनिक चित्रकला के क्षेत्र में भारत में क्या हो रहा है। वे उससे बहुत निराश हैं। वे जानते हैं कि आप क्या कर रहे हैं। लेकिन जो कुछ जनगण सिंह श्याम, भूरीबाई, पेमा फत्या ने किया, उनके लिए उसका मूल्य है। उसमें वे एक सौन्दर्य बोध की भारतीयता के दर्शन करते हैं कि भारत रंगों–आकारों में सोचता कैसे है। कितने सारे माध्यम शिल्प के ऐसे हैं जिसमें हमारे पारम्परिक शिल्पकारों ने काम किया, कुम्हारों ने काम किया, लोहारों ने काम किया, बढ़ई लोगों ने काम किया। वे कलाकार हैं, उन्होंने सदियों तक रचना की है और उनका बनाया हुआ जो कुछ है, वह अद्भुत है। ये देश पहचाना जाता है उसके कारण। हमारे आधुनिक मूर्तिशिल्पियों के कारण देश नहीं पहचाना जाता दुनिया में। इसको ठीक से समझ लीजिए। ये कोई हैनरी मूर

पैदा नहीं कर पाये। लेकिन पूरी दुनिया इस बात को जानती है कि दुनिया में शिल्प गढने की सबसे प्रीमीटिव तकनीक जो है, उसको वैक्सलॉस प्रोसेस (मोमक्षय विधि) कहा जाता है वह आज भी गढ़वा, बस्तर, झारा समुदाय (रायगढ़) में जीवन्त है। मोम को पिघलाकर साँचे से मूर्तियाँ ढालते हैं, इसलिए उनको घढ़वा कहा जाता है। गढ़ने का काम करते हैं। उन्होंने अपूर्व रचना की और गहनरूप से उसमें एक भारतीय बोध है। वह माध्यम स्थानिक है, बाजार स्थानिक है, उसकी मांग स्थानिक है और सबसे बड़ी बात यह है कि 80 प्रतिशत मूर्तिशिल्प जो हैं, वह मूलत: देवगणों में अर्पण के लिए हैं। वह या तो मातृशक्तियाँ के हैं या लोक और जनजातीय के देवता हैं। सौन्दर्यबोधी शिल्प जो है, उसमें बहुत थोड़ा सा है। तो इसका मतलब यह है कि वह जनजातीय और लोकपरंपरा से जुड़ी हुई शिल्प परंपरा है। भारत में जीवन और आध्यात्मिकता तथा रचना दो चीजें नहीं रहीं, वह एक ही चीज है।

- **भारतीय संस्कृति के संरक्षण, संग्रहण की दिशा और**

वैश्विक परिदृश्य पर आप क्या कहेंगे ?

– हमारी आधुनिक कला की जो समझ है पश्चिम के प्रभाव में, उसने दो भाग कर दिये। एक प्योर एस्थेटिक है और एक यूटिलिटी आर्ट है। तो जो कुछ यूटिलिटी आर्ट है, उसके लिए तो उनने शिल्प कह कर रिजेक्ट कर दिया कि ये आर्ट नहीं है और जो प्योर आर्ट था जो कोर्टयार्ड कल्चर में था तो उसको उन्होंने कला कहना शुरू कर दिया। उसी दिन भारत में शिल्पियों का यह पूरा समाज जो था, ये श्रमजीवी बन कर रह गया। यह अपराध किया गया है। वास्तविकता ये है कि भारत की समझ यह थी कि जो कुछ जीवन में उपयोगी है वह सुंदर होना चाहिए और जो कुछ जीवन में सुन्दरता की रचना है उसका जीवन में कोई उपयोग होना चाहिए। रचने की प्रक्रिया में उपयोग और सुंदरता में भारत ने कभी भेद नहीं किया। जो जीवन के लिए उपयोगी है, वह सुंदर है। ये इसी कारण हुआ है कि आधुनिक जीवन जो कला रचना करता है, चूंकि उसका कोई उपयोग नहीं है जीवन में, इसलिए आपको कला के अलग से संग्रहालय बनाने पड़ते हैं। भारत ने ऐसा कभी नहीं किया। उसका तो जीवन ही जो था उसमें रचना का उपयोग था तो हर आदमी के पास कुछ ना कुछ ऐसा संग्रह था जो कला की दृष्टि से बहुत मूल्यवान था। हमें संग्रहालय बनाने की क्या जरूरत है ? संग्रहालय उन लोगों ने बनाए जिनके जीवन में कला का कोई उपयोग अपने जीवन में नहीं था। इसलिए उसके संग्रहालय और स्थान बनाए गये कि यह कला है और इसको सुरक्षित रखो। जो लोग इसपे रोना रोते हैं कि भारत के पास कोई ऐतिहासिक समझ नहीं है, उसने तो कोई कला संग्रहालय बनाकर संरक्षित नहीं किया वे जड़ हैं। संरक्षित वे लोग करते हैं जिनकी परंपरा मर रही हो या मर चुकी हो। टाइम कल्चर बचा लो जो कुछ भी बचा है, उनको संग्रहालयों में रख दो। इजिप्ट, ग्रीक चाइनीज आदि कल्चर हैं या मध्य एशिया में मेसोपोटोमिया या बेबीलोनिया इत्यादि की जो संस्कृतियाँ थीं, उसका तो काम तमाम इस्लाम ने ही कर दिया था। बचाने की जरूरत नहीं पड़ी। लेकिन हम भारत में एक ऐसी संस्कृति को जीते हैं जो संस्कृति जीवन्त है, निरंतर है, प्रवाहमयी है और हमारे जीवन के साथ चलती है। हमें यह भय ही कभी नहीं रहा कि इसको बचा लो, ये नष्ट हो जाएगा। हमारी जीवन संस्कृति ऐसी रही है जिसकी वजह से कभी हमें संग्रहण या संग्रहालयों की जरूरत नहीं थी लेकिन अब हम कर रहे हैं और बहुत बड़े पैमाने पर अलग–अलग तरह के संग्रहालय भी बन रहे हैं।

● **इसके पीछे हमारी शिक्षा व्यवस्था है या समाज में व्याप्त औपनिवेशिक प्रभाव है ? भारतीय परंपराओं के लिए आशा की किरण आप किस रूप में देखते हैं ?**

– देखिये ! दो कारण हैं, एक तो यह है कि इतने व्यापक रूप से भारतीय समाज का पश्चिमीकरण किया जा रहा है कि जीवन ही बदल रहा है। जो जीवन चला आ रहा था, जिस कला की मैं आपसे बात कर रहा हूँ उसकी अपनी एक पारंपरिकता थी। जीवन की पारंपरिकता थी और इसीलिए कला की पारंपरिकता थी, वह तो ब्रेक हो गयी। क्योंकि ग्रामीण युवा पीढ़ी को आप शहरों में ले आए। उन्हें एक और भाषा में ले आए, एक और जीवन में ले आए, एक और परिवेश में ले आए, तो वो जो रचने की निरंतरता थी, वह टूट गयी है। इसलिए अब बचाने की जरूरत आ गयी। मैं भाषाओं के बारे में कहता हूँ कि भाषा की निरंतरता बिना लिपि के हजारों साल भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में कैसे बनी रही ? उसका कारण था कि एक पीढ़ी सहज रूप से दूसरी पीढ़ी को वो पूरा वाचिक ज्ञान, भाषा की समझ, रचने का कौशल सब कुछ हस्तान्तरित करती थी। लेकिन अगर एक जनरेशन को ही आप शहरों में ले आएँगे पढने–लिखने के नाम पर, आधुनिकता के नाम पर तो वहां का जो बुजुर्ग है वो किसके लिए हस्तान्तरित कर दे अपना ज्ञान, अपनी भाषा, अपना कौशल। अब तो जरूरत है, अब तो करना पड़ेगा क्योंकि यह अपराध तो हमसे ही हुआ है। हमने परंपरा की रक्षा करते हुए विकास का एक रूप गढ़ने में अपनी विफलता की बड़ी कीमत चुकायी है और हम आगे भी चुकाएँगे।

हम एक ऐसे भारतीय में बदल दिये गये हैं जो न तो ठीक अर्थों में आधुनिक है और न ठीक अर्थों में पारंपरिक। परंपरा हमारी स्मृति न बन जाये, मुझे इसका भय है। अब तो संग्रहालय बनाना पड़ेगा क्योंकि जो चलते–फिरते संग्रहालय मनुष्यों के रूप में हमारे पास थे, उनका ज्ञान तो कोई लेने के लिए तैयार नहीं है। क्या करोगे। ऐसा घात तो परंपरा के साथ दुनिया में शायद ही किसी ने किया हो। परंपरा ने तो अपनी तरफ से तो सब कुछ आपको दिया है। एक युवा मुझसे कह रहे थे कि आपको लगता है कि परंपरा अप्रसांगिक हो गयी है ? तो मैं चौका था इस सवाल पर और मैंने इसका उत्तर दिया था के ये भी तो संभव है कि हम परंपरा के लिए अप्रसांगिक हो गये हों ? हम पात्र ही न बचे हों परंपरा से कुछ लेने। जिसको हम परिभाषित इस तरह करते हैं कि परंपरा अप्रसांगिक हो गयी, हम तो ठीक हैं। मैं आपके ठीक होने को ही बहुत संदिग्ध मानता हूँ, इसलिए यह बात कह रहा हूँ।

● **वर्तमान आधुनिकीकरण तथा बदलते परिवेश में लोक–समाज व संस्कृति किस तरह से प्रभावित हो रही**

है?

– लोक का हमने बहुत ही स्थूल और विचित्र सा अर्थ ग्रहण कर लिया है कि गांव की तरह दिखने वाला परिवेश। परिवेश तो बदलेगा मित्र। मतलब हम समय में हैं न, हम स्थान में हैं न, परिवेश तो बदलता है। लेकिन विद्यानिवास मिश्र क्यों कहते थे कि लोक तत्वत: एक वाक् केन्द्रित परंपरा है वो एक लोक चेतना में वास करती है। वो चेतना न बदले परिवेश बदल जाए। भाई तुम झोपड़ी में रहते हो, एक ढंग के मकान में रहने लगे, लेकिन तुम्हारे मन तो नहीं बदले न, तुम्हारी चेतना तो नहीं बदली, तुम्हारा सांस्कृतिक बोध तो नहीं बदला, ये लोक है। लेकिन आप तो उसको भी बदलने पर आमादा हैं। आपकी आधुनिक शिक्षा ने यह कर दिया है कि आप अपनी संस्कृति पर ही प्रश्नचिह्न लगाते हो। तो अब क्या किया जाये? परिवेश का सवाल नहीं है। परिवेश बदलता है, तुम्हारी चेतना में उसका सम्मान बचा हो, उसके मूल्यों, उसके बोध को ग्रहण करना चाहिए। हम शब्द की परपंरा का सम्मान नहीं करते, हमने सब कुछ अक्षर केन्द्रित भाषा के लिए सौंप दिया है। हम हर चीज का प्रमाण उसी में ढूंढ़ते हैं। हमें ऐसे आदमी पर भरोसा ही नहीं बचा जो जीवन जीता है और जीवन्त अनुभवों से ज्ञानी, है। जिसके पास जीवन का जो ज्ञान है वह सच्चा और नगद है। हम उधारी के ज्ञानी हैं किताबों में भारत बनाए रखे हैं। विद्वान उस आदमी से जीवन के बारे में कोई कुछ पूछना ही नहीं चाहता कि तुम क्या कहना चाहते हो, तुमने भी तो इतना बड़ा जीवन जिया, कुछ जाना होगा उस पर हमारा कोई यकीन नहीं है। जब तक भारत ने उस समझ पर विश्वास किया तब तक भारत खड़ा रहा। इसीलिए तो कहते हैं कि हजार साल लम्बा ये जो पराभव का एक काल आया उसमें बहुत कुछ बदला लेकिन नागर समाज तो बदला, लेकिन हमारे लोक समाजों में क्यों नहीं बदलाव हुआ? इसलिए क्योंकि वह शक्ति हमारे साथ थी। हम उस बोध के साथ थे, हम उस परंपरा के साथ थे, हम उस ज्ञान के साथ थे इसलिए बच गये। लेकिन महाप्रभुओं ने तो जो किया है वह कमाल ही है। इन्होंने अपने हाथ में ले लिया है कि हम तय करेंगे कि तुम्हारे लिए विकास क्या है, हम तय करेंगे कि तुम्हारे लिए आधुनिकता क्या है, हम तय करेंगे कि तुम्हारे लिए शिक्षा क्या है, हम तय करेंगे कि तुम्हारे लिए ज्ञान क्या है, हम तय करेंगे कि तुम कैसे घरों में रहोगे, हम तय करेंगे कि तुम्हारी खेती कैसी होगी। तुम्हारे पास खेती का हजार साल का अनुभव है उसका कोई मूल्य नहीं है। मूल्य इससे होता है कि उत्पादकता बढ़ रही है कि नहीं। तब हम नकली बीज भी लाएँगे, जहरीली दवाइयाँ भी लाएँगे, विभिन्न तरह की खादें भी लाएँगे, ये होगा तब यह माना जाएगा कि आप एक आधुनिक किसान हैं। वह कहता है कि हमने तो कभी अन्न के साथ जहर का इस्तेमाल किया ही नहीं कीड़ों को मारने के लिए, हमारी तो समझ है कि अन्न है तो अकेले मनुष्य के लिए नहीं है उसमें से थोड़ा सा पशु भी खाएँगे, उसमें से थोड़ा चिड़िया और दूसरे जीव–जन्तु भी खाएँगे, मनुष्य भी खाएगा। अब तुम मनुष्य के अलावा बाकि सारी सृष्टि को अन्न से वंचित के लिए उन पर जहर का इस्तेमाल करना चाहते हो। अगर आधुनिकता की तुम्हारी यही समझ है खेती में तो तुम्हें मुबारक हो, हम पिछड़े ही सही, लेकिन आप कह रहे हैं तो हम डाल देते हैं। तो हुआ क्या सारा देश असाध्य रोगों में चला गया। वह बीमार है। लोक चेतना बची रहे भारत में, तो लोक बचेगा। परिवेश बदल जाए उससे ज्यादा फर्क नहीं पड़ता।

- **परिवेश, परंपरा और संस्कृति इसको आज के दौर में कैसे समझें और बचाएँ?**

– संस्कृति के मूल में सदा होती है, भाषा। अगर भाषा बची है तो संस्कृति के बचने की आशा है। अगर भाषा खो दी आपने, तो सब गया। लोक जो था वह हजारों साल तक अपनी संस्कृति को पोषित, संवर्धित इसलिए कर सका क्योंकि वह जिस भाषा में था, उस भाषा को उसने कभी खोया नहीं था। उसी में रचना कर रहा था, उसी में बोल रहा था, संप्रेषण भी उसी में था और रचना भी उसी में थी। जब आप एक पूरे समुदाय की भाषा को बदलते हैं तो उसके साथ एक संस्कृति भी नष्ट होने लगती है। आप क्यों आखिर देश में हिन्दी को सब तरह का राजाश्रय देने के बाद भी उसके मार्ग में हजार तरह की बाधाएँ पैदा करते हैं वह इसलिए किया जाता है कि अगर यह बढ़ गयी, यह संवर्धित हो गयी तो इसके साथ एक कल्चर भी है फिर उस नकली अँग्रेजी कल्चर का क्या होगा? जो जबरन देश पे लादा गया है। क्या कहते हैं आप उन लोगों को इण्डियंस! इनका क्या होगा? ये बात है। भाषा बचाइये! परिवेश बदलता है, हर समय में परिवेश बदलता है। एक ही जैसा परिवेश नहीं रहता लेकिन चेतना बची रहती है। लोक की चेतना को बचा के रखिये। लोक की चेतना में क्या है? भूमि का सम्मान करो, नदी का सम्मान करो, स्त्री का सम्मान करो, प्रकृति का सम्मान करो, भाषा का सम्मान करो, ये है लोक।

लोक केवल ग्रामीण परिवेश थोड़ी होता है। लोक के मूल्यों में होता है, लोक की चेतना में होता है, लोक के बोध में होता है। वो होने से भारत, भारत है। इस तरह मुक्त करना कि हजार देवता, हजार मातृशक्तियाँ हैं जो तुमको रुचे, तुम अपनी आस्था अनुसार

चुनाव करो, अपनी मातृशक्ति का चुनाव करो, जो मंदिर अच्छा लगता है, जो तीर्थ अच्छा लगता है, जो प्रार्थना अच्छी लगती है, जो धर्म ग्रन्थ अच्छा लगता है, तुम स्वतंत्र हो मानने के लिए। लेकिन असली बात क्या है? असली बात ये है कि आस्था तो है न तुम्हारी। इससे फर्क नहीं पड़ता कि किस देवता पर है, किस मातृशक्ति पर है, किस तीर्थ पर है, किस प्रार्थना पर है। जिस प्रार्थना में तुम्हारा चित्त संवेदित होता है, तुम्हारा हृदय खुलता हो, पिघलता हो, निवेदित होता हो, वह तुम्हारी प्रार्थना है। लेकिन अब तो हमारे देश में कुछ लोग कह रहे हैं बल्कि वे तो कुछ सदियों से कह रहे हैं कि यही तीर्थ है, यही धर्मग्रन्थ है, यही प्रार्थना है मानो या मर जाओ या मार दिये जाओगे, ऐसा हमने कभी नहीं किया। ये एक लोक है और आया भी कभी शास्त्र से ही होगा। शास्त्र और लोक भारत में दो चीजें नहीं रहीं वह एक चीज है। परस्परता है उनके भीतर इसीलिए तो ऋषि ने भी कहा है कि अगर शास्त्रों की व्याख्या में यदि विभ्रम हो तो उसका प्रमाण शास्त्र नहीं होगा। अगर शास्त्र के किसी मुद्दे पर विभ्रम हो जाए, मतभेद हो जाए, निर्णय न कर पाओ, तो निर्णय लोक से होगा। क्योंकि वह निरंतर प्रवाहमान है, नदी की तरह वह रोज बदल रहा है। वह जीवन के अनुभव से ज्ञान में है, इसलिए वह ज्ञान ज्यादा प्रामाणिक है। शास्त्र एक जगह पर ठहरी हुई चीज है। इसलिए उसका विभ्रम है, उसका जो निवारण है केवल लोक से हो सकता है, शास्त्र से नहीं हो सकता। यह परस्परता है।

- **आज दौर में हमारे सामने अनेक अस्मिताएँ खड़ी की जा रही हैं। नयी-नयी अस्मिताओं के झंझट में एकात्म की परंपरा में अद्वैत के विचार को कैसे सामने लाना चाहिए?**

– भेद की जो भी दृष्टि इस समय भारत में पैदा हो रही है। वह जाति केन्द्रित है या धर्म केन्द्रित है। वो कुल मिलाकर जातिगत है, क्योंकि उसकी राजनीति की जा सकती है और इसकी राजनीति की दृष्टि का आरंभ जो है वह अँग्रेजों ने किया था। प्रथम जनगणना से शुरू हो गया था, यह जाति आधारित थी। भारत में विभाजन के बीज उससे पड़े। हमारे बाद की राजनीति तो अँग्रेजों की विरासत को संभालने वाले जो लोग थे उन्होंने उनकी नीति भी तो ली न कि अंदर से भारत जितना विभाजित किया जा सकता है उसके टूल बचाए रखो। तो उन्होंने सारी राजनीति को जाति केन्द्रित बना दिया, उसके वोट पॉकेट बना लिए, विभाजन वहां है। आध्यात्मिकता में विभाजन है क्या? वो हो नहीं सकता, किया भी नहीं जा सकता। देखिये भारत में बहुलता का राग अलापने वाले लोग जो हैं कभी इस बात पर विचार करेंगे कि इतना विशाल बहुदेववाद भारत ने क्यों रचा? क्योंकि वह किसी के ऊपर अपने स्वरूप की रुचि को थोपना नहीं चाहता था। उसने मनुष्यों को अपनी आध्यात्मिकता के लिए मुक्त किया।

- **कुछ समूह भारत की बहुलतावादी संस्कृति को अपने-अपने ढंग से परिभाषित करते हैं। ऐसी स्थिति भारतीय अस्मिता के लिए कितनी अनुकूल है?**

– भारत ने कभी आग्रह नहीं किया कि हमने तय कर दिया कि तीर्थ यहीं है, सब को वहाँ जाना पड़ेगा। उसने कहा जो तुमको ठीक लगे वह करो। भारत तो इसके लिए भी राजी है। हमारे तथाकथित बहुलतावादी कभी इसके ऊपर चर्चा नहीं करते। इतनी स्वतंत्रता इस धरती पर मनुष्यों को अपनी आध्यात्मिकता के लिए कहीं और दी ही नहीं गयी। ये जो रचना है, ये बहुलता का पहला भारतीय सम्मान था। तुम अपनी आध्यात्मिकता और धार्मिकता के लिए मनुष्यों को स्वतंत्र करते हो या नहीं करते हो। तुम एक राज्य केन्द्रित बहुलतावाद भारत के ऊपर थोपना चाहते हो। भारत ने हजारों वर्षों से बहुलता का सम्मान किया है। उसने मनुष्यों को अपनी प्रार्थना, तीर्थ, धर्म ग्रंथों, देवता, मातृशक्तियों के लिए स्वतंत्र किया। हर चीज के लिए उसने स्वतंत्र किया कि तुम्हारी चित्त में जो देवी-देवता है, तुम उनका चुनाव कर लो। इसके बाद भी तुम एक धार्मिक आदमी होंगे। हम तुम पर ये बंधन नहीं लगाते, ये एक वास्तविक बहुलतावाद है। अन्यथा ये संभव यह है कि दुनिया का कोई भी ऐसा धर्म हो जिसका उन्मेष कहीं हुआ हो और भारत में वह न हो? यहां इस्लाम भी हैं, ईसाइयत भी हैं, बौद्ध भी हैं, जैन भी हैं, यहूदी भी हैं, पारसी भी हैं। इतने धार्मिक विविधताओं का स्वागत करने की उदारता, लचीलापन और सम्मान की भावना पैदा करने के लिए बड़ा हृदय चाहिए और वह हृदय एक या दो दिन में नहीं बन जाता है। हजारों साल में परंपरा उस उदारता उसकी रचना करती है। आप हमें यह बताना चाहते हैं कि एक संविधान की रचना और भारत की आजादी के बाद हमने ये सम्मान करना सीखा। हम हमेशा से जानते हैं उसको, आपने बहुलतावाद के अर्थ को बहुत छोटा किया है।

हम हजार देवी-देवता की पूजा करने वाले लोग हैं। बहुलता का पाठ हमने वहां से सीखा है। राजनीति ने नहीं सिखाया है या संविधान का पालन करने की मर्यादा के कारण हमने नहीं सीखा। हम हजारों सालों से जानते हैं इसको। ऐसे लोग हमें बहुलतावाद सिखा रहे हैं, जिन्होंने धार्मिक विविधता का कभी सम्मान नहीं किया। कभी जाके पारसियों से पूछो! सबसे कम संख्या का समुदाय

है भारत में, ईरान से भाग कर आया था। जब इस्लाम ने पर्शिया में उत्पात मचाना शुरू किया तो भाग के एक नाव से गुजरात आए थे। गुजरात के राजा ने उनका स्वागत किया था तो हैरत में पड़ गये थे कि हम तो कुछ दूसरे धर्म के हैं, अग्नि पूजक हैं। राजा बोले, इससे क्या फर्क पड़ता है! अग्नि हमारे यहाँ बहुत पवित्र है। उनको जगह दी कि यहाँ सुरक्षित रहो। तुम्हें किसी भी चीज की जरूरत हो तो हमें बता देना। आज भी किसी पारसी से पूछो तो आँसू आ जाते हैं उसकी आँखों में, वह कहता है कि इस देश ने हमें शरण दी है। देखिए कि विकास के जितने अवसरों को पारसियों ने रचा कोई दूसरा समुदाय रच पाया क्या? भारत के औद्योगीकरण का श्रेय किसको है। भारत में पहला स्टील प्लान्ट किसने बनाया, भारत में पहला ऐविऐशन किसने शुरू किया, भारत की पहली मेट्रो सिटी किसने बनाई यह सब पारसी लोग थे। कभी उनसे तुम्हारा टकराव हुआ क्या? कभी नहीं। क्योंकि उन्होंने कभी नहीं कहा कि जो इबादतगाह हमारा है, वह अगर तुम्हारा नहीं है तो तुम्हें जीने नहीं देंगे।

- **आपने कहा कि भारत आध्यात्मिक आस्था में है। तो इसमें आदि शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन का क्या योगदान है? भारत को एक रखने का जो लक्ष्य है, उसमें इनकी क्या भूमिका रही होगी?**

– भारतीय बहुलता का सबसे अच्छा रूपक है एक पुष्पों की माला। इसमें विविध रंगों और सुगंध के फूल होते हैं लेकिन धागा अलग-अलग नहीं होता। धागा एक होता है, जो उसको धारण किये रहता है। हमने इस विविधता और बहुलता की जो व्याख्या की है, पुष्पों पर हम इतने लट्टू हो गये कि हम यह मानने लगे कि सारा सच यही है। उस सूत्र को भूल गये जो उसको धारण किये हुए है, जो उसकी एकता का आधार है। उसकी एकता के आधार को एक बार फिर से नवभाष्य में लाने का महान ज्ञानात्मक उपक्रम किया जगद्गुरु आदि शंकराचार्य ने क्योंकि मैं यह मानता हूँ हजारों वर्षों की लम्बी ज्ञान परंपरा, साधना की परंपरा, संस्कृति की परंपरा, रचना की परंपरा और जीवन की परंपरा इसका संश्लेषण उन्होंने किया। उन्होंने भारत को एक दृष्टि दी और हर जातीय जीवन परंपरा की कोई एक मूलभूत दृष्टि होती है। भारत के पास वह दृष्टि क्या है? भारत में जातीय जीवन की मूल दृष्टि क्या है? यह कि मैं और प्रकृति भिन्न नहीं है। अपराप्रकृति और पराप्रकृति भिन्न नहीं है। मैं और ब्रह्म भिन्न नहीं हैं, मैं और वन, वृक्ष, जानवर, पशु-पक्षी, प्राणी, तत्वत: सब अपनी रचना में एक हैं। एक-दूसरे के जीवन को रहस्यमय तरीके से संभव कर रहे हैं। ये जीवन की रचना का मूलभूत आधार है। इस अर्थ में साधना की एक विशेष अवस्था में अद्वैत एक गहन ज्ञानात्मक अनुभव है, वह एक दार्शनिक पीठीका नहीं है। अद्वैत को फिलॉसफी बताकर एक बौद्धिक उत्पाद बना दिया गया है जैसे भारत ने कोई एक बौद्धिक उत्पाद की प्रस्तावना दुनिया के सामने रखी हो कि ये अल्टीमेट है।

दरअसल, अद्वैत एक अनुभव है और अनुभव में ऋषि के द्वारा ये देखा गया कि दो तो कुछ है ही नहीं, सब एक हैं। तब उपनिषद् के ऋषि ने उस अनुभव को कहा ''अहम् ब्रह्मास्मि'' मैं और ब्रह्म दो कहाँ? वह तो एक ही है। जब वृक्षों की पूजा भारत में शुरू हुई तो उनमें जीवन देख कर ही हुई होगी ना, जीवन्तता देख कर हुई होगी। आधुनिक विज्ञान ने तो वृक्षों में जीवन अभी खोजा है, बीसवीं सदी की शुरूआत में। जबकि वह तो हजारों वर्षों से उसको पूजित मानता रहा, उसको जीवन्त मानता रहा, मनुष्यों की ही तरह नदियों के साथ उसका क्या रिश्ता रहा है, पर्वतों के साथ उसका क्या रिश्ता रहा है, प्राणियों के साथ उसका क्या रिश्ता रहा है? हर प्राणी मार कर खाने की चीज तो भारत ने नहीं बनाई ना? अगर उसने अपने परिश्रम से अन्न भी पैदा किया है तो उस अन्न को खाने से पहले उसने देवार्पित किया। उसने कहा कि अन्न को उस समष्टि के लिए अर्पित करो जिसके सहयोग से ये अन्न बना है। जिसमें जल, मिट्टी, वायु की भूमिका है, जिसमें सूरज के ताप की भूमिका है, जिसमें चन्द्रमा की शीतलता और वायु के प्रवाह की भूमिका है। यह सारी समष्टि का उपहार है, जो हमारे उद्यम से और प्रकृति कृपा से हम तक आया है। हम सबसे पहले उनको अर्पित करेंगे फिर बाद में स्वयं गृहण करेंगे, यह एकात्मीयता का भाव है, ये अद्वैत है। यह जातीय जीवन परम्परा की मूलभूत भारतीय जीवन दृष्टि है, फिलॉसफी नहीं है। बौद्धिक प्रत्यवाद नहीं।

जब से इसे बौद्धिक प्रत्ययवाद बनाया गया है, मठों में और अकादमिक क्षेत्रों में, जीवन में धड़कना उसका जो था ना, वह हम भूल गये हैं। वह था आस्था। उसका अकादमिकता में कोई सम्मान नहीं है। जो लोग इस पर दसों किताबें लिखते रहते हैं वे अन्न की व्याख्या करेंगे क्या? एक ऋषि जब यह कहता है ''अन्नम् ब्रह्मम्'' उसने अन्न में ब्रह्म कैसे देख लिया? कहां के ऋषि थे वह ? क्योंकि उन्होंने अपनी अन्तरर्दृष्टि में और साधना के एक विशेष अवस्था में यह देखा होगा जो मनुष्य तक आने वाला अन्न जो है, वह सारी समष्टि का उपहार है। अकेले मनुष्य के उद्यम की रचना नहीं है। हर जातीय जीवन परंपरा की एक जीवन दृष्टि है। जीवन दृष्टि बहुत बड़ा पद है, दर्शन बहुत छोटी चीज है उसके आगे।

- **गांव से लेकर लोक को आपने मंच प्रदान किया है, जिसे हम लोकरंग कहते हैं। यह आपके समय से ही शुरू हुआ है। आपने रामलीला मेला भी शुरू किया। इसके पीछे की दृष्टि क्या थी ?**

– लोकरंग 1984 से शुरूआत की थी और मैंने अपने कार्यकाल में 23 साल चलाया। अपने समय पर ही उसका स्वरूप अंतरराष्ट्रीय हो। फिर मैंने राष्ट्रीय रामलीला मेला शुरू किया। पहली बार इस देश में रामलीला के क्षेत्रीय शैलियों का राष्ट्रीय मंच हमने बनाया। उस समय इसे कोई कला कला रूप नहीं मानता था। रामलीला कला माध्यम ही नहीं मानी जाती थी। मैंने पहली बार लोगों से यह आग्रह किया कि हम अपनी परंपरा के साथ न्याय करना कब शुरू करेंगे ? ये बकायदा एक माध्यम ही रहा है। और यह बिल्कुल अलग बात है कि वह आस्था का एक अवसर भी था। तो केवल इसलिए आप उसे कला के संसार से बाहर कर देंगे ? आप जो नाटक करो, वह कला है लेकिन लोक–समाज हजारों सालों से जो रामलीला कर रहा है, वह कला नहीं है ? अच्छा ये बताइए मुझे कि कौन सा राज्य था जो इसके लिए पैसे दे देता था कि करो। ये सब अपने ही साधनों से करते थे ना। कोई एनएसडी बना रखी थी क्या ? कि जब सरकार हाथ हटा लेगी तो मर जाओगे तुम। हजार साल तक उन्होंने चलाया ना अपने दम पर अपने साधनों से।

- **लोक संस्कृति के क्षेत्र में दीर्घकालिक योगदान के लिए भारत सरकार ने आपको पद्मश्री से विभूषित किया है, इसके लिए आपको बधाई। आपको लोक संस्कृति के क्षेत्र में संभावनाएँ क्या दिखती हैं और युवाओं के लिए आपका संदेश क्या है ?**

– असल में बात यह है कि जिस क्षेत्र में मैं था और काम कर रहा था उस पर सरकार ने ध्यान देना शुरू किया है, यह अच्छी बात है। इसमें सम्मान वगैरह दे रही है, यह भी अच्छी बात है। लेकिन सदियों–सदियों तक हमारे देश में जीवन और कला का लोक आधार जो है, वह बिना राज्य–आश्रय के रहा है। मैं तो कम से कम उस लम्बे समय में ठीक से यह समझ पाया कि उनको जीवन में न राज्य की जरूरत थी और ना अपनी रचना के लिए राज्य की जरूरत थी। इसको हम ठीक से समझें तो राज्य को हम ले गये हैं उनके भीतर, उन्होंने कभी राज्य मांगा नहीं था। आप मुझे बताइए कि जनजातीय क्षेत्रों में आपने कोई पुलिस देखी है ? कोई थाना देखा है ? कोई जेल देखी है ? कोई संहिता देखी है ? क्या देखा है आपने ? वहाँ इन सब के बिना उनका जीवन ज्यादा सुचारू है, ज्यादा अनुशासित है, ज्यादा मर्यादित है। तो हम राज्य ले गये हैं न वहाँ जिस चीज को राज्य की ओर से किया जाने वाला विकास या राज्य का ध्यान कहते हैं, उसके पहले जो कुछ जीवन था, उसमें जो बदलाव हुआ उसके लिए क्या उन्होंने अपनी तरफ से कभी मांग की थी या आप ले गये हैं ? हमने एक विकास तय किया है कि गांव में सड़कें होनी चाहिये, बिजली होनी चाहिये, गांव में स्कूल होना चाहिये, गांव में अस्पताल होना चाहिये। हजारों साल भारत के लोक समाज आपके इस तथाकथित अस्पतालों के बिना रहे हैं ना, आपके इन आधुनिक शालाओं और शिक्षा केन्द्रों के बिना रहे हैं ना। मर तो नहीं गये हैं उसके कारण लोग, अशिक्षित तो नहीं रह गये। हाँ यह बिल्कुल अलग बात है कि हम लोगों ने उन्माद भरा साक्षरता का आंदोलन चलाया और हमने देश को ही दो हिस्सों में बांट दिया। एक हिस्सा जो था, वह अक्षर जानता था और एक हिस्सा वह था जो अक्षर नहीं जानता था। लोक–समाज वह है, जो अक्षर जाने बिना जीवन के ज्ञान में था। अब यह निर्णय हमें करना है कि सच्ची और बड़ी चीज कौन सी है। जीवन का ज्ञान बड़ा होता है या अक्षर बड़ा होता है। जो अक्षर की परंपरा में हैं उन्होंने महाभारत नहीं पढ़ा लेकिन तीजनबाई बिना पढ़ी–लिखी हैं और महाभारत के 18 पर्व उन्हें कंठस्थ हैं। अब हमें तय करना है कि निरक्षर कौन है ?

एक सांस्कृतिक निरक्षरता है, जो अक्षर की साक्षरता से भारत में जुड़ गयी है। एक अर्थ में हमने भारत को भारत की तरह देखना ही बंद कर दिया है। भारत इससे पहले भी अपनी पाठशालाएँ चलाता था। धर्मपाल जी ने तो उसको प्रमाण सहित 16वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी का अध्ययन करके बताया कि कैसे स्ववित्तपोषित पाठशालाएँ हर गांव में चलती थीं। मैं लोक जीवन में विकास का विरोधी नहीं हूँ। लेकिन विकास के स्वरुप और उसकी प्राथमिकता का सवाल है। परम्परा और उसकी विशिष्टता की रक्षा करते हुए, ऐसा होना चाहिये था। दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हो सका। अच्छी बात है कि कुछ कलाकार सम्मानित हों, कुछ अवार्ड मिले उनको, कुछ उनके जीवन में सहूलियत हों लेकिन बड़ी बात जो मैंने जानी और जिससे मुझे शक्ति मिली, वह यह है कि वह हजारों साल से बिना राज्य आश्रय के हैं और जैसा भी जीवन हो सकता था अपने आत्मविश्वास, परिश्रम, ईमानदारी के बलबूते उन्होंने उसे जिया है। मैंने एक ऐसा जीवन जिया जो सिर्फ अपने लिए ही नहीं था, दूसरों के लिए भी था। अवार्ड व पद आदि की मैंने कभी आशा ही नहीं की, न किसी से कहा कभी, उस समाज पर अगर मेरा भरोसा नहीं होता, उससे मैंने सीखा नहीं होता तो ये चीज नहीं आ सकती थी।

■

आलेख

कलाएँ मनुष्य की संस्कार और सौन्दर्य-भूमि

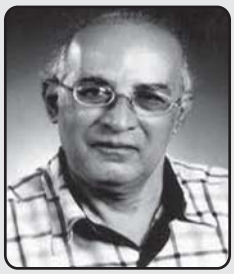

रमेश दवे

यदि किसी देश का भौगोलिक और राजनीतिक नक्शा कितना भी भव्य बना कर लगा दिया जाए और फिर उसे देश कहा जाए तो देश एक नक्शा तो अवश्य लगेगा, मगर देश नहीं लगेगा। एक देश को देश लगने के लिए क्या होना चाहिए-क्या एक नक्शा, क्या कुछ नागरिक या किसी भी किस्म की कोई एक व्यवस्था? क्या ग्रीस को सोफोक्लीज, सुकरात, अफलातून और अरस्तू के बिना देश माना जा सकता है? क्या इटली को लियोनार्दो विन्ची और दाँते के बिना देश माना जा सकता है? क्या कलाओं में, सोचने की भाषा में जीने वाला फ्रांस मलामें, पाल वेलेरी, कामू, सार्तू और पिकासो के बिना एक देश होने को संज्ञा रचता है? इसी प्रकार भारत या भारत के किसी भी राज्य को लेकर ऐसे प्रश्न किये जाएँ तो कहना होना कि अगर शेक्सपीयर के बिना इंग्लैण्ड नहीं हो सकता तो कालिदास के बिना भारत नहीं हो सकता, कबीर और तुलसी के बिना यह देश नहीं हो सकता।

1982 के पूर्व का मध्य प्रदेश आदिवासियों के तन का मध्यप्रदेश था, उनके मन और उनकी आत्मा का मध्यप्रदेश शायद नहीं था। 1982 के पहले कलाएँ, सृजन, संस्थाएँ, पर्व, उत्सव और समारोह सब-के-सब स्वायत्त थे यह तो अक्सर कहा जाता है, लेकिन इस स्वायत्तता ने मध्य प्रदेश को दिया क्या था? गरीबी की पंडवानी, गरीबों का नाचा और माच, भूख के लोकनृत्य, देहशोषण से सिसकियाँ भरती आदिवासी संस्कृति का रुदन-राग और एक लोकव्यापी उपेक्षा? एक ऐसा राज्य जिसके पास अपना आदिम लोक-वैभव था, खजुराहो था, साँची था, बाघ की गुफाएँ थीं, अपार वन-सम्पदा से लहराते अरण्य-ऐश्वर्य थे, भीमबैठका के शैलचित्र थे, फिर भी यह प्रदेश एक भौगोलिक नक्शा ही था। स्व. अलाउद्दीन खाँ का साहब का बैण्ड था, स्व. कृष्णराव पंडित की गायकी का जटिलतम ग्वालियर घराना था, हाफिज अली खाँ साहब थे, अमीर खाँ साहब थे, रजब अली खाँ साहब थे, और कंठ से कबीर रचने वाले कुमार गंधर्व थे, फिर भी मध्यप्रदेश एक भौगोलिक नक्शा-भर था जिस पर पिछड़े कहे जाने वाले आदिवासी क्षेत्रों की गाढ़ी लकीरें थीं। न डी. जे. जोशी, हुसैन, रजा की तूलिकाओं से रंगों की अदा बिखेरती कलाकृतियों की सही पहचान थी; न फड़के, यावलकर और बस्तर के आदिम मूर्ति-विन्यास की समझ; न संतूर, सितार, सरोद, वीणा विचित्र वीणा, आदि वाद्यों में बहती राग-धाराओं में बहने की ललक। मुक्तिबोध सर्जकों, आलोचकों और साहित्यकारों का भावबोध नहीं बने थे, कालिदास और तानसेन किवदंती-नायकों की तरह मात्र पूजा-पुरुष बन कर रह गये थे और कथक के कार्तिकराम, कल्याणमल और फिरतू कथक से थक कर अपनी-अपनी बस्तियों में मुरझाये पौधों की मानिंद पड़े थे।

यह सब इतिहास-क्रन्दन इसलिए नहीं है कि मध्यप्रदेश को उसकी नक्शा-छवि से मुक्त कर उसे कोई मानवीय आकार दे दिया जाए। मनुष्य भी तो अपने भौतिक रूप में एक देह-भर नक्शा ही तो है। मध्यप्रदेश को नक्शा-मुक्त करने के लिए पहले हमें मध्यप्रदेश के मनुष्य को उसकी देह के नक्शे से मुक्त करना होगा। ऐसा नहीं कि 1982 के पहले संस्थाएँ नहीं थीं, कलाएँ नहीं थी, कलाकार और सर्जक नहीं थे। साहित्य परिषद, उर्दू अकादमी, कला परिषद, आदिवासी लोक कला परिषद, संस्कृत अकादमी, अलाउद्दीन खाँ संगीत अकादमी आदि अनेक संरक्षण प्राप्त संस्थाएँ थीं। कुछ निजी संस्थाएँ भी साहित्य और कलाकर्म में अपनी अस्मिता रच चुकी थीं।

सांघी मुक्त-आकाश, कला मंदिर, कला संगम, अभिनव कला परिषद, मालव मंदिर, मधुवन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दी साहित्य समिति, हिन्दी-भवन और यदि एक फेहरिस्त बनाई जाए तो अपने-अपने स्तर पर काम करने वाली अनेक आत्म-प्रेरित संस्थाएँ थीं। इतना सब होते हुए भी 1982 तक आज़ादी के 35 साल बीत चुके थे, न मध्यप्रदेश के कला और सृजन-साम्राज्य की कोई पताका कहीं फहरा रही थी और न देश की राजधानी दिल्ली के सांस्कृतिक स्वरों का आरोह-अवरोह कहीं सुनाई देता था, और अगर ऐसा होता

भी था तो कुछ जश्न-फरोश लोग ऐसा करके साबित यह करते थे कि वे मुल्क की तहजीब की तिजारत करके उस पर अहसान कर रहे हैं। कलाओं, सृजन और उनसे जुड़े मनुष्य के संवेदन को भाषा हमारे पास नहीं थी, उस बौद्धिक ऊर्जा का भी अभाव था जो कला या सृजन को माननीय बनाती है, क्योंकि हमारी लोकवृत्ति का संस्कार ही हम नहीं कर पाये थे।

वैसे तो आठवें दशक में मध्यप्रदेश ने नक्शे के लकीरों से बाहर आना शुरू कर दिया था और उत्सव जैसे आयोजनों से कलाओं के संसार में उस बौद्धिक और संवेदनात्मक हस्तक्षेप का आरम्भ हो चुका था जिससे मध्यप्रदेश को आदिवासी कहलाने में गर्व हो और पिछड़ा कहलाने में शर्म महसूस हो। शुरू हुई कलाओं में सोचने की एक यात्रा और सोच प्रणाली के प्रणेता बने अशोक वाजपेयी। 1982 में भारत-भवन बना और दीर्घाओं में कला की भाषा आकार लेने लगी।

रविशंकर, विलायत खाँ साहब, बुधादित्य के सितार की मिज़राब यहाँ आकर मचलने लगी। अल्लारखा खाँ साहब, गुदई महाराज, किशन महाराज और जाकिर अली का तबला, पागलदास की पखावज, पं. रामनारायण की सारंगी, अमज़द अली खाँ साहब का सरोद, अली अकबर के सरोद की अलाउद्दीनी मीड़, सब कुछ ऐसे लगने लगे जैसे बड़ी झील की लहरें संगीत बन गई हों। हरिप्रसाद चौरसिया की बाँसुरी सुनकर लगने लगा जैसे भोपाल की पहाड़ियाँ वृन्दावन बन गई हों और तरह-तरह के दुर्लभ वाद्ययंत्रों से वह दुर्लभ रसधारा फूटने लगी जो कभी किसी घराने तक सीमित थी, मगर भारत भवन से बहता संगीत घरानों से घर-घर तक पहुँच गया।

नृत्य को जो परम्परा रायगढ़ के राजा चक्रधर ने रची थी वह अपनी नूपुर-ध्वनि लगभग खो चुकी थी। उस परम्परा के खण्डहरों का जीर्णोद्धार हुआ। संगीत, नृत्य, नाटक, चित्रकला, मूर्तिकला, छापाकला, लोककला, साहित्यिक सृजन, वैचारिक विमर्श में ऊर्जस्वित त्वरा के साथ बौद्धिक प्रवर्तन इस प्रकार के हुए कि भारत भवन अपने जन्म के कुछ ही वर्षों में एक ऐसे महासमुद्र में बदल गया जिसमें समस्त कला, साहित्य की वाग्धाराएँ आकर समाहित हो गईं। सरकारी स्तर पर या सरकारी संरक्षण के साथ जन्मा एक न्यास अपनी कलाओं का जनपद, अपने सृजन का नया व्याकरण इतनी स्वतंत्रता, इतनी स्वायत्तता और इतनी कल्पनाशीलता से इतनी जल्दी रच सकता है, यह देखकर कई को अचरज हुआ और अविश्वास इसलिए नहीं हुआ कि अविश्वसनीय कुछ था ही नहीं। यथार्थों को मालवाहकों की तरह ढोते प्रतिबद्ध भी चकरा गये और यहाँ तक कि उनकी प्रतिबद्धता में जीते अनेक कलाकार और सर्जक भारत भवन में आकर अधिक प्रगतिशील हो गये, अधिक प्रतिष्ठित हो गये। भारत भवन कला और सृजन की प्रासंगिकता बन गया, आधुनिक वास्तुकला का पर्यावरण-उन्मुख एक भवन जीवित उपस्थिति बन गया।

हमारी मानसिकता कुछ जरूरत से ज्यादा ही वर्तमान-द्रोही है। हम आज की अपेक्षा बीते कल को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं और आने वाले कल के स्वप्न देखते रहते हैं। अतीत हमारा मोह या आबसेशन है और इसलिए हम अतीत को बोलकर अपने उस आबसेशन को ग्लोरीफाय करने की कोशिश करते रहते हैं। एक संस्था, संस्था होकर भी संस्था न लगे, बल्कि समूचा संसार लगे, संवेदनावान मनुष्य लगे, संस्कारवान आस्था लगे और अपने कलाबोधों, सृजनबोधों में सम्पूर्ण स्वच्छंद प्रकृति लगे तो क्या उसे महज संस्था की तरह देखना उचित होगा? हमने संकीर्णताओं और स्वार्थों के अनेक दूह अपने आस-पास खड़े कर लिये हैं, इसलिए हमें कभी व्यक्ति दिखता या दिखते हैं, कभी संस्था या संस्थाएँ दिखती हैं और उनकी भौतिकता का इस कदर प्रभाव हम पर होता है कि कलाओं के भीतर, सृजन के भीतर या विचार के भीतर जो अध्यात्म भरा हुआ है उसे न हम देख पाते हैं, न समझ पाते हैं। हम आज़ादी का स्वर्णिम इतिहास बखानते वक्त अगर आधी 19वीं सदी से लेकर पूरी बीसवीं सदी तक की उन हस्तियों का नाम श्रृंखलाबद्ध तरीके से लेकर बड़े गर्व से कहते हैं कि ऐसी महान पीढ़ी शायद ही दुनिया के इतिहास में एक साथ कहीं हुई हो।

1982 से लेकर भारत भवन और उसकी अनुषंग संस्थाओं से इस देश की कला, सृजन, बौद्धिक और विविध-रंगी व्यक्तित्त्वावली जिस प्रकार भारत भवन से जुड़ी क्या वह कम गर्व की बात है। कौन सा ऐसा क्षेत्र है जब उस क्षेत्र की महानतम हस्ती झीलों की खिड़कियों से भोपाल में झाँकने न आई हो। एक कला-कंगाल प्रदेश सृजन-समृद्ध हुआ। अध्ययन, शोध और कलात्मक नवाचार की संस्कृति अपने अतीत का कारावास त्याग कर अपने समय में आ खड़ी हुई। कविता, कथा या गल्प, कला और विचार के समय को लेकर समय और शून्य की नई बहस शुरू हुई। इतिहास की मृत्यु घोषित कर तरह-तरह के वादों से उलझते हुए हम मिशेल फोकू और देरिदा के उत्तर-आधुनिक सोच की भी दीवार फाँदने लगे, यदि इन सबको सकारात्मक दृष्टि से देख कर मूल्यांकन किया जाए। बहुत तटस्थ, बहुत निष्पक्ष और निरपेक्ष निर्णय हम स्वयं अपने बारे में ले सकेंगे और अहंकारों के नाम पर अपने बौद्धिक शील से धोखा किये

बगैर यह मानना होगा कि भारत-भवन ने जो दिया है, वह आज तक अनदिया-सा ही था।

आयोजनों में आयोजन की उत्कृष्टता, समारोह में समारोहों का रस-सौन्दर्य, पर्व में पर्व की-सी गरिमा, सम्मानों में कालिदास, कबीर, तुलसी, इकबाल, महात्मा गाँधी, मैथिलीशरण गुप्त आदि व्यक्तित्त्वों और उनके लोक-मान के अनुरूप ऊँचाई, कार्यक्रमों में कार्य संयोजन की अद्‌भुत कुशलता, इन सबसे भारत-भवन इमारत से इबारत हो गया और देश भर में संस्कृति की मानक-भूमि बन गया। अज्ञेय, जैनेन्द्र, नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, मुक्तिबोध, निर्मल वर्मा, कृष्ण बलदेव वैद, कृष्णा सोबती, भवानी मिश्र, रघुवीर सहाय, विजयदेव नारायण साही, श्रीकांत वर्मा, नामवर सिंह, हजारी प्रसाद द्विवेदी और ऐसे हमारे समय के या समय के आस-पास के सर्जकों के साथ साक्षात्कार होना, वह भी बौद्धिक सहजता के साथ क्या पहले कभी संभव हुआ था? क्या देश की महानतम नृत्यांगनाएँ एक साथ, एक जगह आकर नृत्य भी करें और नृत्यशास्त्र पर शास्त्रार्थ भी, यह किसी कला संस्था ने पहले कभी किया है ?

जिन्हें हम अंग्रेजी में सेलिब्रेटी और मेइस्ट्रो कहते हैं, वे सब जिस सहजता और जिस आत्मीयता से भोपाल आये और भोपाल में अपनी प्रतिभा को प्रगट कर जितने आत्मविभोर हुए, उतने अन्यत्र कहीं हुए? सरकारी संरक्षणों में होने वाले कमीशंड कार्यक्रम ठीक वैसे ही लगते रहे हैं जैसे पैसों से एक टी.वी. सेट खरीद लिया हो, मगर भारत-भवन और उससे जुड़े सरकारी तंत्र ने जिस सांस्कृतिक शील को रच कर कला, कलाकार और सर्जक को सरकार और संस्था दोनों से बड़ा बना दिया, क्या उपलब्धि के वैसे शिखर कहीं और रचे गये? ये सब बातें अतिशयोक्तिपूर्ण और पूर्वग्रह-ग्रस्त भले ही लगें, मगर हमारे अन्दर जो काव्य-न्याय है, उसे आजमा कर हम मध्य प्रदेश में हमारी समग्र संस्कृति-यात्रा के पिछले पचास वर्ष देखें तो हमें लगेगा कि अक्सर संस्थाएँ ध्वस्त होने के लिए बनती हैं, मगर भारत-भवन ने ध्वस्त खंडहरों को कलाकृतियों में बदला है, ध्वस्त व्यक्तियों को व्यक्तित्वों में बदला है। और कितनी भी आलोचना क्यों न की जाए, इस सबका श्रेय उस व्यक्ति को देना भी एक प्रकार का काव्य-न्याय होगा, जिसमें सर्जक एक शब्दजीवी संज्ञा नहीं है, बल्कि एक समग्र प्रज्ञावान और संवेदनवान संस्कृति है।

कोई भी संस्कृतिवान समाज अपने सांस्कृतिक-कर्म का निर्वाह तभी कर पाता है, जब वह अपने में निहित संस्कृति की ठीक से पहचान कर उसकी लोक-अभिव्यक्ति कर सके। हम जो सदियों पहले करते थे, वह आज भी कर रहे हैं या वैसा ही कर रहे हैं, यह एक भ्रामक तथ्य है। लोक जो कुछ अपने आप करता है, वह जीवन-प्रणाली का हिस्सा तो हो सकता है, लेकिन उसकी कलात्मक स्वीकृति तो तभी होती है, जब वह प्रणालियों की धारा बदल दे और एक नया प्रवाह रच दे। यह काम भी सभी नहीं कर पाते। इसके लिए दो प्रकार की समृद्ध दृष्टि आवश्यक है-एक तो लोक और उसके सांस्कृतिक जीवनबोध की समझ होना और दूसरा कला के उन स्तरों की सही पकड़ होना जो जीवनबोध को रागबोध, कलाबोध और सौन्दर्यबोध बना सके। मध्य प्रदेश के पास लोक-संस्कृति की जो बहुवचनीय व्याप्ति थी और है, उसे उसके कलात्मक मर्म के साथ अभिव्यक्त होने के लिए संवेदनमयी लोक-संयोजना की जरूरत होती है। भारत-भवन उसी लोक-संयोजन की कलात्मक स्थापना है।

कालिदास सम्मान शास्त्रीय संगीत, शास्त्रीय नृत्य, रंगकर्म और रूपंकर कलाओं को समर्पित करने से पूरा देश व प्रदेश उन विराट व्यक्तित्वों के कलात्मक उत्कर्ष से परिचित हो सका, जो संभवतया कुछ वर्ष के बाद केवल इतिहास-वस्तु बन कर रह जाते। कबीर सम्मान, तुलसी सम्मान, मैथिली शरण गुप्त सम्मान, इकबाल सम्मान, महात्मा गाँधी सम्मान और शरद जोशी सम्मान शब्द और संस्कृति-कर्म की सार्थकता के सम्मान हैं। तीजन और तनवीर, छत्तीसगढ़ में संभवतया उसी तरह खप गये होते जैसे उनके पूर्ववर्ती नाचा-कर्मी और पंडवानी-गायक खप गये होंगे, लेकिन उनके साथ भारत-भवन ने उन सभी लोक भाषाओं को विश्वविख्यात बना दिया और मध्य प्रदेश में लोक-कला, लोक-संगीत, लोक-नृत्य और लोक-संस्कृति का वैभव अपनी पूरी लय-ताल के साथ उठ खड़ा हुआ।

इसी प्रकार कविता भारती ने हिन्दी के सर्जनात्मक संसार का साक्षात्कार। अन्य भारतीय भाषाओं की सर्जनात्मक मेधा से करवाया और न केवल हिन्दी बल्कि उस अंग्रेजी कविता से भी करवाया, जिसका साहित्य पढ़ कर आज की अधिकांश सर्जक पीढ़ी अपने बौद्धिक होने का दावा करती है। सृजन की विचार-भूमि कहाँ है, कैसी है, और उसका उत्खनन कैसे हो, यह समझ केवल साहित्य का समाजवाद रटने से नहीं पैदा होती, लेकिन भारत-भवन ने इस सर्जनात्मक विचार-दृष्टि की सृष्टि की और समाज-शास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक एवं शास्त्रीय संवाद रच कर बौद्धिकता के प्रचलित और दोयम दर्जे के मुहावरे खंडित किये। इसी प्रकार एशिया कविता और विश्व कविता से सृजन का वह विराट व्योम हिन्दी सर्जक के

समक्ष उद्घाटित किया गया जो कल्पना के स्तर पर भारत-भवन की ही पहली कल्पना कही जा सकती है। स्टीफेन स्पेण्डर जैसे कवि, आलोचक और चिंतक का भारत-भवन में आना, साथ ही गेब्रियल ओकारा, कोफी एवोनूर और अन्य विश्व-विख्यात कवियों, सर्जकों का भारत-भवन में कविता पाठ करना एक प्रकार से समूचे संसार के लिए पाठ-परंपरा को पुनर्जीवित करना था, और यह काम किसी ऑक्सफोर्ड या हावर्ड में न होकर भारत-भवन में हुआ। यदि कविता की पाठ परंपरा व्यापक होती है, और कविता लोक-सर्जना में पाठकीय हस्तक्षेप बनती है, तो यह अवदान पूरे विश्व के लिए भारत-भवन का ही होगा। हिन्दी की सृजन-मेधा को इन आयोजनों से कला के स्तर पर, शिल्प के स्तर पर, शब्द के स्तर पर और एक समूची संवेदनात्मक बौद्धिक चेतना के स्तर पर स्पर्श करने का जो प्रयास मध्य प्रदेश, भारत-भवन और विभिन्न अकादमियों ने किया, वैसा देश भर में कहीं नहीं हुआ।

यह कहना भी अतिशयोक्ति ही होगा कि सब कुछ भारत-भवन होने से ही हुआ या सब कुछ भारत-भवन ने ही किया। भारत-भवन के पूर्व संस्कार-भूमि तो तैयार हो गई थी विभिन्न परिषदों के गठन से। साहित्य परिषद ने साहित्य के क्षेत्र में जो काम किया, उसने भी देश भर का ध्यान अपनी ओर खींचा था। चाहे शानी हों, डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय हों, सुदीप बनर्जी, सोमदत्त, मनोहर वर्मा, ध्रुव शुक्ल, प्रभात त्रिपाठी या आग्नेय हों, साहित्य परिषद के प्रति ज्यादातर नोटिस उसकी पत्रिका 'साक्षात्कार' के कारण लिया गया। साक्षात्कार को एक पाठक-जीवी पत्रिका बना कर उससे हिन्दी और हिन्दीतर सर्जकों को जोड़ने का पहला और बड़ा प्रयास डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय ने किया था और बिना किसी पूर्वग्रह के यह तो स्वीकार करना ही होगा कि साहित्य परिषद को एक जीवंत संस्था में बदल कर सृजन और सर्जक-उन्मुखी संस्था बना देने में डॉ. श्रोत्रिय की महती भूमिका रही है।

कला परिषद ने भारत-भवन के पूर्व भी कला, संगीत, नृत्य और नाटक का एक भव्य संसार रच दिया था। लोक-कला परिषद, अलाउद्दीन खाँ अकादमी, उर्दू अकादमी, संस्कृत अकादमी, चक्रधर कथक केन्द्र, ध्रुपद केन्द्र आदि सबका योगदान भी कम नहीं है, मगर लोक-कला परिषद ने लगभग साहित्य परिषद और कला परिषद के समकक्ष जाकर काम किया और मध्य प्रदेश की लोक संस्कृति के ऐसे विरल पहलुओं को उजागर किया जो संभवतया परिषद के बिना अनदेखे ही रह जाते।

यह सब होते हुये भी भारत-भवन इसलिए महत्त्वपूर्ण बना कि उसने अध्ययन और शोधपरक दृष्टि की रचना की। साहित्य-कर्म को भी उसकी निरी भावुकता से खारिज कर उसमें चिंतन, मंथन और विचार की स्थापना की। संस्कृति और संस्कृति के संबंधों को नई प्रासंगिकता देकर उन्हें उनके रूढ़ि मोह से मुक्त किया। मुक्तिबोध जैसा कवि, विचारक हिन्दी कविता और निबंध, डायरी आदि सभी शिल्पों के साथ अन्वेषित हुआ।

निराला पीठ पर निर्मल वर्मा, कृष्ण बलदेव वैद, कमलेश, कृष्णा सोबती और दूधनाथ सिंह का आना, प्रेमचन्द पीठ पर शमशेर, मन्नू भण्डारी और नरेश मेहता का होना, सागर की पीठ पर त्रिलोचन का होना, हरिशंकर परसाई का होना किस बात का प्रतीक है ? क्या इनके आने और रहने से मध्यप्रदेश को अपनी ऊँचाई मापने और सृजन को उसके श्रेष्ठत्व में जानने का मौका नहीं मिला? डॉ. विद्यानिवास मिश्र, वागीश शुक्ल, नामवर सिंह, बाबा नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, कुँवर नारायण सिंह, प्रो. सरण, बिन्दा करंदीकर इन सबको सुनना और इनका शास्त्रार्थ देखना क्या एक साथ कहीं और संभव था? भले ही वाम-विरोधी लेबल चस्पा कर कुछ कुण्ठा-कुशाग्र लोग भारत-भवन को बदनाम करें, मगर अज्ञेय और मुक्तिबोध, महादेवी और महाश्वेता, निर्मल वर्मा और नामवर सिंह और ऐसे अनेक जिस मंच पर एक साथ हों, अपनी-अपनी वाग्धाराओं के साथ हों, अपनी-अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ हों और फिर भी उनका सर्जनात्मक संतुलन और बौद्धिक द्वन्द्व साहित्य की प्राथमिकता से जुड़ा हो न कि वैचारिक शिविरों से, तो क्या यह किसी भी उस शास्त्रार्थ की परंपरा से कम है, जो हमारी संस्कृति में बौद्धिक उत्कर्षों की जाँच के लिए हुआ करता था? कलाओं, नृत्यों, संगीत, लोक-कलाओं, नाटकों पर जितना गहन मंथन और निबंध लेखन भारत-भवन के माध्यम से हुआ, पूर्वग्रह व अन्य पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ, वह आज भी देश में श्रेष्ठता का मानक है।

आज हिन्दी में 'पूर्वग्रह' और 'साक्षात्कार' के सामने चुनौती की तरह खड़ी होकर अपनी अस्मिता सिद्ध कर सकें ऐसी पत्रिकाएँ हैं ही कहाँ, थोड़ी कोशिश राजस्थान में शुरू हुई है, वरना कोलकाता की भारतीय भाषा परिषद का 'वागर्थ' ही एकमात्र ऐसी पत्रिका रही है जिसने हिन्दी और हिन्दी-तर भाषाओं के सर्जनात्मक कर्म में सार्थक हस्तक्षेप किया है।

भारत-भवन ने जिस अध्ययन और चिंतन प्रणाली को विकसित और प्रोत्साहित किया उसे लोग भले ही भारत-भवन का आतंक मानें, मगर आज देश भर में अध्ययन की संस्कृति को

पुनर्जीवित करने का काम भारत-भवन ने किया, यह तो सभी स्वीकारते हैं। हम अशोक वाजपेयी से किन्हीं व्यक्तिगत या विचारधारागत कारणों से असहमत हो सकते हैं, लेकिन अध्ययन की संस्कृति का पोषण कर भारत-भवन ने देश भर में जिस बौद्धिक ऊर्जा के साथ दखल किया है, क्या वैसा वे लोग कर पाये जो स्थानीयता से बँधे-बँधे ईर्ष्या और द्वेष का द्वन्द्व रच रहे हैं? क्या कारंत को निरस्त या निष्कासित कर देने से रंगकर्म की समूची श्रेष्ठता को निरस्त किया जा सकता है? क्या हबीब तनवीर को अस्वीकार करने से हम अपने रंगकर्म का गतिशील नवाचार करके यह साबित कर रहे हैं कि हम कारंत और तनवीर, शंभू मित्र और सान्याल की पीढ़ी से आगे के सर्जक या रंगकर्मी हैं? हम स्तरों के आधार पर ईर्ष्या भले ही करें, मगर अपने दोयम-पन को प्रथम-पन के स्तर पर रखने के लिए स्वयं ही कुछ मानक रचें, मापदण्ड रचें। हमारी कविता, हमारी कहानी, हमारे उपन्यास, हमारे निबंध और हमारी आलोचना का जो स्तर है, उससे हम उन लोगों से टकराते क्यों नहीं जिन्हें हम तथाकथित कहते हैं या स्तर और गुणवत्ता से निरस्त करते हैं? आज की पूरी सृजनकर्मी पीढ़ी अध्ययन-विमुख पीढ़ी होने से जिस वैचारिक प्रबोधन की आवश्यकता सृजन के लिए आवश्यक होती है, वह उसमें विकसित नहीं हो पाई है। केवल इलजाम लगा देने से श्रेष्ठता साबित नहीं होती, केवल खेमा या शिविर कह देने से हम अपने निजी स्तर पर अपना अहं संतुष्ट भले ही कर लें, लेकिन यदि एक ही मंच पर विद्यानिवास मिश्र और नामवर सिंह एक साथ टकराते हैं तो यह टकराहट विचारधारा की न होकर विचार की है, अध्ययन और चिंतन की है और उस सर्जनात्मक दृष्टि की है जो स्तर रचती है।

अगर हिन्दी में कलाओं पर आलोचनात्मक और सर्जनात्मक निबंधों की शैली अशोक वाजपेयी ने रच कर हिन्दी को एक नया उन्मेष दिया तो उसका मूल्याँकन कला-आलोचना के अन्य तत्त्वों के साथ होना चाहिये, न कि व्यक्तिगत भर्त्सना-भंडार के आधार पर।

तटस्थता, काव्य-न्याय, निरपेक्षता आदि शब्द सर्जक के शब्द नहीं हैं। सर्जक तो सृजन के न्याय में जीता है। भारत-भवन ने उस सृजन-न्याय की सृष्टि की है, जो अध्ययन की विलक्षणता से उपजा है, भावुकता-विहीन बौद्धिक चिंतन से उपजा है। आयोजनों और उत्सवों के पूर्वग्रहों के कारण एक संस्था के समग्र सांस्कृतिक-मूल्यबोध को निरस्त करना कहाँ तक उचित है? आज हिन्दी का सृजन विश्व स्तर पर रख कर देखा जा रहा है, क्या इसे इस स्तर तक पहुँचाने का काम भारत-भवन और उसकी अनुषांगिक संस्थाओं ने नहीं किया? कलाओं के प्रति, संगीत, नृत्य और लोक-संस्कृति के प्रति जिस चिंतन-प्रणाली को विकसित कर इस सांस्कृतिक विविधता के सम्मान की जो रचना भारत-भवन ने की, क्या उसके पहले देश में अन्यत्र ऐसा कहीं हुआ था?

आधी शताब्दी की आज़ादी के बाद के भारत में भारत-भवन का योगदान कम नहीं है, क्योंकि वह भवन या संस्था न होकर एक प्रकार की साधना-भूमि है। हम आयोजनों से असहमत हो सकते है, हम व्यक्तिगत अहंकारों से टकरा सकते हैं, हम पूर्वग्रहों के नाम पर संवाद कर सकते हैं, मगर हम सत्य से तो तभी टकरा सकते हैं, जब हमारे पास भी वैसा ही सत्य हो। हमें भारत-भवन ने साहित्य, संगीत, नृत्य, कला, रंगकर्म, रूपंकर विधाओं, विचार-संवाद, आलोचना, निबंध आदि सभी का श्रेष्ठ दिया, और कविता, कथा, आलोचना आदि के समय रच कर सारे विश्व के सामने हमारी संस्कृति का भारत-समय रचा, क्या इसे हम मात्र कुछ वर्ष में हासिल की जाने वाली उपलब्धि का शिखर नहीं कह सकते? कैसे करते हर क्षेत्र के श्रेष्ठतम से साक्षात्कार हम, कैसे सुन या देख पाते वे सब जिन्हें हम किंवदंती की तरह समाचारों की सामग्री के रूप में पाते थे, मगर जो भारत-भवन और मध्यप्रदेश की संस्थाओं और परिषदों में वास्तविकता बने, भौतिक और कलात्मक यथार्थ बने। यथार्थ और अति यथार्थ की बात करने वाले, आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता के फतवों की भाषा में कला, संस्कृति, फिल्म, साहित्य, रंगकर्म, कथा आदि सब को कसौटियों पर कसने वाले यह भी सोचें कि व्यक्ति और संस्था एक साथ व्यक्तित्ववान तभी होते हैं, जब श्रम के साथ शब्द भी सार्थक हो, दृष्टि के साथ सृष्टि भी सार्थक हो। मध्य प्रदेश में भारत-भवन का होना भारत में मध्यप्रदेश का होना है और कुछ सीमा तक तो विश्व में मध्य प्रदेश का होना है। इसलिए भारत-भवन को उत्सव-मंच न मानकर वैचारिक प्रगल्भता की आश्रम-भूमि की तरह देखना होगा और एक व्यापक संस्कृति-बोध हमारे अन्दर विकसित करना होगा, जिससे हमारी संकीर्णताओं के स्तर खंडित हों और हम सृजन और संस्कृति के उस ब्रहाण्ड से जुड़ सकें जिसकी रचना भारत-भवन कर रहा है। इस मॉडल को यदि शिक्षा का मॉडल बना कर शिक्षा में भी लागू कर दिया जाए तो क्या ऐसा स्तर पाकर हर शैक्षिक संस्था छोटे-छोटे भारत में नहीं बदल जाएगी।

- लेखक वरिष्ठ कवि, कथाकार, आलोचक एवं संपादक मंडल समावर्तन के प्रतिष्ठित सदस्य हैं। एस.एच. 8/19 सहयाद्रि परिसर, भदभद रोड, भोपाल - 462003, फोन : 94065 28243

■

कला

धुएं की लकीरों में जीवन के बिंब उकेरता चित्रकार : प्रियेश दत्त मालवीय

गोविंद गुंजन

बरसो पहले मार्च 1999 के महीने में मुंबई के वर्ली स्थित नेहरू आर्ट सेंटर में 'लेम इफेक्ट' शीर्षक से धुंआकृतियों की एक चित्रकला की प्रदर्शनी लगी थी। आमतौर पर चित्र प्रदर्शनियां लगती ही रहती है, परंतु इस बार एक अलग बात थी। एक युवा कलाकार ने गैर पारंपरिक माध्यम का प्रयोग पहली बार करते हुए न केवल एक कीर्तिमान रचा था, बल्कि पेंटिग का एक नया आयाम और नया माध्यम भी तलाश निकाला। चिमनी के धुएं से कुछ अमूर्त कुछ अर्धअमूर्त चित्रों को देखकर दर्शक हैरत में पड गये कि रंगों के स्थान पर चिमनी के धुएं से भी एक ऐसी रंगीली और कलात्मक सृष्टि जन्म ले सकती है, जो मानवीय भावनाओं से भरी, तथा जीवन की जटिलता और जकडनों से जूझती हुई मुक्ति की तलाश में न जाने कितनी मृगमरिचिकाओं को पार करती हुई जीवन की गति को जरा सी देर के लिए भी थमने ना देने की संकल्पवान ऊर्जा से भरी हो सकती है। धुंआ प्रदुषण करता है, यह सब जानते है, परंतु वह कला का विभुषण भी बन सकता है यह बात प्रियेश दत्त मालवीय ने साबित करते हुए ' जकड़न से मुक्ति ' शीर्षक में अनेक उपशीर्षकों के द्वारा अपनी पेंटिंग की नायाब कला का प्रदर्शन किया। प्रदर्शनी का उद्घाटन ख्यात कला साधक बी. प्रभा ने किया था। प्रदर्शनी में कुल इकतीस चित्रों का प्रदर्शन किया गया था, जिनके शीर्षक ही उनकी सारी अंतर्वस्तु को उद्घाटित कर देते हैं जैसे जकड़न, बोझ, प्लानिंग, युगल, माँ, थकान, मृगतृष्णा श्शहरी भागदौड़, आक्रोश, बवंडर, खूनी संघर्ष, जंगल, की आग, रात्रि में, आदिवासी नृत्य, प्रकृति, जल प्रपात, गहरी नदी, चक्रवात, गति, मस्तिष्क, उत्सव और मुक्ति इत्यादि।

धुएं के रंग और कला का स्पर्श

तुलसीदास ने कहा था, 'धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुराण मंजु मति सोई। अर्थात धुंआ कुसंगति से कालिख बन जाता है, वही सुसंगति पाकर मसि (स्याही) भी बन जाता है। जिससे पुराण लिखे जा सकते है। कला का स्पर्श चीजों की आंतरिकता को उघाड़ देता है। यदि भीतर जीवन का विद्रूप है, निराशा है, कुंठा है, विचारों का झंझावात है, और दमित इच्छाएं हैं, तो सिर्फयह उघाड़ना ही कला का उद्देश्य नहीं होता, उसकी आँख इन सबके पार अंर्तजगत का

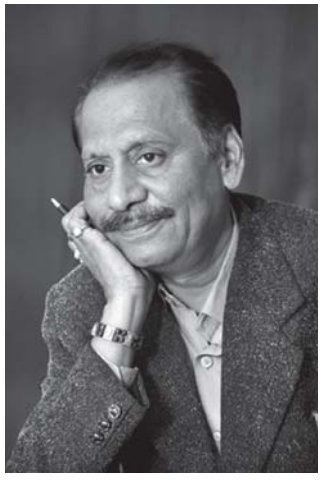

वह क्षितिज भी तलाशती है, जहां सारे प्रलयों के बाद भी हरे अंकुरों का अंकुराना खत्म नहीं होता। जिंदगी यहां थमती नहीं। हेमिग्वे कहा करते थे कि मुनष्य को मिटाया तो जा सकता है पर हराया नहीं जा सकता। मानवीय हृदय की वही उदभटजिजीविषा सारी विद्रुपताओं के पार देखने में कला के संयोजन से बहुत गहरे तल तक सफल होती है। जीवन का सौंदर्य, उसकी परम स्वतंत्रता और मुक्ति में ही निहित है, शायद इसी की गहरी तलाश कला की छटपटाहट में होती है।

ट्रेन और चूल्हे का धुंआ

प्रियेश कहते हैं'' जब मैं छोटा था, हमारा परिवार बीड़ नाम के छोटे से गांव में रहता था। माँ चूल्हे पर रोटियां सेकती थी, और चूल्हे से निकलता धुंआ छत की ओर बढ़ता जाता था। मेरा बाल मन उस धुएं की लकीर में विविध आकृतियां देखता था, उन्हें देखना भर मन को इतना भाता था कि उसमें मेरी कल्पनाएं कब जुड़ने लगी इसका पता भी न चला। फिर उन दिनों भाप से चलने वाली ट्रेनों का ही चलन था, ट्रेन का उड़ता हुआ धुआसंजोने की पहली-पहली बाल कोशिश आगे चलकर मेरी कला का माध्यम बन जाएगी यह तब सोचा भी न होगा। वह बताते हैं कि – ' मुझे स्याही के काले रंग ने ज्यादा प्रभावित किया है। मैं अपने विचारों को काले सफेद माध्यम में सहजता से अभिव्यक्त कर लेता हूं,। चारकोल मेरे लिए कोयला

मात्र नहीं हीरा है। यह मेरी जिंदगी है इसी माध्यम से स्वप्न, जीवन मरण, प्रकृति व मानवीय संबंधो एवं उनकी संवेदनाओं को अपने तरीके से अभिव्यक्त करता रहता हूं।

प्रियेश कूची के स्थान पर चिमनी का इस्तेमाल करते है। इस प्रक्रिया में केनवास को ऊपर रखना होता है, तथा नीचे लेटकर उस केनवास को पैरों से थामकर चिमनी की सहायता से वांछित आकृति गढ़नी पड़ती है। जरा सी असावधानी केनवास को जला सकती है। अधिक देर तक लगातार यह कार्य करना कठिन होता है, इसलिए थोड़ी-थोड़ी देर प्रतिदिन काम करके एक पेंटिंग बनाने में काफी समय लग जाता है। इस आकृति को स्थाई बनाने के लिए प्रियेश ने कुछ रासायनिक प्रयोग भी किये है। रंगों का प्रयोग अल्प से अल्प तथा अपरिहार्य स्थिति में ही किया गया है। वह बताते हैं कि – ' मैंने धुएंकी पारदर्शिता में से प्रकृति को देखा समझा और केनवास पर उतारा ।

जकड़न और बोझ की अनुभूतियां

अपनी कृतियों के पीछे प्रियेश का अपना एक दर्शन है। यह महसूस करते हैं, कि मनुष्य जकड़ा हुआ जी रहा है। इसी अनुभूति से उन्मुक्तता और मुक्ति की गहरी तलाश उनके भीतर गहराती चलती है। आदमी की जकड़न के बहुत सारे आयाम है। उसकी जकड़न दैहिक कम मानसिक अधिक है। 'विचारों में जकड़ा हुआ मन' में एक अमूर्त चित्र को धुएं से रच कर वह अपरोक्ष रूप से कार्बन द्वारा रची हुई इस सृष्टि का आत्यंतिक सत्य भी उद्घाटित करते हैं। 'जकड़न ' शीर्षक से बनी इस पेंटिंग में मानवीय जकड़न के विविध स्वरूपों में हम 'ट्विस्ट ' के उन सारे रूपों को देखते हैं जो वस्तुगत लच्छे से, या दैहिक ऐंठन से अनचाही दिशाओं में मुड़ गयी है।

कहावत है, कि ' रस्सी जल जाती है पर उसका बल नहीं जाता। ' यह ऐंठन की या जकड़न की अकूत ताकत का भी उदाहरण है। यदि मानवीय मन में विचारों की ट्विस्ट, या ऐंठन पड़ जाये तो मनुष्य के जीवन का सारा मूल स्वरूप ही विकृत हो जाता है। इस संकल्पना की सृष्टि से जकड़न को चित्र का विषय बनाना नितांत मौलिक ढंग से मन की यात्रा पर निकल पड़ना है।

हमारा मन विचारों से भरा होता है। उसमें अंतर्द्वंद्व होते हैं। विचार विमर्श के गहरे से गहरे झंझावात आते हैं। भावनाओं की उदात्त और संकीर्ण उड़ाने और थकानें चलती हैं। ' जकडन ' पेंटिंग में जहां प्रियेश ने आक्टोपस की आकृति का सहारा लिया है, वहीं सूरज का एक हिस्सा नीले जहर में डूबा हुआ दिखाकर कर गहरी कल्पना शक्ति का भी उपयोग अपने बिंब विधान में किया है। जीवन की कठोरता जन्य जकड़न को विविध ढंग से वह मनोवैज्ञानिक एवं कलात्मक अभिव्यक्ति देने में खूब सफल भी हुए है।

अपने-अपने बोझ

'बोझ ' उपशीर्षक की धुंआकृतियों में वे एक स्थूल सत्य को आंतरिक अनुभूति में बदल देने का भी अनोखा प्रयोग करते है। बोझ ही जकड़न का मूल है । परिवार को चलाने में सदस्यों को एक दूसरे को सहारा देना होता है। बच्चे का बोझ माँ पर एवं पत्नी, बच्चे की जवाबदेही पति/पिता पर रहती है। जहां मानवीय जिंदगी अपनी गहन विडम्बनाओं से भरी हो वहां जवाबदेही धीरे धीरे मस्तिष्क में चिंता जनित बोझ को जन्म देती है। इसी मानवीय मस्तिष्क की भावनात्मक परिणिती जिस बोझ मे बदल जाती है, उसे उनके बोझ शीर्षक धुंआकृतियों में अपनी पूरी मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति मिलती है। इस जकड़न भरी जिंदगी के बोझ से मुक्ति का मार्ग प्रियेश जब कला के माध्यम से तलाशते हैं तो उसके लिए वह संबंधों की गर्माहट को एवं प्रेम की ऊर्जा को माध्यम बनाते है। वह यह भी दिखाते हैं कि जकड़न किस रास्ते से गुजर कर मुक्ति का मार्ग पाती है। इस जकड़न से मुक्ति का मार्ग प्रियेश जब कला के माध्यम से तलाशते हैं तो उसके लिए वह संबंधों की गर्माहट और प्रेम को ऊर्जा का माध्यम बनाते हैं।

तूफान और मृगतृष्णा

अमूर्त बिंबों में मन के गहरे भावों को अभिव्यक्त होने के लिए पर्याप्त आकाश मिल जाता है, यही कारण है, कि गहन अनुभूतियों का अमूर्त रूपक कल्पना और कला के साथ संगम करते हुए रंगों और रेखाओं के सहारे अधिक स्पष्ट होने लगता है। प्रियेश इस सुविधा का पूरा पूरा उपयोग करते हैं। तूफान मानवीय हृदय में भावनात्मक उद्वेलनों की अभिव्यक्ति का एक अच्छा प्रतीक बना है। शेक्सपीयर ने टेंपेस्ट में नाट्य माध्यम से तूफान का गहरा मूर्तिकरण किया था। प्रियेश की कृति तूफान को मन का आईना कहा जा सकता है। एक अन्य कृति मृगतृष्णा में वे मनुष्य की गहन हताशा, बवंडर

और उसके चक्रवातों में घिरे होने की दशा का चित्रण करते हैं। संघर्ष धीरे धीरे खूनी संघर्ष से बदलने लगता है। मन क्रांति की पृष्ठभूमि पर पहुंचने लगता है। यहां जंगल में आग लगी हुई है। हाहाकार है। पानी की दो बूंद तक न पा सकने की निष्फल दौड़ से जन्मा आक्रोश है। अपने बिंब विधान के बारे में प्रियेश का कथन है कि– ' बिंब अस्तित्व की पहचान है। बिंब के चारों तरफकला स्वयं उत्पत्ति के लिए मंडराती है और प्रतिबिंब के रूप में इमेजेस पैदा करती है। कला मुझे जीवन के हर रंग रूप से प्रेम करने योग्य बनाती है, इसलिए कला मेरे जीवन का अपरिहार्य अंग है। इन बिंबो के माध्यम से जीवन के खुरदुरे यथार्थ से उपजी अपनी अनुभूतियों को शिद्दत के साथ महसूस कर अभिव्यक्ति देना ही कला सृजन का प्रस्थान बिंदु है।

इस जकड़न से मुक्ति का मार्ग प्रियेश जब कला के माध्यम से तलाशते हैं तो उसके लिए वह संबंधों की गर्माहट की ऊर्जा को माध्यम बनाते है। उनकी एक कृति ' थकान ' मनुष्य की उदासी का रंग उभारती हुई हमारी संवेदनाओं को झकझोर देती है।

भविष्य पर दृष्टि

प्रियेश की एक पेंटिंग में माँ बेटे हैं। कंधे पर शिशु को लेकर राह से गुजरती हुई एक स्त्री है। किसी की फब्ती पर वह पीछे पलट कर देखती है, परंतु प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करती। स्त्री की दृष्टि बच्चे के भविष्य पर है। उसे प्रतिक्रियावाद में उलझ कर अपनी शक्ति नष्ट नहीं करनी है। उसके पास व्यर्थ विवाद में खर्च करने को समय नहीं है। वह फब्ती को सुनती है, फब्ती कौन करता है, उसे जानती है, पर ये फब्ती उसे आगे बढ़ने से रोक नहीं पाती। प्रगति का संकल्प और भविष्य पर दृष्टि इसका स्पष्ट संदेश देती यह कृति महत्वपूर्ण बन पड़ी है। इसी के साथ एक कृति 'शून्य ' में वे उस अर्थपूर्ण खामोशी का भी चित्रण करते हैं।

सूरज के आगे निकल जाना है

कुछ प्रकृति के बिंबों के बीच से गुजरते हुए प्रियेश हमें उस महत्वपूर्ण मोड़ पर लाते हैं जहां गति का बल दिखाया गया है। एक भागते हुए घोड़े की राह में एक बड़ी खंदक आ गयी है। परंतु पलभर भी रूके बिना वह अपना पूरा शरीर खींच कर छलांग भरता है। बाधा से पार जाने की संकल्पना के साथ घोड़े के शरीर का लंबा होना और उस पर आए हुए बल अपनी कथा खुद कहते हैं। बिना गति को कम किये आगे बढ़ सके तो बाधाएं हमारी गति को नहीं तोड़ सकती। तब आदमी सूरज से आगे निकल जाता है। मुक्ति का दर्शन गति के माध्यम से तलाशता, कर्म सिद्वांत की गीताई और कला के विषयों का मेल करता हुआ कलाकार एक कलात्मक दर्शन गढ़ता चलता है जिसके परिणाम स्वरूप जीवन और प्रकृति का संपूर्ण आनंद लिया जा सकता है। प्रियेश की धुंआकृतियों में ग्राम, ग्राम्य जीवन, नृत्य, शहर की भागदौड़, मनुष्य के मस्तिक में विचारों का जाल और फिर एक धधकती हुई आग का भी चित्रण है। मुक्ति की संकल्पना में जीवन की सक्रियता को जोड़कर जो बुद्वि का उदय वह दिखाते हैं, वह उनकी गहरी वैचारिकता का भी परिचायक है।

मरने से पहले पैदा होना चाहता हूँ

प्रियेश दत्त मालवीय काष्ठ शिल्प, रेखांकन और कांक्रीट में भी कई प्रयोग कर चुके हैं। धुएं को कला का माध्यम बनाने वाले वे अनूठे बिंबकार हैं। अपने प्रयोगों के बारे में वे कहते हैं – ''मैं मरने से पहले पैदा होना चाहता हूं। यदि हम मर गये और याद रखने योग्य कुछ हम नहीं दे सके, तो इसका अर्थ यह होगा कि हम पैदा ही नहीं हुए थे। उनका भाव नाम की अमरता पैदा करना नहीं, इस दुनिया में आकर कुछ अपना अवदान देना भर हैं।'' शायद हर कलाकार की भी यही इच्छा होती है।

एक बार महारानी एलिजाबेथ ने एक अलग संदर्भ में सर वाल्टर रेले से कहा था कि – 'मैंने बहुत से लोगों को देखा है जिन्होनें अपने स्वर्ण को धुआं कर डाला था, पर तुम पहले व्यक्ति हो जिसने धुएं को सोना बना दिया हैं।' यह बात कुछ सीमा तक प्रियेश दत्त मालवीय पर भी लागू होती है।

एक अगस्त 1956 को खण्डवा में जन्में प्रियेश अनेक पुरस्कारों एवं सम्मानों से विभूषित हैं। उनकी कला प्रदर्शिनियों ने देश भर की कला वीथिकाओं में सराहना पायी है। उनका वर्तमान पता है –एच. 43, आधार शिला, भेल, पोस्ट पिपलानी, भोपाल, (म.प्र.)

– 18. सौमित्र नगर, खण्डवा, मोबा. 09425342665

आलेख

विश्व में अनूठी लोकनृत्यों की अनुपम, अजूबी और आध्यात्मिक छवियां

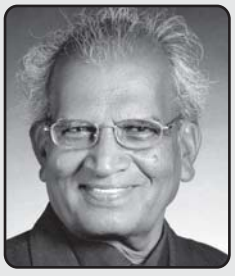

डॉ. महेन्द्र भानावत

राजस्थान कई दृष्टियों से देश के अन्य प्रांतों से अनुपम और अजूबा है। प्रसंग चाहे भूगोल या इतिहास का हो अथवा शक्ति और भक्ति का या फिर कला तथा संस्कृति का, राजस्थान का कोई सानी नहीं। लोकरंगों की जितनी विविधावलियां यहां देखने को मिलेंगी उतनी अन्य किसी प्रांत में शायद ही मिलें। लोकनृत्यों की भी यही स्थिति है।

भारत में प्रचलित लोकनृत्यों का ही अध्ययन करें तो लगेगा कि यहां के लोकनृत्यों की जैसी अनुपम छवियां हैं वे अपने में बेमेल हैं। बहुत से नृत्य तो बड़े ही अजूबे हैं जो अन्यों के लिए मुश्किल हैं। ऐसे नृत्य भी कम नहीं हैं जो धार्मिक अनुष्ठानों तथा अध्यात्म से सम्बन्धित होकर देवाराधना तथा तंत्रसिद्धि के सकारात्मक पक्ष के उज्ज्वल आराधक हैं। उनकी शक्ति की तो परिकल्पना ही मुश्किल है।

लोक में प्रचलित इस विपुल और विविध पक्षीय अकूत संपदा का अध्ययन एवं अन्वेषण करने से पूर्व हमें लोक और उसकी श्रुति को ठीक से समझना होगा। यह श्रुति चिर पुरातन है तो चिर नूतन भी, इसलिए यह शाश्वत भी है। इस बारीकी एवं गहराई को भी हमें समझना होगा कि हम भारतीय मनीषा को भारतीयता की आंख-पांख से देखें। पराई विदेशी दृष्टि से देखने की हमारी मानसिकता ने अर्थ का अनर्थ ही अधिक किया है। इससे हमारी शब्द-शक्ति का बड़ा क्षरण हुआ है।

यह लोक वाचिक-परम्परा का महत्त्वपूर्ण सेतु है। वाचिक-परम्परा श्रव्य-परम्परा है। इसमें सब कुछ कहन, कथन होता है। यह लोक उस पूरे लोक का समूह है जो इन्द्रिय गोचर है। जो कुछ देखा, सुना, चखा, सूंघा और छुआ जा सकता है वह सब इस लोक में सन्निहित है लेकिन यही नहीं, लोक तो और भी है- पराशक्ति, आलौकिक, रहस्यमय, अबूझ और अज्ञेय का। यह लोक भी इसी लोक का हिस्सा है। मनुष्य इसके केन्द्र में है। मध्य में है। माध्यम है क्योंकि वही विशिष्ट, महत्त्वपूर्ण और चेतनशील प्राणी है जो पांचों इन्द्रियों का धारक भी है।

जीवन-व्यवहार में ही नहीं, अपितु साहित्य, संस्कृति, कला, स्थापत्य तथा प्रकृति-कृति में भी राजस्थान के अनेकानेक रंग

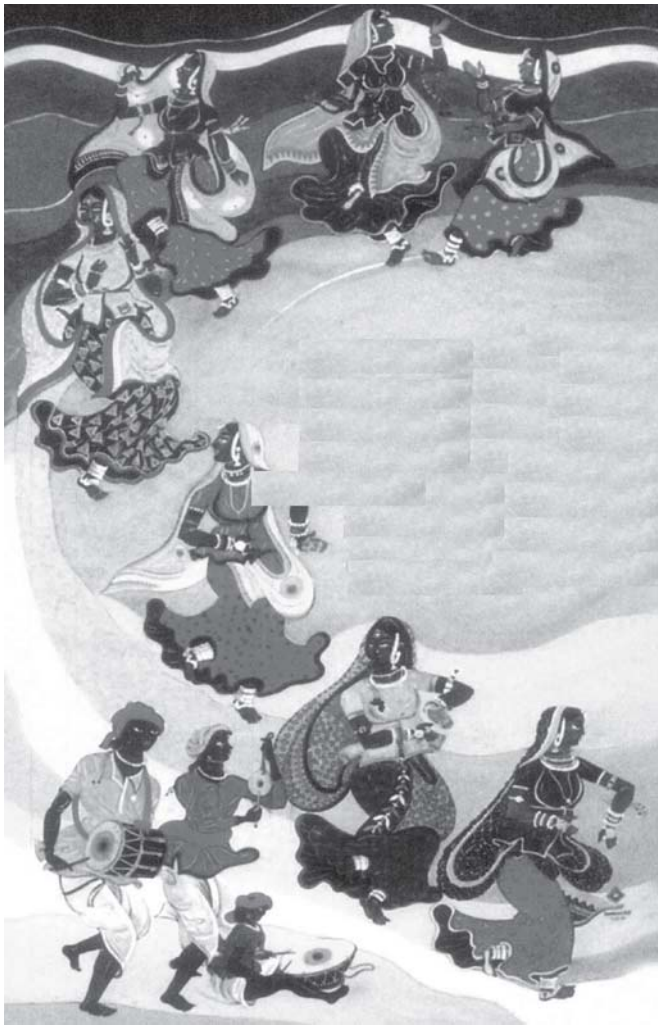

रूपायित हैं। इन रंगों की अनेक चासनियां विविध कथा-किस्सों, बात-बोलों, कहावत-मुहावरों, खेल-तमाशों तथा शिल्पगत संस्कारों द्वारा इन्द्रधनुषी लय-जयकारों में देखने को मिलती हैं। सर्वाधिक सांस्कृतिक रंगों की मोहक मधुरिम छटाओं का सौंदर्य

देखना हो तो अनगिनत कथाएं अपने श्रवण, चक्षुण एवं पठन के पायदान पर मुलकाती मिलती हैं।

ऐसे अनेक गीतों के माध्यम से गायकों, गाथाओं के माध्यम से गावेरियो तथा कथाओं के माध्यम से कथक्कड़ों ने उन चरित्रों को जीवित रखा जिन्होंने समाज तथा मानव हित के लिए अपना उत्सर्ग कर दिया। उनमें से कई इतिहास के पन्नों पर चढ़े ख्यात बने हुए हैं। कई कण्ठासीन बने युगयुगीन जीवंतता के बोधक हैं तो कई कहावतों तथा मुहावरों के माध्यम से मानवीय मूल्यों तथा नैतिकता के मापदण्डों के प्रतीक बने हुए हैं। अतीत के ये चरित्र हमारी जीवनधर्मिता के साथ आज भी उतने ही प्रासंगिक बनकर विकसित कहे जाने वाले समाज के लिए प्रेरणा के स्त्रोत बने हुए हैं।

राजस्थान में ऐसे वीरवरों को याद रखते हुए उन्हें मान-सम्मान सूचक रंग देने की परम्परा है। परम्परा की इस कड़ी में राम-लक्ष्मण से लेकर वर्तमान काल तक के परमवीर पीरनसिंह शेखावत जैसे वीरों का श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाता है। यथा-

रंग रामा, रंग लिछमणा, रंग दशरथ रै कंवरांह।
लंका लूटी सोवणी, आलीजा भंवराह।।
टीथवाल री घाटियां, विकट पहाड़ां बंक।
शेखे किये अद्भुत सफर, रंग पीरुसी रंग।।

आजादी के बाद प्रथम प्रधामंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने पूरे देश का भ्रमण कर उसके विविध अंचलों में बस रहे लोगों की कला-परम्पराओं, मन-बहलाव की बहुरंगी चेतनाओं तथा जीवनयापन से जुड़े हर्षोल्लासजनित सांस्कृतिक संस्कारों को निहार कर पाया कि यहां के लोकनृत्य सर्वाधिक छवि लिये हैं जो समग्र रूप से भारतीयता की गहरी तथा ठेठ जीवन के मूल स्त्रोतों के रक्षक बने हुए हैं।

इस दृष्टि से राजस्थान उन्हें सर्वाधिक रंगीन प्रदेश लगा और प्रेरणा हुई भारतीय की असल आत्मा का यदि एकसाथ दिग्दर्शन करना हो तो लोकनृत्यों का एक ऐसा समारोह आयोजित किया जाना चाहिये जिसमें विविध प्रांतों के लोकनृत्यों की झांकियों द्वारा भारत के जनजीवन की मूल आत्मा के स्वरूप का दरसाव हो और उसके माध्यम से देश की अमूल्य कलानिधि का संरक्षण हो जिससे लोगों को यह लगे कि यह समृद्ध कला हमारी विरासत बनी रहे। कहीं ऐसा न हो कि हमारे देखते-देखते हमारे हाथों से यह विलुप्त हो जाय। यही सोचकर उन्होंने गणराज्य दिवस पर सर्वप्रथम 1953 में राजधानी दिल्ली में लोकनृत्य समारोह का शुभारंभ किया।

वाचिक-परम्परा का उल्लेखनीय पक्ष सम्प्रेषण है। यह सम्प्रेषण मात्र भाषा का ही नहीं, हाव-भावों का, इशारों का, चेष्टाओं का, नकल का, व्यक्त का, अव्यक्त का, मौन का, हंसी का, रूदन का, चीख का, चिल्लाहट का, गर्जन का, क्रन्दन का, विषाद का, संकेत का, समझ और साहचर्य आदि का भी हो सकता है। भाषा के पूर्व का माध्यम तो संकेत ही था जो मनुष्य के साथ आदिमकाल से ही चला आ रहा है। नृत्य इसका प्रबल और सशक्त माध्यम कहा जा सकता है।

राजा-महाराजाओं के संरक्षण और जजमानी प्रथा के कारण यहां बहुत से नृत्य फले-फूले और अपनी पहचान बनाये रह सके। धर्म के विभिन्न तानोंबानों और सम्प्रदायों की मान्यताओं ने भी यहां के लोकनृत्यों पर अपना जबर्दस्त प्रभाव छोड़ा। मेलोंठेलों, उत्सवों और यात्रा-संघों ने भी इसमें नई स्फूर्ति और जोश जगाया। जीविकोपार्जन के साधन बनने के कारण नृत्यों की भावभूमि ने तदनुरूप रंग बनाये रखा।

आजादी के पहले और उसके बाद की स्थितियों में बड़ा अंतर आया है। इसके फलस्वरूप बहुत से लोकनृत्यों के रूप-स्वरूप में परिवर्तन हुआ है। कुछ की पहचान धूमिल हुई है तो कुछ अनजाने रहे अब अधिक जानने लगे हैं। जो अपने ही अंचल तक सीमित थे उनको अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज मिला है। कुछ जिस नाम से पहले चर्चित थे, अब उससे भिन्न नाम लिये हैं। ऐसा भी हुआ है जब जो नृत्य जिस जाति में प्रचलित रहा उसी जाति के नाम से उसकी प्रसिद्धि बन गई। ऐसे नृत्य भी हैं जो नृत्य की किसी खास सीमा में नहीं आने पर भी जनता जनार्दन में नृत्य के रूप में उनकी प्रतिष्ठा है।

संगीत के घराने की तरह लोकनृत्यों के घराने जैसी परम्परा देखने को नहीं मिलती। अलबत्ता पेशेवर कलाकार और आम आदमी के लोकनृत्यों में अवश्य भिन्नता देखने को मिलती है। पेशेवर कलाकारों के लोकनृत्य अधिक सधे हुए और दर्शकों की मनस्थिति के अनुरूप परिस्थितिजन्य अभिव्यक्ति लिये होते हैं। देहाती और शहरी लोकनृत्यों में भी भिन्नता के दर्शन होते हैं। देहाती लोकनृत्य अपनी परम्परा की पैठ लिये अति सरल और सहजभावी होते हैं जबकि शहरी लोकनृत्यों में रूपान्तरित भावभूमि और वातावरणीय तडक-भडक की प्रधानता देखने को मिलती है।

संक्षेप में प्रकृति एवं स्वरूप की दृष्टि से लोकनृत्यों का विभाजन निम्नानुसार किया जा सकता है-

(1) वृत्ताकार नृत्य
(2) कतारबद्ध नृत्य
(3) जुलूस नृत्य

लोक की गहन अनुभूति और समझ रखने वाले शास्त्रकारों और सूत्रविज्ञों ने इसका खुलासा करते हुए जैन आगम सूत्र स्थानांग के चतुर्थ स्थान में चार प्रकार के नृत्यों का उल्लेख किया है। ये नृत्य लोकजीवन में प्रचलित नृत्य-रूप ही हैं। यथा-

(1) ठहर-ठहरकर नाचे जाने वाले नृत्य

(2) संगीत के साथ नाचे जाने वाले नृत्य

(3) संकेतों द्वारा भाव प्रकट करने वाले नृत्य

(4) झुककर अथवा लेटकर किये जाने वाले नृत्य

शास्त्रों में पंचतत्व- पृथ्वी, आकाश, वायु, जल और अग्नि का सम्बन्ध भी नृत्यों से जोड़ा गया है। राजस्थान के घूमर नृत्य में पृथ्वी विभाव की गतियों का उल्लेख करते हुए डॉ. जयचन्द्र शर्मा ने ग्यारह कलामान गिनाये हैं। यथा-

(1) एक ही स्थान पर घूमने को भ्रमर गति

(2) आगे-पीछे, दांये-बांये नृत्य का विस्तार करने को विस्तारिणी

(3) पूरे रंगमंच का चक्कर लगाने को भ्रमणी

(4) शरीर को पूरी तरह सीधा रख नृत्य करने को शिखरणी

(5) अंग-प्रत्यंगों के संचालन की स्वाभाविक क्रिया को शान्ता

(6) गर्दन एवं नेत्रों का लयबद्ध संचालन सलिला

(7) कमर की लचक के साथ नाचने को सुजला

(8) प्रत्येक भाव को घुमाव के साथ प्रस्तुत करने को रत्ना

(9) तीव्र गति से घूमने और द्रुत गति से अंग-प्रत्यंगों का संचालन करने को नाशिनी

(10) घूंघट के भावों को प्रस्तुत करने को गृहिणी

(11) घाघरे के दोनों कोनों को पकड़ नृत्य करने की मुद्रा को पालनी अथवा मयूरी कहा गया है।

नृत्य जब थिरकता है तो संगीत की मनचली चलती है। उस हाव और भाव में ही संगीत की सहचरी सरहराती है। फसलें लहलहाती हैं तो हवा सर्र फर्र संगीत का राग देती हैं। आकाश गरजता है तो बीजली के बोल अलापते हैं। मयूर नाचता है तो मेहा झरमर-झरमर टप्पे देता है।

लोकनृत्य लोकजीवन को सर्वाधिक रंगीन और रसपूर्ण बनाते हैं। इनके साथ गीत से भी अधिक संगीत का निनाद महत्वपूर्ण है जिसके बूते कोई नृत्य गति, लय, थिरकन एवं अंग पकड़ता है। संगीत और नृत्य का सम्बन्ध हल-बैल की तरह है किन्तु जब ये चरम अवस्था लिये होते हैं तब इनका स्पर्धाभाव एक भिन्न लोक की सृष्टि करता पाया जाता है। इनकी शक्ति पानी, अग्नि तथा वायु की ताकत से भी सवाई कही गई है। जब ये असीम हो जाते हैं तब नृत्य-संगीत ही इन्हें वशीभूत कर सकता है। इसलिए शास्त्र उतना महिमावान नहीं है जितना लोक। लोक का आलोक ही किसी शास्त्र को दीप्त करता है। लोक माटी का वह दीया है जो तेल-बाती से प्रकाशित होता है जबकि शास्त्र बल्ब और बिजली के जोड़ से रोशनी करता है।

लगभग छठी सदी में लिखित 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' के 'नृत्त सूत्र' में नृत्य के सम्पूर्ण संहिता-ज्ञान को लोकहित के उद्देश्य से परिकल्पित किया गया है। प्रारम्भ से ही लोक में नर्तन की परम्परा के जिन उद्देश्यों को, लक्ष्यों को देखा गया था वे हैं-

(1) देवताओं की आराधना करना व इच्छित फल प्राप्ति। (2) नृत्य से मोक्ष की प्राप्ति। (3) नृत्य से धन्य, यश, आयुष्य व स्वर्ग की प्राप्ति। (4) देवताओं का विलास करना। (5) आर्तजनों का दुरूख विनाश करना। (6) मूढजनों को उपदेश देना। (7) स्त्रियों के सौभाग्य का वर्द्धन। (8) शांति-कर्म, पुष्टि-कर्म व काम्य-कर्म की सिद्धि।

लोकनृत्यों पर अध्ययन करने की समझ के आज हमारे पास कई पैमाने, आधार, औजार एवं पारिस्थितिकी प्रबन्ध हैं। ऐसे अध्ययन और अन्वेषण आवश्यक हो गये हैं किन्तु कई बार वे उनके मूल को नहीं पकड़ पाते। मेरे अध्ययन की दृष्टि उनके मूल सत्व एवं सरोकार पर अधिक केन्द्रित रही है। यह आवश्यक भी है कारण कि कई बार आंचलिक संस्कृति को समझने के लिये वहाँ की शब्दावली का बोध नहीं होने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

उदाहरण के लिये रेगिस्तान के लंगा गायक जब अपने स्वर माधुर्य में लीन हो ठुमक पड़ते हैं तब विदेश में उनका ठुमकना नृत्य नाम धारण किये 'लंगा नृत्य' बन जाता है लेकिन लंगा - अर्थ से अनभिज्ञ होने के कारण उसका अर्थ लहँगा (घाघरा, कटि के नीचे का पहनावा विशेष) होता हुआ उसे 'पेटीकोट डांस' बना दिया जाता है।

इसी प्रकार बालिकाओं द्वारा श्राद्धपक्ष में दीवाल पर गोबर- फूलों से सज्जित सांझी के गीत की एक पंक्ति है - 'अतल-पतल की तोरमी।' तोरमी का अर्थ तुरई से है पर अतल-पतल को जानकारी के अभाव में निरर्थक शब्दावली माना जाता है जैसे बच्चों के गीतों में प्रयुक्त कई शब्द होते हैं पर गहराई से चिंतन करने पर अतल-पतल हमारे पल्ले पड़ सकता है।

हमारे यहाँ सात तल जिन्हें लोक भी कहते हैं, प्रसिद्ध हैं। उनमें पहला अतल तथा आखिरी पतल है - अतल, सुतल, वितल,

तलातल, महातल, रसातल एवं पाताल। गीत-पंक्ति में अतल की तुक में पाताल भी पतल हो गया है। ऐसा होने से वह अधिक लयात्मक, गत्यात्मक तथा सौंदर्यनिष्ठ भी बन गया है। बालिकाओं के सरल मन एवं सहज स्वर-माधुर्य में अतल की संगत में शोभित होने के लिए पाताल को पतल ही होना। था।

लोकनृत्य ही क्यों य लोक का कोई अध्ययन कभी पूर्ण नहीं होता। वह जितना-जितना पूर्ण हुआ लगता है उतना-उतना अपूर्ण हुआ जाता है। हमारे खोज के पग जितनी डंडियाँ नापेंगे उतनी ही अधिक पगतलियाँ हमारा मार्ग प्रशस्त करेंगी।

शरीर के विभिन्न अंगों एवं अवयवों द्वारा ताल एवं लयबद्ध अर्थपूर्ण गति-अभिव्यक्ति को नृत्य कहते हैं। केवल हाथ-पाँव हिलाना, भौंडी शक्ल बनाना अथवा उछलकूद करना नृत्य नहीं होता। इसके लिए जरूरी है कि विशिष्ट भाव, रस एवं व्यंजना की प्रतीती दर्शकों को हो। साथ ही नर्तक अपने मनोभावों का उल्लास के साथ प्रगटीकरण कर सके। इस .ष्टि से यदि देखा जाय तो हर व्यक्ति अपने भीतर एक नृत्यकार का मन लिये होता है।

सामान्यत: व्यक्ति के दो स्तर होते हैं। एक सहज एवं सरल व्यक्ति तथा दूसरा असहज एवं विशिष्ट व्यक्ति। सहज एवं सरल व्यक्ति का समाज ही लोकसमाज है। यह समाज लोकानुरंजन से भरपूर होता है। अपनी आवश्यकताओं एवं उम्मीदों में यह संतोषी होता है। यह परम्पराओं का पोषक, संस्कृति का संरक्षक, सामाजिक सरोकारों का हेतालु एवं धर्म-कर्म के प्रति आस्थावान होता है। लोकगीत, लोकनृत्य, लोकोत्सव, लोकानुरंजन इसी समाज की धरोहर होते हैं।

इसके अलावा एक समाज और है- जनजातीय समाज। इस समाज में तो नृत्य जैसे जीवन का ही अनिवार्य हिस्सा है। इसमें स्त्री-पुरुष मिलकर नाचते हैं एक घेरे में। पंक्तिबद्ध होकर भी नाचते हैं। स्त्री-पुरुष अलग-अलग पंक्तियों में भी नाचते हैं तब पंक्ति आमने-सामने होती है। मोटे रूप में तो लोकनृत्य समूह की ही धरोहर है। समूह में ही यह खिलता है, फबता है, खिलखिलाता है। गीत-संगीत के बिना नृत्य अलूणा है, कोरा है, एकाकी है, गुमसुम है। उसका मजा ही उन्मुक्त होकर गाने में है। संगत वाद्यों की ऊंची गूंज देती स्वर-लहरियों के साथ चौकड़ी भरने में है। तारों भरे आकाश सी चन्द्र-किरणें छिटकाने, मुस्कान बिखेरने, हास्य छोडने, मुलकने, मजा देने और लेने में है। घेरघुमेर धरती पर किलकारी द्वारा किल्लोल करने में है। पाँव थिरकाने से लेकर आँखें मटकाने तक जितनी भी क्रिया-प्रतिक्रियाएँ और घुंघरु की छन-छनन से लेकर ढोल के ढम-ढम के साथ जितनी भी अदाकारियाँ हो सकती हैं वे सब नृत्य को बहु-शोभित, बहु-रूपायित एवं बहु-रंगायित करती हैं।

अलग-अलग समाज, जातियों और समूहों के नृत्यों की प्र.ति एक जैसी लगती हुई भी भिन्न-भिन्न होती है। जिस समाज, जाति और समूह का नृत्य होगा उसमें उसकी परम्परा, जातिगत गुण, समूहगत जीवनाचार की छाप ठसक और अन्तर्गठन मिलेगा। एक दूसरे की अच्छाई, वैशिष्ट्य और गुणों का प्रभाव भी नृत्यकार ग्रहण करता है। यही कारण है कि एक नृत्य की प्रति-छाया दूसरे नृत्य में देखने को मिलती है। आदिवासियों के नृत्य प्रायरू एक जैसी चाल, रचना और छवि लिये दृष्टिगत होते हैं।

भारत राष्ट्र सचमुच अजूबा और वैविध्य भरा है। यहाँ जितने भी प्रांत हैं उन सबका अपना वैशिष्ट्य रहा है। सबके लोकानुरंजन और प्रदर्शन रंजन जुदा-जुदा हैं। लोकनृत्यों को ही लें तो उनमें जो विविधा-विविधता मिलेगी वही अचरज में डालनेवाली है। तब स्वाभाविक है, उन सबका एक जैसा वर्गीकरण भी संभव नहीं है। महाराष्ट्र के लोकनृत्यों के अध्ययन के दौरान मैंने पाया कि यहाँ एक ही नाम के लोकनृत्य का प्रचलन अलग-अलग वर्ग अथवा जातियों में है यद्यपि उसकी प्रदर्शनधर्मी कला के तत्व जुदा-जुदा हैं।

समय के बदलते परिवेश में लोकनृत्यों के पारम्परिक रूप-स्वरूप भी काफी बदले हैं। यह बदलाव समय की मांग और परिस्थिति की पकड़ से आया है। लोकधुनों की जगह सिनेमा के लोकप्रिय होते गीतों की धुनों ने ले ली है। पोशाक, सज्जा तथा कथ्य-विषय में भी बदलाव आया है।

कुछ लोकनृत्यों ने सरकारी प्रचारतंत्र के रूप में अपनी जगह बनाली है तो कुछ ने सरकार के उद्देश्यों के अनुरूप नृत्यों के माध्यम से गीति-रचना कर उद्देश्यपूर्ति में भागीदारी देना प्रारंभ कर दिया है। ऐसा कई प्रान्तों में हुआ है।

अब अध्ययन के तौरतरीकों में भी बड़ा बदलाव आया है। एक ही वस्तु को कई अंदाजों में जांचा परखा जाने लगा है फिर लोकनृत्य तो अपनेआप में ज्ञान-विज्ञान की कई धाराओं को समाविष्ट किये हैं। ऐसी स्थिति में समाजशास्त्र, नृतत्वशास्त्र, साहित्य, संस्कृति, संगीत, नृत्य, वेशभूषा, रंगमंच, साजसज्जा जैसे कई विषयों में इनका पैना अध्ययन-विश्लेषण किया जा सकता है। तुलनात्मक दृष्टि से भी इनका अध्ययन रुचिपूर्ण बन सकता है।

- 352, श्री कृष्णपुरा, सेंटपॉल स्कूल के पास, उदयपुर, राज. 313001,
मो.: 9351609040

■

आलेख

मेवाड़ में देवी अवधारणा और विरासत

डॉ. श्री कृष्ण 'जुगनू'

मेवाड़ में देवियों के रूप आदिम, लोक और शास्त्रीय तीनों प्रकार से मिलते हैं। यहां गृह देवी, ग्राम देवी, गढ़ देवी से लेकर नगर देवी तक की मान्यता है। कुलदेवी की मान्यता शास्त्र से भी प्रमाणित हुई हैं।

जब भी गवरी नृत्यानुष्ठान देखें –

उदयपुर अंचल में भादौ और आधे आसोज माह तक जिस गवरी नृत्यानुष्ठान का आनंद उठाया जा सकता है, उसे देवियों की लीला पीठिका के रूप में भी देखना चाहिए। कुछ बातें कहने की इच्छा है कि यह पूरा नृत्यानुष्ठान कई मिथक लिए हैं। इसी से मालूम होता है कि खेती और पेड-पौधों के फलित होने के कलैंडर की पहली जानकारी महिलाओं को ही मिली थी। यायावरी जीवन में आदमी को शिक्षित करने का श्रेय औरत को ही है। इसलिए मिस्र में भी यह मान्यता चली आई है कि ओरतों ने दुनिया को खेती करना सिखाया। गवरी की मूल कथा है –

धरती पर कोई पेड़ नहीं। छाया कहां मिलै। नौ लाख देवियां परेशान। एक उड्ते हुए सवा माणी के भौरे को देखा। पूछा कि जो पेड नहीं तो तू कहां से आया। तू तो फूलों का रसिक है। देवियों को उसने बहुत परेशान होकर बताया कि पाताल में राजा वासुकी बाडी में पेड हैं।

देवियां पाताल पहुंची। एक एक देवी ने एक एक पेड उखाडा। वासुकी ने हजार फन तानकर रास्ता रोक लिया। देवी अंबा ने गुरज उठाया, लगी फन काटने। नागिन ने सुहाग की रक्षा मांगी। देवियों ने पेड चाहे। वासुकी ने कहा, धरती के लोग बहुत प्रपंची है। पेडों पर कुल्हाडा चलाएंगे। देवी कहा, राजा जैसल की बाड़ी में रोपेंगे। राजा जैसल ही रक्षा करेगा। सर चला जाए तो भी पेड नही कटने देगा।

एक एक देवी पेड लेकर जमीं पर आई। देवियों का नाम भी इसी कारण हआ – पीपल लाने वाली पीपलाज माता, नीम लाने वाली नीमज माता, आम वाली अंबा याह आमज माता, खेर वाली खेमज माता, उमर वाली उमरा माता, बरगद वाली बडली माता। शाकंभरी, हिंगलाज, कूष्माण्डा .. सोचकर देखिये।

खमनोर गांव के पास, उनवास मं पहली बार देवियों ने बाडी लगाई। सारे पेडों के साथ ही बरगद रोपा। राजा ने घी-दूध से सींचा मगर आबू के भानिया जोगी की सवा लाख की फौज चढ आई। देवी अंबा परीक्षा लेने पहुंची। रानी मेंदला के समझाने पर भी राजा ने सर दे दिया, इस अहद के साथ कि सवा लाख मानवी मरेंगे तो कहीं कुल्हाडा चलेगा पेड पर... ।

भानिया ने कुल्हाडा चलाया। पहले वार में दूध की धारा बही, दूसरे में पानी की धारा फूटी और तीसरे में... प्रलय ही आ गया, लहू की धारा ने सारी धरती को लाल कर दिया। देवी ने कहा--- पेड बचे तो पृथ्वी बचेगी, पेड कटा तो प्राण घटेगा।..... कितना सार्थक है गवरी का देखना। बडलिया हिंदवा। गवरी का मूल खेल, अदभुत मेल, पेड ही प्राण हैं, पेड से ही जहान है... । (डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू – मंदिर श्री अंबामाताजी उदयपुर, पुस्तक 2002 में प्रकाशित मूल पाठ, मेरा चौमासा पत्रिका, भोपाल में प्रकाशित आलेख – वनवासियों का पेड पुराण बडलिया हिंदवा)

लोक नृत्य-नाट्य जिसका विसर्जन उत्सवमय है

मेवाड़ अंचल में होने वार्षिक लोकनृत्य-नाट्य 'गवरी' का श्राद्धपक्ष में समापन होता है। यहां बसे भील-गमेती आदिवासियों में गवरी का आयोजन अनुष्ठान की तरह किया जाता है। राखी के बाद इसका व्रत लिया जाता है। हमें याद रखना चाहिए कि गवरी तमाम नाटकप्रेमियों और सिने-रंगप्रेमियों के बीच एक ऐसा नाट्य अनुष्ठान है जिसके आयोजन के मूल में 'नांदी वचन' जैसी वह भावना विद्यमान है जो नाट्यशास्त्र में भरत मुनि करते हैं और संस्कृत के लगभग सभी नाटकों में लोक से ग्रहण की गई है-- ''समय पर वर्षा हो, पृथ्वी पर सुभिक्ष हो, गायें स्वस्थ हों और पयस्विनी होकर पर्याप्त दूध प्रदान करें। बहु-बेटियां प्रसन्न हों, निरोगी, चिरायु और समृद्धशाली हों। राज्य भयमुक्त हों।''

नाटक के आयोजन के मूल में यही भाव नाट्यशास्त्र के

रचयिता को अभिप्रेत रहा है। यह व्रत इसलिए है कि 40 दिन तक गवरी दल के सदस्य न हरी सब्जी खाते हैं न ही पांवों में जूते पहनते हैं। वे परिवार से पूरी तरह दूर रहते हैं और किसी देवालय में ही विश्राम करते हैं। न कमाने की चिंता न ही खाने का ख्याल। बाजों को जमीन पर नहीं रखा जाता। बाजा कंधे और बंद सब धंधे।

हां, जिस किसी भी गांव में गवरी नर्तन का व्रत लिया गया, वहां इन दिनों समापन के दो-दो उत्सव मनाए जा रहे हैं। घड़ावण और वलावण अर्थात् तैयारी और विसर्जन। घडावण के दिन खाट पर काली खोल चढ़ाकर हाथी बनाया जाता है और इंद्र की सवारी निकाली जाती है। विसर्जन के लिए गजवाहिनी पार्वती 'गौरजा माता' की मृण्मयी मूर्ति बनाई जाती है और उसको सजा-धजाकर गांव में सवारी निकाली जाती है। पूरे रास्ते पर गवरी के सभी मांजी पात्र - बूडियां, भोपा, दोनों राइयां, कुटकुटिया आदि खेलों को अंजाम देते चलते हैं और थाली के साथ मांदल (मर्दल, पखावज) बजते हैं=दींग-बिदिंग, दींग-बिदिंग।

इसके ख्याल वस्तुत: पर्यावरण की सुरक्षा का पाठ पढ़ाने वाले प्राचीनतम ख्याल है कि हर कीमत पर पेड़ बचने चाहिए। ब्रह्मवैवर्तपुराण के प्रकृतिखंड में, पद्मपुराण के सृष्टिखंड, कृषि पराशर, काश्यपीय कृषि पद्धति आदि में इस प्रकार की मान्यताओं को संजोया गया है मगर उनका उत्स लोक की ऐसी ही मान्यताओं में देखा जा सकता है।

कुल देवी : एक दृष्टि -

अपने प्रत्येक परिवार की कुल देवी है। कहा है -

वृक्षमूर्व्यां तथा वायौ व्योमे स्वर्गे च सर्वश:।
एवं विधा त्वियं देवी सदा पूज्या विजानता।
अप्येकं वेत्ति तो नाम धात्वर्थ निगमैर्नर:।
स दु:खैर्वर्ज्जित: सर्वै: सदा पापाद्विमुच्यते।।

(देवी पुराण 38, 100-102)

भारतीय परिवारों में कुल देवी की मान्यता लगभग वैसे ही रही है जैसे मिस्र में थी। ग्रीक परिवार भी कुल की रक्षा करने वाली शक्तियों में विश्वास करते थे। कुल देवियां हमारे घर - गुवाड़ के मूल द्वार की सूचक होती हैं। अधिकांश कुल देवियों के नाम ऐसे होते हैं, जो शास्त्रों में नहीं मिलते हैं।

उनके आहार, पानक, स्थान, स्थिति केवल लोक स्मृतियों के आधार पर होते हैं, क्यों? कहीं न कहीं इन देवियों के मूल जनजातीय होते हैं, कुछ प्रसंगों में शासकों के साथ विशेष रूप से देखने की जरूरत होती है, क्यों यह मान लिया गया है कि जो कुल देवी राजा की होगी, वही उनकी प्रजा की होगी।

शाक, अमिष जैसे आहार, भोग, नैवेद्य, उनके पूजन की सभी तिथियां भी बहुत कुछ कहती हैं, तीज तिथि का नाम ही गौरी तिथि हो गया।

देवियां वंश वल्लरी की मूल होती हैं, कभी माता से ही व्यक्ति को पहचाना जाता था, नामकरण मां के आधार पर ही होता था, देवताओं के नामकरण में भी इस मान्यता को मुहर लगाई गई है ... और उनके बारे में सबसे ज्यादा केवल कुल की वरिष्ठ महिलाएं ही जानती हैं।

बुन्देलखण्ड के भित्तिचित्र

लेखक : नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

प्रकाशन वर्ष : 2021
मूल्य : 1200/-
प्रकाशक : आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद् का प्रकाशन
मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय,
श्यामला, हिल्स, भोपाल, म.प्र. (भारत)
फोन : 0755- 2661640, 2661948

संस्मरण

बिंदास जीवन जीने वाले पंडित किशन महाराज

जगदीश कौशल

तबलावादन की अपनी विशिष्ठ शैली के लिए विख्यात पंडित किशन महाराज से मेरी पहली मुलाकात माह दिसम्बर 1967 में हुई थी। तब वह अपनी दूसरी पत्नी सुप्रसिद्ध सितार वादक सविता देवी के साथ रीवा पधारे थे। विन्ध्य संगीत समाज रीवा द्वारा आयोजित अखिल भारतीय संगीत समारोह में दोनों ने एकल वादन और जुगल बन्दी के कार्यक्रम प्रस्तुत किए थे। मैं इस संस्था में प्रचार सचिव के पद पर था। अत: इन दोनों महान कलाकारों से मिलने, साक्षात्कार करने और फोटो शूट करने का सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ था।

मुलाकात के दौरान उन्होंने बताया कि कृष्ण जन्माष्टमी के दिन जन्म होने के कारण उनका नामकरण 'किशन' रखा गया। आपके पिताजी श्री हरि महाराज काशी के श्रेष्ठ तबलावादकों में गिने जाते थे। उनके बड़े भाई पं. कंठे महाराज के कोई सन्तान न होने के कारण उन्होंने किशन महाराज को गोद ले लिया था। पंडित कंठे महाराज से तबले की शिक्षा प्राप्त करके सन् 1944 में बम्बई चले गए थे। वहाँ पर विभिन्न संगीतकारों के साथ संगति की और कई फिल्मों में भी तबलावादन किया। लेकिन वहाँ उनका मन नहीं रमा और वह वापस अपने घर बनारस आ गए और तबलावादन की साधना करने लगे।

पंडित किशन महाराज की पहली शादी सन् 1947 में हुई थी। पहली पत्नी से तीन पुत्रियाँ और एक पुत्र पूरन महाराज हुए। आपकी दूसरी शादी उन दिनों की प्रसिद्ध गायिका सिद्धेश्वरी देवी की कलाकार पुत्री सविता देवी के साथ हुई जिनसे दो पुत्र हुए किन्तु उनका यह संबंध स्थायी नहीं रह सका और सविता देवी दिल्ली जाकर बस गईं।

पंडित किशन महाराज ने संगीत और सोलोवादन के क्षेत्र में देश-विदेश में अच्छी ख्याति प्राप्त की। आपने तबले की थाप की यात्रा शुरु करने के कुछ साल के अन्दर ही उस्ताद फैयाज़ खाँ, पंडित ओंकार ठाकुर, उस्ताद बड़े गुलाम अली खान, पंडित भीमसेन जोशी, पंडित रविशंकर, उस्ताद अली अकबर खाँ जैसे बड़े नामों के साथ संगत की। कई बार संगीत महफिलों में एकल तबलावादन भी किया। इतना ही नहीं नृत्य की दुनिया के महान हस्ताक्षर शंभु महाराज, सितारा देवी, नटराज गोपीकृष्ण और बिरजू महाराज के कार्यक्रमों में भी उन्होंने तबले पर संगत की। उन्होंने ऐडिन बर्ग और वर्ष 1965 में ब्रिटेन में कामनवेल्थ कला समारोह के अलावा कई अवसरों पर अपने कार्यक्रम प्रस्तुत कर ख्याति अर्जित की और देश की प्रतिष्ठा बढ़ाई।

बिंदास जीवन शैली

पंडित किशन महाराज का जिन्दगी जीने का अन्दाज बहुत ही बिंदास था। उन्होंने जिन्दगी को हमेशा ''आज'' के आइने में

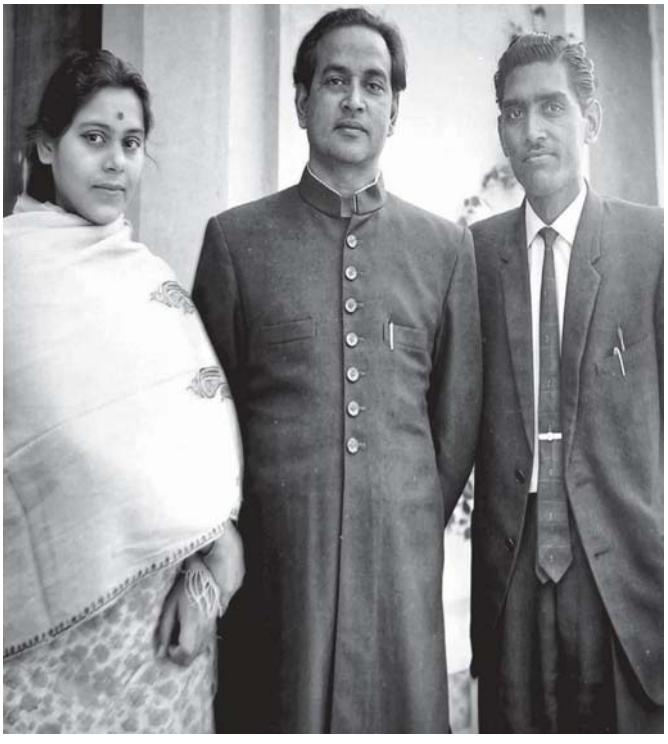

देखा और अपनी मर्जी के मुताबिक बिंदास जीवन जिया। लुंगी कुर्त्ता में पूरे मोहल्ले में टहलना, पान की दुकान पर मित्रों के साथ गप्प-लफाजी करना उनकी जिन्दगी का शगल बना रहा। मर्जी हुई तो भैरों सरदार को इक्के पर साथ बैठाया और घोड़ी को हांक दिया। तबियत में आया तो कायनेटिक हॉंडा में किक मारी और पूरे शहर का चक्कर मार आए।

दिन चर्या

उनकी दिन चर्या पूजापाठ, टहलना, रियाज करना, अपने शौक पूरे करना, मित्रों से गप्पे मारना, चौबीस घंटे हँसते-बोलते रहना यह सब उनकी जिन्दगी की आखिरी घड़ी तक चलता रहा। वह बड़ी बेवाकी से कहते थे कि मैं कोई उलझन या दुविधा नहीं पालता बल्कि उसे जल्दी से जल्दी दूर कर देता हूँ। ताकि ''ना रहे बाँस और ना बजे बाँसुरी''

कुछ साल पहले की एक घटना का उल्लेख करते हुए उन्होंने बताया कि शेविंग के दौरान मूँछें सेट करने में बहुत दिक़्कत आती थी। कभी एक तरफ की छोटी हो जाती थी तो कभी दूसरे तरफ की बड़ी हो जाती थी। जब बहुत दिक़्कत होने लगी तो झट से उन्हें पूरी तरह से साफ़ कर दिया। इसके बाद फिर कभी मूँछ रखने की जहमत नहीं उठाई। उनकी दिनचर्या बड़ी नियमित थी। प्रात: 6 बजे तक उठ जाते थे। बगीचे की सफाई कर चिड़ियों को दानापानी देकर सुबह टहलने निकल जाते थे। निर्धारित समय पर पूरी लगन निष्ठा के साथ एक तपस्वी की भाँति घन्टों तबला वादन का रियाज करते थे और अपने शिष्यों को भी प्रशिक्षित करते थे।

– स्तंभकार वरिष्ठ छायाकार हैं।
संपर्क: ई-3 /320, अरेरा कॉलोनी, भोपाल
मोबाइल: 9425393429

Ganesh Graphics

designing | printing | illustration | web services

OFFSET PRINTING
Books, Magazine, Brochure, Poster, Leaflet, CD/ DVD Cover, T-Shirt, Cap

DESIGNING
Logo, Books, Magazine, Brochure, Poster, Leaflet, CD/ DVD Cover

FLEX PRINTING
Flex Banner, Vinyl, Acrylic

ILLUSTRATION
Books, Magazine and other

Office Address
26-B, 1st Floor, Deshbandhu Parisar, Press Complex, M.P. Nagar, Zone-I,
Bhopal (M.P.) Ph.:0755-4940788, Mob.:9981984888 | e-mail: ganeshgroupbpl@gmail.com

छायाकार–जगदीश कौशल

समय की धरोहर

पंडित किशन महाराज

जन्म: 3 सितम्बर, 1923 **निधन: 4 मई, 2008**

बनारस घराने के सुविख्यात तबला वादक पंडित किशन महाराज ने अपनी विशिष्ट शैली के कारण तबला वादन कला को न केवल देश में अपितु विदेशों में भी सम्मानजनक स्थान दिलाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। तबला वादक के अलावा आप कुशल मूर्तिकार, चित्रकार, वीर रस के कवि और ज्योतिष शास्त्र के मर्मज्ञ भी थे।

तबलावादन में उल्लेखनीय योगदान के लिए पंडित किशन महाराज को अनेक सम्मानों से सम्मानित किया गया। इनमें वर्ष 1973 में पद्मश्री, वर्ष 2002 में पद्म विभूषण, वर्ष 1984 में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, प्रयाग संगीत समिति द्वारा ''संगीत सम्राट'' दीनानाथ मंगेशकर पुरस्कार, लाइफ टाइम अचीवमेन्ट सम्मान आदि अनेक सम्मान शामिल हैं।

जगदीश कौशल ने वर्ष 1967 में विन्ध्य संगीत समाज रीवा द्वारा आयोजित अखिल भारतीय संगीत समारोह में पंडित किशन महाराज जी द्वारा तबला वादन करते समय यह फोटो क्लिक किए गए थे।

डॉ. देवेन्द्र दीपक के जन्मदिन के अवसर पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन

आज वरिष्ठ साहित्यकार श्रद्धेय देवेन्द्र दीपक जी का जन्मदिन है। आपकी कलम ने सदैव उस वर्ग की आवाज को बुलंद किया, जो हांसिये पर था। आपका सान्निध्य सदैव सुख देता है।

आपके जन्मदिन के अवसर पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसमें आपके कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर विद्वानों ने अपने विचार रखे...

डॉ. देवेंद्र दीपक के साहित्य में सूक्तियों की भरमार है। इन सूक्तियों में जीवन-दर्शन छिपा हुआ है। इनपर बड़े स्तर पर शोध होना चाहिए। उनकी रचना या लेखन में सांस्कृतिक और सामाजिक उन्मेष के साथ-साथ सामाजिक समरसता है। ये बातें बिहार लोकसेवा आयोग के सदस्य और महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय के प्रोफेसर (डॉ.) अरुण कुमार भगत ने कहीं। उन्होंने कहा कि समाज को 'पानी से नहाया हुआ व्यक्ति स्वच्छ होता है और पसीने से नहाया व्यक्ति पवित्र होता है।' और 'अपनी कलम से खाई नहीं कुआँ खोदो, ताकि लोगों की प्यास बुझे।' जैसे विचार देनेवाले डॉ. दीपक निश्चित ही काव्य-पुरुष हैं। उक्त वक्तव्य उन्होंने इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र द्वारा वरिष्ठ साहित्यकार, राष्ट्र-चिंतक एवं काव्य-पुरुष डॉ. देवेन्द्र दीपक के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर आयोजित राष्ट्रीय वेब संगोष्ठी में दिया। प्रो. भगत ने कहा कि आपातकाल के दौरान शासकीय सेवा की दहशत की सींखचों में घिरे होने के बावजूद कलम की धार कम नहीं होने दी। उन्होंने अपनी रचना के आईने में लोकतंत्र के दमन को उकेरा। आपातकाल पर लिखनेवालों में वह अग्रणी रहे।

इस अवसर पर अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में वरिष्ठ पत्रकार और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के अध्यक्ष रामबहादुर राय ने कहा कि देवेंद्र दीपक जी के साथ समाज ने न्याय नहीं किया है। देवेंद्र दीपक जी का रचना-संसार वैदिक संस्कृति और इतिहास का प्रतिनिधित्व करता है। यह अपने आपमें बहुत बड़ी बात है। इसलिए हमारा दायित्व है कि उसे सामने लाएँ। यह कार्योत्सव एक साहित्योत्सव है।

इससे पहले स्वागत-वक्तव्य देते हुए इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के सदस्य-सचिव एवं वरिष्ठ शिक्षाविद् प्रो. सच्चिदानंद जोशी ने कहा कि यह बहुत सौभाग्य की बात है कि 90वीं जयंती मनाने का सौभाग्य मिल रहा है। उन्होंने हमें अपनी रचनात्मकता से प्रभावित किया है। वे हमेशा धारा के विपरीत खड़े रहे हैं। युवाओं में वे वरिष्ठों की तुलना में काफी लोकप्रिय रहे हैं। वे हमेशा अपने आपको बेहतर करने के लिए प्रतिबद्ध रहे हैं। वे मेरे जैसे छोटे और नौजवान को भी बिठाकर सीखाते थे। वे मेरे जीवन के आले में सुरक्षित पल हैं।

कार्यक्रम के वक्ता और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के

सहायक प्रोफेसर डॉ. अशोक कुमार ज्योति ने कहा कि डॉ. दीपक एक ऐसे वृक्ष हैं, जिनकी काव्य, गद्य, शासकीय और शिक्षकीय गुण शाखाएँ हैं। उनके शिक्षकीय गुण का जितना बखान किया जाए, कम है। उन्होंने अपनी रचना 'मास्टर धरमदास' के जरिए एक शिक्षक की पीड़ा और छात्र के प्रति उसके स्नेह को बताया है। उन्होंने कहा कि डॉ. दीपक वर्तमान और आनेवाली पीढ़ी के लिए प्रेरणा के सागर हैं।

मुख्य वक्ता वरिष्ठ साहित्यकार एवं केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के पूर्व निदेशक प्रो. नंदकिशोर पांडेय ने कहा कि समकालीन कवियों में देवेंद्र दीपक शामिल हैं। वे चर्चा से स्वयं को आगे बढ़ानेवाले नहीं हैं। जिन विषयों पर कवि माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा, खंडवा में बूचड़खाने खुलने के खिलाफ लगातार लिखा, उसी मध्यप्रदेश की धरती से देवेंद्र दीपक ने 'गौ उवाच' लिखा। उनका पूरा-का-पूरा रचना-संसार पढ़ा जाना चाहिए। उनकी कविता ध्वंस पर ध्वंस करती है। उपासना करती है। उन्होंने गद्य और पद्य लेखन को एक भारतीय दृष्टि दी है।

हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयागराज के अध्यक्ष प्रो. उदय प्रताप सिंह ने बतौर मुख्य वक्ता कहा कि यदि रचना रचनाकार में परिवर्तन लाती है तो वह सही मायने में रचना है। सरकारी नौकरी करते हुए उन्होंने आदिवासियों की आवाज को पद्य के जरिए सामने रखा है।

बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश के कुलाधिपति डॉ. प्रकाश सी. बरतूनिया ने कहा कि हमने उनकी कथनी और करनी में कभी अंतर नहीं देखा। उनकी कई काव्य-प्रस्तुतियाँ भी देखने को मिली है। उन्होंने सद्भावना के लिए काफी काम किया है। उन्होंने अस्पृश्यता पर काफी लिखा है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज के हाशिए पर रह रहे लोगों में आत्मविश्वास को बढ़ावा दिया है। इस सत्र का संचालन दिल्ली विश्वविद्यालय की अध्यापिका डॉ. सारिका कालरा ने किया।

संगोष्ठी का दूसरा सत्र डॉ. देवेंद्र दीपक के गद्य-साहित्य पर केंद्रित रहा। इस सत्र में साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश के निदेशक डॉ विकास दवे ने बतौर विशिष्ट वक्ता कहा कि जो देवेंद्र दीपक जी ने कहा, वह किया। उन्होंने बाल-विमर्श करते हुए परिवार-विमर्श भी किया। उन्होंने अपनी भाषा के विमर्श पर बहुत काम किया है। वे परिवर्तन को लेकर, सुधार को लेकर काफी काम किया है।

इस अवसर पर मुंबई विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग के प्राध्यापक डॉ. मृगेंद्र राय ने अपने व्याख्यान में कहा कि उनके साहित्य का अध्ययन करते हुए मैंने महसूस किया कि उन्होंने खुद को तपाया है। उनमें निरंतर पढ़ते रहने की लालसा है। यह संस्कार आज के समाज में पैदा करने की आवश्यकता है।

इस सत्र में बिनय राजाराम ने बताया कि किस प्रकार डॉ. देवेंद्र दीपक का साहित्य सांस्कृतिक एवं पौराणिक लेखन में पाठकों को बाँधकर रखने की क्षमता है। इस अवसर पर अपने उद्बोधन में डॉ. देवेंद्र दीपक ने कहा कि मैंने कभी 'इस' या 'उस' के लिए रचना नहीं लिखी। मेरा ध्यान उपेक्षित और अलक्षित समाज पर रहा।

द्वितीय सत्र की अध्यक्षता दिल्ली विश्वविद्यालय की अध्यापिका प्रो. कुमुद शर्मा ने की। इस अवसर पर उन्होंने कहा कि देवेंद्र दीपक जी अपनी आस्थाओं, मूल्यों और संस्कृति के प्रति बहुत ही प्रतिबद्ध रहे हैं, जो उनकी साहित्य-यात्रा में परिलक्षित होता है। इस सत्र का संचालन संजीव सिन्हा ने किया। धन्यवाद ज्ञापन डॉ. अशोक कुमार ज्योति ने किया।

नाबार्ड, मुंबई के चेयरमैन डॉ. जी. आर. चिंताला का संग्रहालय भ्रमण

नाबार्ड, मुंबई के चेयरमैन डॉ. जी. आर. चिंताला ने इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय, भोपाल का भ्रमण किया। संग्रहालय के अधिकारियों डॉ.पी. शंकर रॉव एवं डॉ. अशोक कुमार शर्मा ने उन्हें जनजातीय आवास ,रॉक आर्ट, हिमालयन विलेज एवं विथि संकुल का भ्रमण कराया। भ्रमण करते हुए डॉ. चिंताला ने कहा कि यहा सांस्कृतिक धरोहरों को सुरक्षित एवं संरक्षित करने का अभिनव प्रयास किया गया है। यहां के संग्रहित कलाकृतियों ने राष्ट्र के अतित की गौरवशाली संस्कृति का दर्शन शोधार्थियों बुद्धिजीवियों तथा सामान्य जनमानस के मन मे अमिठ छाप छोडा है। यह संग्रहालय

एक अनौपचारिक शिक्षा का केन्द्र होते हुए कला के प्रति अभिरूचि जागृत कर शिक्षा प्रदान करने मे संलग्न है।

सप्ताह का प्रादर्श है-'डोड-माला' चांदी के मनकों से बना एक हार

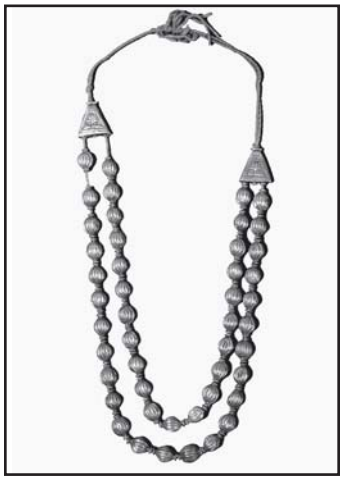

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय के नवीन श्रृंखला 'सप्ताह का प्रादर्श' के अंतर्गत आज जुलाईमाह के चोथे सप्ताह के प्रादर्श के रूप में 'डोड-माला' चांदी के मनकों से बना एक हार, चंबा, हिमाचल प्रदेश के गद्दी समुदाय से संकलित जिसका माप- लंबाई 43 सेमी, मोतियों की संख्या -47है। इसे संग्रहालय द्वारा सन, 1995में चंबा, हिमाचल प्रदेश के गद्दी समुदाय से संकलित किया गया है। इस प्रादर्श को इस सप्ताह दर्शकों के मध्य प्रदर्शित किया गया।

इस सम्बन्ध में संग्रहालय के निदेशक डॉ. प्रवीण कुमार मिश्र ने बताया कि 'सप्ताह के प्रादर्श' के अंतर्गत संग्रहालय द्वारा पूरे भारत भर से किए गए अपने संकलन को दर्शाने के लिए अपने संकलन की अति उत्कृष्ट कृतियां प्रस्तुत कर रहा है जिन्हें एक विशिष्ट समुदाय या क्षेत्र के सांस्कृतिक इतिहास में योगदान के संदर्भ में अद्वितीय माना जाता है।डोड-माला चांदी के मनकों से बना एक हार है जो रीठे से मिलता-जुलता है जिसे स्थानीय तौर पर डोड के नाम से जाना जाता है। सम्भवत: प्राचीन काल में जब मनुष्य ताजे फूलों, फलों आदि से स्वयं को अलंकृत करते थे, तब उन्होंने रीठे की माला भी तैयार की होगी। रीठे को एक साथ रगड़ने पर घर्षण ध्वनि उत्पन्न होती है। यह माला अवश्य ही लोकप्रिय आभूषण रही है। डोड-माला को चांदी के गोल खोखले मनकों, जो लगभग रीठे के आकार के हैं, से बनाया गया है। एक मनके के दोनों आधे भाग चांदी की पत्तर को सांचे पर पीटकर तैयार किए जाते हैं, फिर दोनों को किनारों से जोड़ा जाता है, जिससे सिरों पर एक छेद बन जाता है। फिर मनकों को एक सूती धागे से पिरोया जाता है।

सामान्यत: डोड-माला दो से तीन-तार वाला हार होता है, लेकिन ज्यादातर दो-तार वाली डोड-माला ही होती है। हार के प्रत्येक छोर पर एक पान के आकार की या त्रिकोणीय पट्टिका दी गयी है जो डोड-माला के तारों को एक साथ रखती है। इनमें से प्रत्येक पट्टिका में एक छोटा मुड़ा हुआ धागा होता है जिससे हार को गर्दन के पीछे बांधा जाता है। सामान्यत: हार के प्रत्येक तार में पच्चीस से तीस मनके होते हैं। इस प्रकार का हार पूरे क्षेत्र में बहुत लोकप्रिय है, यहां तक कि पुरुष भी कभी-कभी डोड-माला पहनते हैं।

वरिष्ठ साहित्यकार डॉ.देवेंद्र दीपक सहित अन्य पांच विविध क्षेत्रों में अनुकरणीय कार्य करने वाली विभूतियां श्रेष्ठ कला आचार्य सम्मान से विभूषित

भोपाल । साहित्य कला और संगीत को समर्पित देश की प्रतिष्ठित संस्था मधुवन द्वारा अपने 51 वें स्वर्ण जयंती समारोह में 'गुरु वंदना महोत्सव पर्व ' के अंतर्गत अपनी गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वहन करते हुए, अपनी उत्कृष्ट और अनुकरणीय सेवाओं के लिए 'श्रेष्ठ कला आचार्य' के अलंकरण से विभूषित किया गया। इस अवसर पर विभूषित होने वालों में थे डॉ देवेंद्र दीपक वरिष्ठ साहित्यकार (भोपाल) डॉ. पारुल शाह ,नृत्यांगना (बड़ौदा) श्री राजेन्द्र जैन ,वरिष्ठ छायाकार (भोपाल) श्री सतीश दुबे ,वरिष्ठ रंगकर्मी (उज्जैन) श्री कृष्णकुमार नायकर, मिमिक्री (जबलपुर) श्री गोपाल गुप्ता ,समाज सेवी (भोपाल) मानस भवन में आयोजित एक गरिमापूर्ण आयोजन में अध्यक्ष के रूप में श्री संतोष चौबे वरिष्ठ कथाकार एवम कुलाधिपति रवींद्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय मुख्य

अतिथि के रूप में श्री कैलाश मिश्र जी एवम श्री सुरेश तांतेड़ कार्यक्रम संयोजक आयोजक द्वारा शॉल श्रीफल एवम प्रतीक चिन्ह भेंटकर सम्मानित किया इस अवसर पर नगर के अनेक साहित्य कला प्रेमी मौजूद थे, कार्यक्रम का संचालन श्री विनय उपाध्याय द्वारा किया गया। **रपट : घनश्याम मैथिल 'अमृत'**

श्री नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

स्वास्थ्य का वरदान "आयुष्मान"

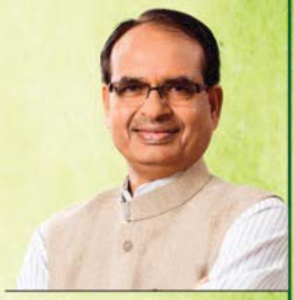

श्री शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

आयुष्मान भारत 'निरामयम्'
मध्यप्रदेश योजना के तहत

मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान

द्वारा

आपके द्वार आयुष्मान 2.0 प्रारंभ कर आयुष्मान कार्ड वितरण किया गया

- अब तक 2.5 करोड़ लोगों को आयुष्मान कार्ड जारी।
- 8 लाख 50 हजार हितग्राहियों के उपचार अनुमोदित, जिस पर करीब रु. 1200 करोड़ की क्लेम राशि खर्च की गई।
- प्रदेश के 865 निजी एवं सरकारी अस्पताल योजना से संबद्ध।

हर वर्ष पात्र परिवारों का रु. 5 लाख तक का कोरोना, कैंसर, गुर्दा रोग, नि:संतानता व अन्य गंभीर बीमारियों का मुफ्त इलाज

अधिक जानकारी के लिए वेबसाइट/टोल फ्री नम्बर पर सम्पर्क करें :
www.ayushmanbharat.mp.gov.in, Toll Free No. 14555, 1800-233-2085

लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

आकल्पन : मध्यप्रदेश माध्यम/2021

D-19201/21

D-19201/21

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास